श्री श्री गौरगधाधरो विजयेताम्

श्रीहरिभक्ति तत्त्वसारसंग्रह

श्रील पुरुषोत्तमशर्म प्रणीतः

श्रीहरिदासशास्त्री

✲ श्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ✲

श्रीहरिभक्तितत्त्वसारसंग्रहः

श्रील पुरुषोत्तमशर्म प्रणीतः

सच

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण, सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितः।
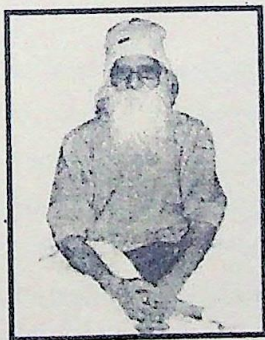
सद्ग्रन्थ प्रकाशक :

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदासनिवास

कालीदह वृन्दाबन

जिला-मथुरा (उत्तर प्रदेश)

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

विज्ञप्तिः

श्रीश्रीगौरगदाधरदेव की अनुकम्पा से "श्रीहरिभक्तितत्त्वसार संग्रहः" नामक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ। "श्रीपुरुषोत्तम शर्मा" नामक विद्वद्वरेण्य प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता हैं, आप श्रीनित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे, निज परिचय प्रदानावसर में ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में आपने लिखा है-पुरुषोत्तम शर्मा श्रीसदाशिव तनूद्भवः, रम्भागर्भसमुद्भूतः खलिकाली निवासभूः।।

प्रस्तुत ग्रन्थ शास्त्रवर्य्य श्रीमद्भागवत के ८४१ श्लोक द्वारा निर्म्मित हुआ है, ग्रन्थकार ने उक्त श्लोक समूह के द्वारा मुख्यरूप से श्रीहरिभक्ति का परम पुरुषार्थत्व, सुसाध्यत्व, पूर्णार्थत्वं, सर्वपूज्यत्वादि को प्रदर्शन करते हुये स्वरूपानुसन्धानात्मक ज्ञान का वैफल्य, कर्मयोग का दोषपूर्णत्व, स्वर्गादिलोकों के वैफल्यादि का प्रतिपादन करके भक्तगणों का अभयत्व प्रतिपादन किया है।

अनन्तर भक्ति का लक्षण, साधुसङ्ग महिमा, साधुलक्षण, सत्सङ्ग प्राप्त करने का उपाय, श्रीगुरु प्रपति प्रभृति की यथायथ वर्णना करते हुये भक्त जीवन में उत्थान पतनादि का कारण निर्देश पूर्वक श्रवणादि नवविधा भक्ति का निरूपण आपने मनोरम रूप से किया है।

इस ग्रन्थ को आपाततः दृष्टि से देखने से प्रतीति होती है कि यह ग्रन्थ श्रीमद्विष्णुपुरी गोस्वामीपाद रचित विष्णुभक्ति रत्नावलि के आदर्श से रचित हुआ है, किन्तु ऐसा नहीं है, उभयत्र उपादान संग्रह का आकर एक होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ, उत्कर्ष एवं विविध वैशिष्ट्य से मण्डित होकर अनुपम हृदयहारी हुआ है।

श्रीविष्णुपुरीपाद ने प्रथम विरचन में भक्ति सामान्य लक्षण, द्वितीय में सत्सङ्ग वर्णना करने के बाद ही तृतीय विरचन से द्वादश विरचन पर्यन्त श्रवणादि नवधा भक्ति का सन्निवेश किया है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ

में ग्रन्थकार प्रथमत भक्ति का ही परम पुरुषार्थ प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवत के अनेक श्लोकों को संग्रथित किये हैं। अन्वय एवं व्यतिरेके के द्वारा दृढ़ता से भक्ति को प्रतिपादन करने के पश्चात् काम्यकर्म मुक्ति सम्पादक ज्ञान, योगादि को निरसन करने के अनन्तर भक्ति देवी की महामहिमा को मुक्त कण्ठ से उद्घोषित किये हैं। विष्णु भक्ति रत्नावली में ४०७ श्लोक हैं, प्रस्तुत ग्रन्थ में ८५३ श्लोक हैं, इसमें श्रीमंद्भागवत के ८४१ श्लोक हैं, मङ्गलाचरण एवं उपसंहार आदि में निजकृत १२ श्लोक विद्यमान हैं।
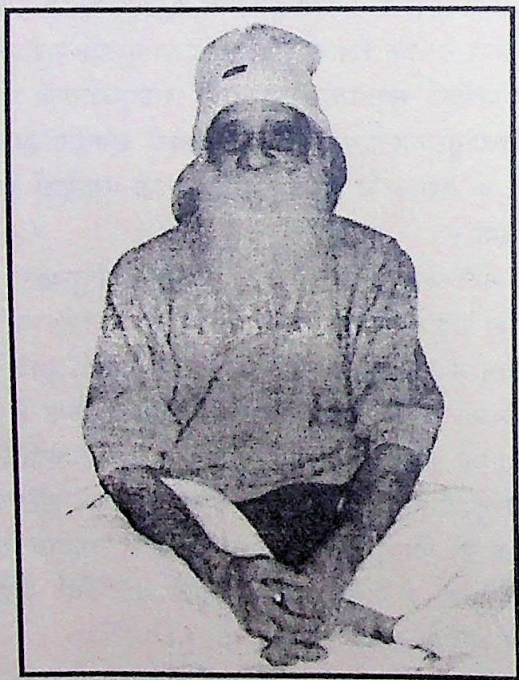
श्रीहरिदास शास्त्री न्यायाचार्य

✻ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ✻

—:✻✻:—

✻ श्रीश्रील-पुरुषोत्तम-शर्म्मणा विरचितः ✻

श्रीहरिभक्तितत्त्वसारसंग्रहः

ॐ नमो भगवते कृष्णाय गोविन्दाय

१। नमामि भगवत्पाद-पाथोजातमभीष्टदम् ।
तत्पराणाञ्च शिवदं विनायक-विनाशनम् ॥

२। (भाः ११-६-१२) "पर्य्युष्टया तव विभो वनमालयेयं,
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ।
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो,
भूयात् सदाङ्घ्रिरशुभाशय-धूमकेतुः ॥"

गौरहरेः पदद्वन्द्व प्रणिपत्यसभक्तिकं
श्रीहरिभक्तितत्त्वस्य भाषाव्याख्यावितन्यते ॥

अभीष्टप्रद भगवत् पदपङ्कज को प्रणाम करताहूँ, उक्त श्रीचरण आश्रित व्यक्ति के शिवद एवं विघ्न विनाशक हैं ॥१॥

निष्कपट भक्तगण सर्वाधिक सौभाग्यशाली हैं, मुनिसात्त्वत प्रभृति षड्विध सेवकों के मध्य में परम भागवतसे भी लक्ष्मी के प्रति तुम्हारी प्रीति अधिक है, प्रकाशकर कहते है, मैं जहाँपर रहती हूँ, यह बनमाला भी वहाँपर ही रहतीहै, अतएव लक्ष्मीके लिए सपत्निवत् वह स्पर्द्धाका विषय वनजाती है, तथापि स्पर्द्धापरायण श्रीका समादर न कर भक्तद्वारा अर्पित होने के कारण सर्य्युसित होनेपर भी उससे परमानन्द लाभ करते हैं, भक्त प्रदत्त वस्तु सर्वाधिक समादर से ग्रहण करना ही आपका स्वभाव है, ऐसे स्वभाव सम्पन्न आपके चरणारविन्द हमारे अशुभ कर्म वासना को दग्ध करें। अथवा जिन चरण की सेवा-लक्ष्मी एवं भक्तजन करते रहते हैं, वह हमारे कर्म

३। भा:११-६-१४) "नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति,

ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः।

कालस्य ते प्रकृति-पूरुषयोः परस्य,

शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥"

४। जयति पराशर-सूनुः, सत्यवती-हृदयनन्दनो व्यासः।

यस्यास्य-कमल-गलितं, वाङ्मयममृतं जगत् पिवति ॥

५। "तं वेद-शास्त्र-परिनिष्ठित-शुद्धवुद्धिं,

चर्माम्बरं सुर-मुनीन्द्र-नुतं कवीन्द्रम्।

कृष्णत्विषं कनकपिङ्ग-जटा-कलापं,-

व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥"

वासना को विनष्ट करें। अथवा जो लोक ध्यान अर्च्चनादि द्वारा निष्टा से आपका भजन करते हैं, उमसे भी आपके यशमें श्रद्धालु व्यक्तिगण ही कृतार्थ हैं, कारण आपको यशःप्रिय व्यक्तिगण द्वारा प्रदत्त वनमाला लक्ष्मीसे भी अधिक प्रीतिद होती है। वनमाला सर्वाङ्गमें शोभिता होती है, और लक्ष्मी एकदेश में रहती है, इसलिए उनकी वनमाला के प्रति सपत्नीवत् स्पर्द्धा होती है, तथापि शास्त्रीय भक्तगण द्वारा वहुधा वर्णित कीर्त्तिमयी वैजयन्ती वनमाला द्वारा ही आप सर्वथा सन्तुष्ट होते हैं ॥२॥ आप प्रकृति पुरुष, प्रभृति से अतीत हैं, ब्रह्मादिदेवगण नथे हुए बलीवर्द वैलके समान कालस्वरूप आप के वशमें सर्वदा चलतेहैं, परस्पर युद्धादि में जयपराजय में वे स्वतन्त्र नहीं होते हैं, कारण आप ही कालस्वरूप सवके प्रवर्त्तक हैं, आप पुरुषोत्तम हैं, आपके चरणारविन्द हमारे मङ्गलविधान करे ॥३॥ पराशरसूनु, सत्यवती, हृदयनन्दन, व्यासदेव की जय हो, जिनके वदनकमलसे निसृत अमृत वाङ्मय का पान जगत्वासी जनगण करते रहतेहैं ॥४॥ वेदशास्त्र परिनिष्ठित शुद्धवुद्धि चर्माम्बरधारी, सुरमुनीन्द्र वन्दितचरण, कवीन्द्र श्यामलकान्ति, कनकायमानजटाकलाप,

६। (भा:१-२-३) "यः स्वानुभावमखिल-श्रुतिसारमेक,-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाह पुराण-गुह्यं,
तं व्यास-सूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥"

७। श्रीमत्सत्यवती-सुतेन मुनिना ब्रह्मात्मनाविष्कृता-
च्छ्रीमद्भागवतादनेक-विटपात्तापत्रयोन्मूलनात् ।
वृक्षात् प्रीतिकृते फलानि महतां पद्यानि वद्यात्मनां
प्रस्यन्दद्भगवत्पदाम्बुज-रसान्येकत्र संग्रन्थये ॥

८। यस्मात् श्रीपुरुषोत्तमेन वहुशः पत्रान्तरादत्र वै
दोषः स्पर्श-कृतो महद्भिरथ तैरल्पीयसः पावनैः ।
न ग्राह्यः स्वसुखेन तृप्तरसना आस्वादयन्तूदरा-
दाकण्ठं परिपूर्य सर्वजगतां संवर्द्धयन्तो रतिम् ॥

मुनियों के तिलकायमान व्यासदेव को शिरसा प्रणाम करता हूँ ॥५॥

अतिशय करुण श्रीव्याससूनु महामुनि शुकदेवजी की शरणागत हूँ, जिन्होंने अन्धकारमय अज्ञान संसार समुद्र से मानवों को उद्धार करने के लिए समस्त पुराणों में अत्यन्त गोपनीय अत्यद्भुत प्रभाव सम्पन्न, स्वप्रकाश, अखिल श्रुतियों के सारस्वरूप, अनुपम, अध्यात्मतत्व प्रकाशक श्रीमद्भागवत शास्त्र को प्रकट किया ॥६॥ साक्षात् भगवत् स्वरूप श्रीमत्सत्यवती पुत्रने जिस श्रीमद्भागवत शास्त्रका आविस्कार किया है, उससे श्रीभगवत् चरणों में प्रीतिप्रद रसपूर्ण पद्यावलियों का संग्रहकर रहाहूँ ॥७॥ श्रीपुरुषोत्तम नामक सज्जनने श्रीमद्भागवतरूप निगमकल्पतरु के पत्रसमूह से सत् सिद्धान्तफल स्वरूप पद्यावलि का संग्रह कर रहाहूँ। इस स्पर्शदोष जो कुछ है, पावनमहद्गण उसे शुद्ध करेंगे, स्वसुख परायण व्यक्तिगण इसको ग्रहण करने का अनधिकारी हैं, परसुख निरत साधुभक्तगण इसका आस्वादन पर्याप्त रूपमें करें

वेद-भारत-नानापुराणप्रणयन-द्वारा सर्वाश्रमसर्ववर्णसाधारण-धर्मोपदेशान्तरमसन्तुष्टात्मा भगवान् व्यासः श्रीनारदोपदेशेन भागवत् कल्पतरुं प्रकाशितवान् । तत्र भागवते महापुराणे योगत्रयाणां मध्ये ज्ञान-कर्म-निरसनेन भक्तियोगः परमपुरुषार्थ इति निरूपितवान् ।

अतएव प्रथमत आह,—भाः (१-१-२)

९ । "धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्म्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥"

तत्तु शौनकादि-देवहूति-विदुरोद्धव-परीक्षिदादि-प्रश्नेन प्रतिस्कन्धे तदेकत्र संगृह्यते-भगवच्चरण-परायणानां रसास्वादाय । अत्र तैर्महद्भि-निकृष्टजन—स्पर्शदोषो न ग्राह्यः; यतस्ते सारग्राहिणः;-तेषां संस्मरणाच्चण्डालादयोऽपि परमपवित्रा भवन्ति हि । तत्र प्रथमस्कन्धके सूत-शौनक-संवाद में शौनकादि-प्रश्नके प्रथमाध्याय में (१-२-६-११)

एवं जगत्वासियों की प्रीति, श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति वर्द्धित करें ॥८॥

वेद भारत नानापुराण प्रणयन द्वारा सर्वाश्रम सर्ववर्ण साधारण धर्मोपदेश के अनन्तर असन्तुष्टात्मा भगवान् व्यासदेव ने श्रीनारदजी के उपदेश से भागवत कल्पतरु को प्रकाश किया । उसमें योगत्रयके मध्यमें ज्ञानकर्मका निरसन के द्वारा भक्तियोग ही परमपुरुषार्थ है, यहनिरूपण भी किया है ।

अतएव प्रथमसे ही कहतेहैं,—इस श्रीमद्भागवत में कैतव (धर्म अर्थ, काम, मोक्षाभिलाष) वर्जित परमधर्म वर्णित है, यह शास्त्रोक्त धर्मको निर्मत्सर सज्जनगण ही जानने में समर्थ हैं, इसमें शिवद तापत्रयोन्मूलन कारी वास्तव वस्तु वर्णित है, महामुनि कृत श्रीमद्-भागवत को छोड़कर अपर किसी शास्त्र से श्रवण समकाल में श्रीहरि श्रवणकारी के हृदय में अवरुद्ध नहीं होते हैं, इससे ही निरपराधीके हृदय में श्रवण कालमें ही श्रीहरि अवरुद्ध होते हैं ॥९॥

१०। "तत्र तत्राञ्जसायुष्मन् भवता यद्विनिश्चितम् ।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हति ॥
११। प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥
१२। भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत् सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि भद्राय भूतानां येनात्मा सुप्रसीदति ॥"

तथा प्रथमस्कन्धे शुकदेव-परीक्षित्-संवादे परीक्षित्प्रश्ने-(१-१९-३७,३८)

१३। "अतः पृच्छामि संसिद्धि योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत् कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥

यहसब वृत्तान्त शौनकादि देवहुति विदुरोद्धव परीक्षितादि के प्रश्नोत्तर में प्रतिस्कन्ध में सुस्पष्ट हैं। श्रीभगवच्चरण परायण के रसास्वादन के उनसब को एकत्र संग्रह कर रहा हूँ। इस कार्य में अयोग्य व्यक्तिकृत स्पर्शदोष को ग्रहण महद्गण नहीं करेंगे, क्यों कि वे सब गुण ग्राहीहैं। उनसब के संस्मरण से चण्डाल भी परम पवित्र हो जाते हैं।

प्रथमस्कन्ध के प्रथमाध्यायस्य सूतशौनक संवाद के प्रश्न में उक्त है-हे सूत ! आयुष्मन् ! आपने शास्त्रों में पुरुषों के एकान्त श्रेयका विषय अनुभव किया है, एवं निश्चय भी किया है, हमलोकों के निकट उसका अवश्य वर्णन आप करें ॥१०॥ हे सभ्य ! इस कलि युगमें मनुष्य अल्प आयुके होते हैं, मन्द, मन्दभाग्य मन्दमति, एवं उपद्रवपूर्ण होते हैं। कर्म एवं तदुचित श्रवण भी विस्तृत है, अतएव हे साधो ! जो कुछ सारतत्त्वहै, उसको अपनी बुद्धिसे निश्चय करके जीव कल्याण के लिए कहो। जिससे आत्मासुप्रसन्न होतीहै ॥११-१२

प्रथमस्कन्धस्य शुकदेव परीक्षित् संवाद में परीक्षित् प्रश्न से ज्ञात होता है-इसलिए योगियों के परमगुरु आपके निकट में जिज्ञासा

१४। यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत् कर्त्तव्यं नृभिः प्रभो।
स्मर्त्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥"

तथा च तृतीय-स्कन्धे विदुर-मैत्रेय-संवादे पञ्चमाध्याये-(३-५-३,४)

१५। "जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवा,-
दधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं,
भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥

१६। तत् साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः,
संराधितो भगवान् येन पुंसाम्।
हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपुते,
ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥"

तथा च दशम-स्कन्धे जरासन्ध-बद्ध-राजानां प्रार्थने त्रिसप्ततितमाध्याये—(१०-७३-१५)

१७। "तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥"

करताहूँ, मरण धर्माक्रान्त मानवके लिए सर्वथा जो करणीय, श्रोतव्य-जाप्य, कर्त्तव्य, स्मर्त्तव्य, भजनीय हैं, उसकी आप कहें एवं इसका विपरीत को भी कहें ॥१३-१४॥ तृतीय स्कन्धस्य विदुरमैत्रेय संवाद में उक्तहै-हे करुणामय प्रभु ! अशिक्षा, कुशिक्षा दलीयशिक्षाके फलसे जो जन हरि एवं शास्त्रीय श्रद्धासे विमुख होकर अधर्मपरायण हैं, अतएव निरन्तर सर्वत्र विषम अवस्था की सृष्टि करताहै, आपके तुल्य स्वाभाविक परहितकारी भगवत् प्रियजन उनपर अनुग्रह करने के लिए भुमण्डल में विचरण करते हैं।.१५॥ अतएव हे सज्जनश्रेष्ठ। आप उपदेश करें, जिस प्रकार भगवत् आराधनासे भगवान् श्रीहरि भक्तिपूत हृदय में अवस्थित होकर प्रसन्नतासे स्वयं ही शास्त्रीय ज्ञान

तथैकादशस्कन्धे षष्ठाध्याये भगवदुद्धवसंवादे उद्धव-प्रश्ने—
(११-६-४२,४६)

१८। "संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ।
विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥

१९। नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥

२०। तव विक्रीड़ितं कृष्ण नृणां परम-मङ्गलम् ।
कर्णपीयुषमासाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥

२१। शय्यासनाटन-स्थान-स्नान-क्रीड़ाशनादिषु ।
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ?

२२। त्वयोपभुक्त-स्रग्गन्ध-वासोऽलङ्कार-चर्च्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥"

का प्रदान करेंगे ॥१६॥ तथा दशमस्कन्धस्य जरासन्ध के द्वारावद्ध राजाओं की प्रार्थना में–हे प्रभो ! आप हमें वताइये कि जिस से पुनःपुन शरीर ग्रहण होनेपरभी आपके चरणकमल की स्मृति सदाही रहे ॥१७॥ तथा एकादश स्कन्धस्य षष्ठाध्यायमें भगवद् उद्धव संवाद में–हे प्रभो ! आप अपनेकुल को विनाशकर निश्चय ही इस जगत्को छोड़ जायेंगे। आप समर्थ होकर भी इसलिए विप्रशाप का निराकरण नहीं किए। हे केशव ! मैं आपके चरणकमलों को क्षणार्द्ध के लिए भी छोड़ नहीं सकता, हे नाथ ! मुझे भी अपनेसाथ अपनेधाम को ले चलो। हे कृष्ण ! तुम्हारे आचरण, बिहार, क्रीड़ा लोकों को परममङ्गलमय शिक्षा प्रदान के लिए ही हैं, जनगण उसको कर्णामृत रूपसे सुनकर स्वार्थपरायनता को परित्याग करते हैं ॥१८–२०॥

शयन उपवेशनमें घुमनेमें घरमें रहते, स्नानकरते खेलते, खातेसमय, सभी समय एकसाथ सेवामें रहनेवाले हमसब भक्त अपने प्रिय आत्मा

तथा तत्रैव सप्तमाध्याये—भा: (११-७-१७)

२३। "सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं,
वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे।
सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे,
ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः॥"

तथा तत्रैव चतुर्दशाध्याये—भा: (११-१४-१)

२४। "वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः।
तेषां विकल्प-प्राधान्यमुताहो एकमुख्यता॥"

तथा तत्रैव चोनत्रिंशाध्याये—भा: (११-२९-४०)

२५। "नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी॥"

तत्र प्रश्नोत्तरे शौनकादीन् प्रति सूतोक्तौ प्रथमस्कन्धे द्वितीयाध्याये-

आपको कैसे छोड़ सकते हैं ॥२१॥ आपके व्यवहृत वस्त्र आभूषण चन्दन माला आदि से विभूषित और उच्छिष्ट ग्रहण करनेवाले हमसव दास आपकी माया जो दुस्तर है, उसको तर जायँगे ॥२२॥ हे परम समर्थ प्रभु! आप स्वराट् सत्य आत्मा हैं। आपको छोड़कर आत्म तत्त्वज्ञान की सम्यक् शिक्षा प्रदान करने वाला कोई भी नहीं है, यहाँतक देवताओं में भी नहीं है, ब्रह्मासे लेकर समस्त देहधारी लोक आपकी मायासे मोहित हो रहेहैं, और इसी कारण बाह्यविषयो में आसक्त हो जाते हैं, उसे परमलाभ मानकर उन्ही को पाने की चेष्टा करतेहैं ॥२३॥ उसके चतुर्दश अध्यायमें भी वर्णित है-हे कृष्ण! श्रेय:साधन के विषयमें ब्रह्मवादि मुनिगण अनेक प्रकार साधन वताते हैं, उनमें से सवकी प्रधानता है, अथवा एक साधन की प्रधानता हैं ॥२४॥ ऊनत्रिंशाध्यायमें भी उक्त है—हे महायोगिन्! आप को नमस्कार, मैं प्रपन्न हूँ। मुझे अनुशासन करें जिससे आपके चरणारविन्दुमें अनपायिनी भक्ति हो ॥२५॥

(१-२-५,७,१४,२२)

२६। "मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ।
यत् कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥

२७। स वै पुंसां परो धर्म्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

२८। वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम् ॥"

२९। "तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥"

३०। "अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥"

३१। मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायण-कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

द्वितीध्यायमें मुनिके प्रश्नोत्तरमें सूतोक्ति इसप्रकारहै-हे मुनिगण ! आपने कृष्णविषयक प्रश्न किया, इससे ही लोकों में विश्वास स्थापन एवं आत्मप्रसन्नता सम्भव हैं ॥२६॥ जिससे श्रीकृष्णचरण में भक्ति हो वह ही परमधर्महै, उस अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिसे आत्मप्रसन्नता होती हैं ॥२७॥ वासुदेव भगवान् में भक्तियोग प्रयुक्त होने पर सत्वर स्वार्थपरायणता दूर हो जातीहै, एवं निष्कपट ज्ञानभी उत्पन्न होता है ॥२८॥ अतएव निःसंशय से एकाग्रमन से सात्वतपति परमप्रिय परमसुन्दर भगवान्के गुण सुनें, नामकीर्त्तन करें, ध्यान करें, और पूजन करें ॥२९॥ इसलिए विज्ञगण नित्य परमआनन्द से वासुदेव भगवान्के प्रति आत्मप्रसादनी भक्ति करतेहैं ॥३०॥ मुमुक्षु व्याक्तिगण भूतपति प्रभृति का भजन को छोड़कर एवं असूया रहित होकर नारायण स्वरूप का भजन करते हैं ॥३१॥

तथा च द्वितीयस्कन्धे तृतीयाध्याये —(२-३-१०,११)

३२। "अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

३३। एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः।
भगवत्यचलो भावो यद्भागवत-सङ्गतः ॥

३४। भा:(२-२-३३) न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥"

तथा च द्वितीयस्कन्धे परीक्षितं प्रति शुकदेवोक्तौ प्रथमाध्याये-(२-१-२,५)

३५। "श्रोतव्यानि च राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥

३६। निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्ब–भरणेन वा ॥

३७। देहापत्य-कलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥

कामना से निष्काम से अथवा मोक्षके लिए बुद्धिमान् व्यक्ति एकान्त भक्तिसे पुरुषोत्तम का भजन करे ॥३२॥ परमशान्ति प्राप्ति का उपाय एकमात्र भगवद्भक्ति है, यह भगवद्भक्तके सङ्गसे सम्भव है ॥३३॥ संसार में रतहोने से उद्धार प्राप्त करने के लिए अपर कोई भी मङ्गलमय पथ नहींहै, भगवद् भक्तिही एकमात्र शान्तिका पथहै। हे राजेन्द्र ! मिथुनधर्म में आसक्त व्यक्तिगण आत्मतत्त्व को नहीं जानते है, उनके लिए कामना की सिद्धिके लिए श्रवणीय वहुत विषय है ॥३४–३५॥ इसप्रकार मानव की आयु व्यर्थ चलीजाती है। रात नोंदमें वीत जाती है, और दिन अर्थोपार्जन की चेष्टासे वीतता हैं, यौवन अवस्था कामभोग में वीतती है, ओर पुरीआयु कुटुम्ब भरण पोषण में वीतती हैं ॥३६॥ देह अपत्य स्त्री आदि विनष्टशील कृत्रिम

३८। तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यश्चेच्छताभयम्॥"

तथा तत्रैव द्वितीयाध्याये—(२-२-३६)

३९। "तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यो भगवन्नृणाम्॥"

तथा च तृतीयस्कन्धे कपिल-देवहूति-संवादे पञ्चविंशाध्याये-(३-२५-१९)

४०। "न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥"

तथा च तत्रैव विदुर-मैत्रेय-संवादे ब्रह्माणं प्रति भगवदुक्तौ नवमेऽध्याये—(३-९-४२)

४१। "अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः॥"

ननु केनामोदेन तत्र प्रवर्तितव्यम्? तत्राह विदुर-मैत्रेय संवादे ऊनविंशाध्याये-(३-१९-३४)

बान्धवोंका विनाश अवश्यम्भावीहै, यह जानकर भी अहङ्कारसे मत्त होकर प्राणी अपनी मृत्यु को नहीं देखताहै ॥३७॥ अतएव हे भारत! हे राजन्! अभय प्राप्तेच्छु व्यक्ति निष्कपटता के साथ भगवान् परम मनोहर, हरि-अभय प्रदाता, ईश्वर एकमात्र प्रयोजन तत्त्वका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण (सर्वसमय के लिए सभी अवस्थामें) करें ॥३८,३९॥ तृतीयस्कन्धस्य कपिल देवहूति संवाद में उक्तहैं, समस्त प्राणियों के निमित्त हितकारी एकमात्र प्रिय परममनोहर भगवान् के प्रति प्रीति को छोड़कर परम महान् होने के लिए अपर कोई भी पथ नहीं है ॥४०॥ विदुर मैत्रेय संवाद में कथित है कि-हे ब्रह्मन्! मैं सकल प्रियवस्तुयोंसे भी सर्वाधिक प्रियहूँ, शरीर भी जिनके निमित्त अत्यन्त प्रिय होता है, अतएव मेरेप्रति आसक्त होना परम आवश्यकहैं ॥४१॥

स्त्रीमें दर्शन स्पर्श संलाप आनुकूल्य इन्द्रिय तृप्ति होनेके कारण

४२। "अशेषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ।
उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥"

नन्वत्र महान् प्रयासः ? कथमत्र प्रवर्तितव्यम् ? तत्राह-(३-१९-३६)

४३। "तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥"

तथा चासुर-वालकं प्रति प्रह्लादोक्तौ सप्तमस्कन्धे षष्ठाध्याये ७-६-१९

४४। "न ह्यच्युतं प्रीणयतो वह्वायासोऽसुरात्मजाः ।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥"

तथा तत्रैव सप्तमाध्याये-(७-७-३८)

४५। "कोऽतिप्रयासोऽसुर-वालका हरे,-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः ।

आनन्द से मन आसक्त हो जाता है, किन्तु भगवान्में वे सव आनन्द दायक वस्तु कहाँ है, जिस से उनपर मन लगेगा ? उसका विवरण विदुर मैत्रेय संवादे से कहते हैं-जितने भी निष्कपट जनगण हितकारी व्यक्ति हैं, उन विपुल कीर्त्ति सम्पन्न सज्जनों के नाम सुनने से ही आनन्द से हृदय भर जाताहै, ओर परम मनोहर भगवान् तो सवके हित के लिए निरन्तर निष्कपटता से कार्य करते रहते हैं, उनके नाम से अवश्य ही आनन्द होगा, एवं मनभी उस आनन्द में डूव जावेगा ॥४२॥ है, तो ठोक, किन्तु उसके लिए बड़ा क्लेश एवं प्रयत्न करना पड़ता है, कैसे मन की प्रवृत्ति उसमें होगी ? इस के लिए कहते हैं-जो व्यक्ति अपना अहंकार से लेकर सव आसक्ति को छोड़कर निष्कपट भावसे श्रीभगवान् की शरण में आता है, उसके लिए तो भगवान् वहुत ही सुखद है, और असाधुव्यक्ति के लिए तो दुराराध्य हैं ॥४३॥ असुर वालकों के प्रति प्रह्लादने कहा था-हे असुर वालका ! हरि की आराधना के लिए अति प्रयास की कल्पना ही कहाँहै, आकाश जैसे स्वाभाविक सर्वत्र उपलब्धहै, वैसे ही श्रीहरि

स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां,
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः"

तथा च तृतीयस्कन्धे कपिल-देवहूति-संवादे पञ्चविंशाध्याये (३-२५-४४)

४६। "एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥"

तथा सप्तमस्कन्धे प्रह्लाद चरिते सप्तमाध्याये (७ ७ २९)

४७। "तत्रोपाय-सहस्राणामयं भगवतोदितः।
यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे चतुर्दशाध्याये (११-१४-९-११)

४८। "मन्माया-मोहित-धियः पुरुषाः पुरुषर्षभ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म्म यथारुचि ॥

४९। धर्म्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम्।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम्।
केचिद्यज्ञ-तपोदानं व्रतानि नियमान् यमान् ॥

सबके एकमात्र सुहृद हैं, और सर्वत्र सबसमय जागरुक रहते हैं, उनकी आराधना के लिए एवं प्राप्ति के लिए कुछ भी क्लेश नहींहैं, केवल विषय प्राप्ति के लिए है, असीम क्लेश होतेहैं ॥४४,४५॥ इस जगत् में मनुष्यके मङ्गलोदय यहाहै–एकाग्र भक्तियोग द्वारा परमप्रिय मुझ भगवान् में स्थिररूप में मन अर्पण करना हीहैं ॥४६॥ सप्तम स्कन्ध के प्रह्लाद चरित में उक्तहै—अनेकानेक उपायों से श्रीभगवत् कथित यह ही उपाय है-ईश्वर भगवान् में जिससे साक्षात् भक्तिका उदय हो ॥४७॥ एकादश स्कन्धके भगवदुद्धव संवाद में उक्तहै—हे पुरुष श्रेष्ठ ! मेरी मायासे विमोहित वुद्धि होकर पण्डितगण श्रेयः प्राप्ति के विषयमें अनिश्चित तत्त्वको कर्म एवं अपनी अपनी रुचिके अनुसार कहते हैं ॥४८॥ धर्म, यश, काम, सत्य, दम, शम, स्वार्थ, ऐश्वर्य, त्याग, भोजन, यज्ञ, तप दान, व्रत, नियम, यम, प्रभृति को

५०। आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्म-विनिर्मिताः।

दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥"

तथैकादशाध्याये-(भाः ११-११-४८)

५१। "प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव।

नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥"

एतदेव पञ्च-हायनं ध्रुवं प्रति मातुरुपदेशेन द्रढ़यति चतुर्थेऽष्टमाध्याये-(४-८-२०,२२,२३)

५२। "यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्व,

विभावनायात्त-गुणाभिपत्तेः।

अजोऽध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं,

पदं जितात्म-श्वसनाभिवन्द्यम् ॥"

५३। "तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं,

मुमुक्षुभिर्मृग्य-पदाब्ज-पद्धतिम्।

अनन्यभावे निजधर्म-भाविते,

मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥

पृथक् पृथक् रूपमें उपाय कहतेहैं, ये सव विनाशी है, क्यों कि-उत्पत्ति एवं विनाश इन सवके हैं, और मनुष्यसे वेसव सृष्टहोते हैं ॥४९॥ वेसव दुःखद तो हैं ही साथ ही तमोगुण प्रधान, क्षुद्रानन्दप्रद, एवं शोकप्रदायक भी है।॥५०॥ एकादशाध्याय में कथित है-हे उद्धव! सत्सङ्गसे प्राप्त भक्तियोगके विना सज्जनगण मुझको किसी भी उपाय द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते हैं ॥५१॥ इसप्रकार पञ्चवर्षीय वालक ध्रुव के प्रति माताके उपदेश द्वारा उसको पुष्टकरते हैं-वह भगवान् विष्णु सत्त्वगुणसे विश्व को पालन करतेहैं। उनके भक्ति व मुक्तिप्रद चरणों को मन और प्राणकी दान करनेवाले योगीगण प्रणाम करते हैं, उन्ही श्रीचरणों की सेवाकरके ब्रह्माने ब्रह्मपद को पाया है ॥५२॥ पुत्र! तुम उन्हीं भक्तवत्सल हरिके चरणों की शरण ग्रहण करो,

५४। नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्,-
दुःखच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन।
यो मृग्यते हस्तगृहीत-पद्मया,
श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया॥"

तथा देवान् प्रति पृथोरुपदेशे एकविंशाध्याये-(भा: ४-२१-३३)

५५। तमेव--यूयं भजतात्मवृत्तिभि,
र्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः।
अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं,
यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः॥"

तथा च द्वाविंशाध्याये—(४-२२-२१,३९)

५६। "शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां,
क्षेमस्य सध्र्यग्विमृशेषु हेतुः।
असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि,
दृढ़ा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या॥"

क्यों कि मुक्ति की इच्छावाले व्यक्तिगण भी उन्हीं के चरणों के पथ को खोजते हैं। तुम एकाग्र भावसे अपने धर्मसे चित्तको शुद्धकरो, फिरशुद्ध हृदय में ध्यान पूर्वक परमपुरुष हरिका भजन करो ॥५३॥ पुत्र ! मुझे उन कमलनयरा भगवान् के सिवाय तुम्हारे दुःख को दुर करने वाला और कोई नहीं देख पड़ता। और लोक वड़ीचाहसे जिस लक्ष्मी को खोज करते हैं, वह लक्ष्मी प्रदीप तुल्य कमलहात में लिए उन हरिको खोजतीहैं ॥५४॥ पृथुके उपदेश में भी कथित है-हे प्रिय प्रजागण ! तुमसव चित्तसे कापट्यको हटाकर अपनी अपनी जीवन के लिये कर्म का ग्रहण करो, एवं ध्यान, स्तुति, सेवाआदि से उसी पूज्य परमेश्वर को भजो। तुममें जिसका जितना अधिकार है वह उसी के अनुसार ईश्वर की आराधना करो, ऐसा करनपर तुम्हारा

५७। "यत्पाद-पङ्कज-पलाश-विलास-भक्त्या,
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध,
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥"

तथा च नारद-प्राचीनबर्हिःसंवादे ऊनत्रिंशाध्याये-(भा: ४-२९-३८)

५८। "वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः।
सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानञ्च जनयिष्यति ॥"

तथा च पञ्चम-स्कन्धे वर्षोपाख्याने प्रह्लादस्तुतौ हरौ भक्तियोगात् सर्वाश्रयत्वादिकमप्ययत्नतो भवतीति प्रकाशयति-(५-१८-१२,१४)

५९। "यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना,
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा,
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥

अधिकारानुसारप्रयोजन सिद्ध होगा अर्थात् कामनाएँ पूर्ण होंगी ।५५।। अशेष शास्त्रों में उत्तमरूप से विचार कर कल्याण के लिए जो भी कारण निश्चित हुये हैं, एक तो आत्मासे भिन्न जो नश्वर शरीरादि हैं, उनमें वैराग्य और दुसरा परमप्रभु श्रीहरि हैं, उसमें दृढ़ाभक्ति ही ।।५६।। साधुभक्तगण जिनके चरणकमल का ध्यानकर कर्माशय ग्रन्थि को काट सकते हैं, वैसे निरुद्ध इन्द्रिय योगीगण कर्माशय को शुद्ध नहीं कर पातेहैं, अतएव तुम शरणागत पालक उन्हीं वासुदेवका भजन करो ।।५७।। नारद प्राचीन बर्हिः संवादमें कथित है-भगवान् वासुदेव में भक्तियोग होनेपर सत्वर स्थायीरूप से वैराग्य एवं ज्ञान भी उत्पन्न होते हैं ।।५८।। पञ्चमस्कन्धस्य वर्षोपाख्यान में प्रह्लाद स्तुति में कथितहै कि-हरिभक्तियोग से सर्वाश्रयत्वादि अयत्नसे सिद्ध होते हैं-श्रीभगवान् में जिस की अकिञ्चना भक्ति हैं, उनमें समस्त देवगण अपने अपने गुणोंके द्वारा निवास करते हैं, अशेषसद्गुणवान्

६० । हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा,-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे,
तदा महत्वं बयसा दम्पतीनाम् ॥

६१ । तस्माद्रजोराग-विषाद-मन्यु,-
मान-स्पृहा-भय-दैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृति-चक्रवालं,
नृसिंह-पादं भजताकुतोभयम् ॥"

तथा हनूमत्स्तुतौ एकोनविंशाध्याये-(भा:५-१९-८)

६२ । "सुरोऽसुरो वाप्यथ बानरो नर:,
सर्वात्मना य: सुकृतज्ञमुत्तमम् ।

होनेपर ही भगवद् सेवक होना सम्भवहै। जिसकी भक्ति श्रीहरिमें नहींहै, उसमें महद्गुण नहीं होताहै, वह मनोरथ द्वारा नश्वर विषयों के और धावित होता रहता है ॥५९॥ श्रीभगवान् हरि ही शरीर धारियोंके साक्षात् प्रियआत्मा सुहृद्हैं, जैसे जल मछली के लिए चाह के विषय है, वैसाही शरीर के लिए श्रीहरि अपेक्षित पदार्थ हैं, शरीर धारी मनुष्य यदि महात्मा कहलाकर यदि शरीर और इन्द्रियों के सुखमें रत होजाते हैं, श्रीहरिको युक्तिवैराग्य द्वारा परित्याग करते हैं तो वे सव अज्ञसमाज की प्रथाके अनुसार वुड्डे वुड्डी को जैसा सम्मान दिया जाताहै वैसाही सम्मानके अधिकारी होंगे। ज्ञान विद्या आदि सद्गुणों का अभाव उसमें होनेके कारण उसमें महत्त्व वड़प्पन कुछ भी नहींहै ॥६०॥ अतएव गृह प्रभृति में आसक्तित्यागकर श्रीहरि के ही चरण कमलों को भजो, कारण विषयतृष्णा, विषाद, क्रोध, अभिमान, स्पृहा, भय; दीनता, मनकी पीड़ा इत्यादि दुर्गुण और कष्टोंका कारण, एवं जन्म मरणरूप संसार के पोधेको उगाने का आलवाल अर्थात् जलदेने का गामला गृहासक्ति है ॥६१॥

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं,

य उत्तराननयत् कोशलान् दिवम् ॥"

तथा षष्ठे द्वादशाध्याये (६-१२-२२) इन्द्रस्य वृत्र-प्रशंसायां हरौ भक्तियोगादन्यसुखापेक्षा नास्तीति प्रकाशयति—

६३ । "यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।

विक्रीड़तोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥"

हरौ भक्तियोगान्महाजन–शापेऽपि न कदाचिन्मति–विपर्ययो भवतीति प्रकाशयति–भवानीं प्रति चित्रकेतोरुक्तौ सप्तदशेऽध्याये–(भा: ६–१७–२४)

६४ । "अथ प्रसादये न त्वां शाप-मोक्षाय भामिनि ।

यन्मन्यसे ह्यसाधूक्तं मम तत् क्षम्यतां सति ॥"

भवानीं प्रति महेशोक्त्या-(भा: ६-१७-३१)

इसप्रकार हनुमत् स्तुतिमें वर्णित है–अतएव देवता, असुर, वानर, नर, कोई भी हो, सभी का एकमात्र कर्त्तव्य यही है कि सर्वतो भावेन मनुजाकृति हरि श्रीरामचन्द्रका भजन करें। क्यों कि स्वल्प भजन को भी आप वहुत समझते हैं। आपके भजन की महिमा क्या कहूँ ? आप वैकुण्ठ जातेसमय अयोध्यावासी सवप्रजाको अपने साथही लेगए थे, आपसे वढ़कर और कौन दीनदयाल होगा ? (६२) तथा षष्ठ स्कन्ध के वृत्रासुर प्रसङ्ग में वर्णित है श्रीहरि में भक्तियोग से अन्य सुखापेक्षा नहीं होती है–मुक्तिप्रदाता परममनोहर भगवान् हरि में जिनकी भक्ति है–वद अमृत सागर में विचरण करता है, उसके लिए चलायमान स्वल्पजलरूप स्वर्गादि विषयभोग के लिए मनधावित नहीं होता है ॥६३॥ श्रीहरि में भक्तियोग होनेपर महान् व्यक्ति के शापसे भी क़दाचित् मतिका विपर्यय नहीं होता है–चित्रकेतूपाख्यान द्वारा उसको प्रकाश करते हैं-हे भामिनि ! शापसे मुक्तहोने के लिए मैं स्तुति नहीं करता हूँ, जोकुछ मैंने कहाहै, उसको आप वुरा समझे तो मुझे क्षमाकरें ॥६४॥

६५।   "वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ।
ज्ञान-वैराग्य-वीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ।।"

तथा च परम-यातना-लाभेऽपि भक्तियोगात् मतिविपर्ययो न भवतीति सप्तमे प्रह्लाद-चरिते पञ्चम-षष्ठ-सप्तमाध्यायेषु प्रकाशयति-(७-५-५, ७-६-१८, ७-७-३७)

६६।   "तत् साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां,
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं,
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ।।"

६७।   "ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या,
दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ।
उपेत नारायणमादिदेवं,
स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ।।"

६८।   "अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः,
शरीरिणः संसृति-चक्रशातनम् ।

भवानी के प्रति महेश की उक्ति भी-जो जन भगवान् वासुदेव में भक्ति करताहै, उनमें ज्ञान वैराग्य प्रभृति की प्रौढ़ताका अभाव कभी भी नहीं होताहै ।।६५।। तथा परम यातना प्राप्तहोने परभी भक्तियोग से मतिका विपर्यय नहीं होताहै, प्रह्लाद चरित्रोदाहरण द्वारा कहते हैं-प्रह्लादजी कहते हैं-हे असुरवर्य ! मैं और मेरा इस असत्‌वुद्धि द्वारा मनुष्यका मन सदाही उद्विग्न रहता है । अतएब आत्मपतन का एकमात्र कारण अन्धकूप रूप गृहको छोड़कर वृन्दावन जाकर भगवान् हरिका आश्रय ग्रहण करना ही मैं उत्तम कर्त्तव्य समझता हूँ ।।६६।। अतएव हे असुरगण ! विषयरूप सव दैत्योंका संसर्ग छोड़ कर आदिदेव श्रीनारायण की शरण लो । वही निःसङ्गके वाञ्छनीय मोक्षस्वरूप हैं ।।६७।। संसार से मलिन हृदय वालेके लिए अधोक्षज

तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधा,-
स्ततोभजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥

ननु धन-दार-सुत-गृह-मही-कुञ्जर-कोष-विद्यादिकं त्यक्त्वा कथं भजेम ? तत्राह—(भा: ७-७-१०,४०,४८,५०)

६९। "रायः कलत्रं पशवः सुतादयो,
गृहा मही–कुञ्जर–कोश–भूतयः ।
सर्वेऽर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः,
कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥

७०। एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी,
क्षयिष्णवः सातिशया न निर्म्मलाः ।
तस्माददृष्ट-श्रुत-दूषणं परं,
भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये॥"

७१। "तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्म्माश्च यदपाश्रयाः ।
भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥"

भगवान् हरि का आश्रय ही शरीर धारियों के संसारचक्र को नाश करनेवाला है, बुधगण उसीको मुक्तिसुख कहते हैं, अतएव तुमसब अपने अपने हृदयमें अवस्थित अन्तर्यामी हरिका भजन करो ॥६८॥ अच्छा; धन, दार, पत्नी, सुत, गृह, मही, कुञ्जर, विद्या प्रभृति को छोड़कर कैसे हरिका भजन करेंगे ? इसलिए कहते हैं–धन, पत्नी, पशु, सुतसन्तति, गृह, मही, कुन्जर, कोश, ऐश्वर्य जितने भी अर्थ काम प्रभृति हैं, सवही क्षणभङ्गुर हैं, येसव चलायमान वस्तुसे मनुष्य की तृप्ति कैसे होगी ॥६९॥ इसप्रकार पुण्यकर्म यज्ञादि द्वारा जोकुछ स्वर्गादि लोकको प्राप्ति होतीहै, वे सव निर्मल नहीं हैं, अपरन्तु क्षयिष्णु हैं, अतएव जिसमें न कोई दोष देखने में सुनेने में आताहै, उस परमेश्वर को आत्मज्ञान के लिए भक्तिसे भजो ॥७०॥ अतएव

७२। "देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव वा।
भजन् मुकुन्द-चरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम् ॥"
ननु वयमसुर-योनयः कथं भजेम ? तत्राह-(७-७-५२,७-६-६,७-७-५३,५५
७३। "नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न वहुज्ञता ॥
७४। न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयते अमलया भक्त्या हरिरन्यद्विड़म्बनम् ॥"
७५। "मन्ये धनाभिजन-रूप-तपःश्रुतौज,-
स्तेजःप्रभाव-वल-पौरुष-वुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयुथपाय ॥"
७६। "ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥"

निष्काम निरीह होकर भी जिन के अधीन अर्थ, धर्म, काम प्रभृति है उन अनीह परमप्रिय ईश्वर हरिका भजन करो ॥७१॥ देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो मुकुन्द के चरणों का भजन करने से सवजन ही मेरीभाँति मङ्गल प्राप्तकर सकते हैं ॥७२॥ अच्छा है, किन्तु हम सव असुरहैं न, कैसे उनका भजन करसकते हैं ? हे असुर वालकगण ! मुकुन्द की प्रीतिके लिए द्विजत्व, देवत्व, ऋषित्व, धनी एवं पाण्डित्य योग्य नहीं है ॥७३॥ दान, तप, इज्या, यज्ञ, शौच, व्रतधारण प्रभृति साधन श्रीहरि को प्रसन्न नहीं करसकते हैं, श्रीहरि तो केवल अमलभक्तिसे ही प्रसन्न होतेहैं, भक्ति को छोड़कर और सव साधन ही विड़म्वना मात्रही हैं ॥७४॥ धन, अभिजन, रूप, तप, अध्ययन, प्रभाव, प्रभुत्व, ऐश्वर्य वल पौरुष, बुद्धियोग प्रभृति श्रीहरि की आराधना के लिए कुछभी सहायक नहीं वनते हैं, भगवान् पद्म

७७। "एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥"

तथा च चतुर्थे प्रचेतसः प्रति नारदोपदेशे एकत्रिंशाध्याये-(४-३१-६)

७८। "तज्जन्म तानि कर्म्माणि तदायुस्तन्मनो वचः।
नृणां येन हि विश्वात्मा सेब्यते हरिरीश्वरः ॥"

तथा यज्ञपत्नीं प्रति भगवदुक्तौ-(भा: १०-२३-२६ २७)

७९। "नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्यार्थदर्शिनः।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥

८०। प्राण-वुद्धि-मनः स्वात्मदारापत्य-धनादयः।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥"

तथा च भगवद्भजनेन पूर्णार्थत्वं सर्व्वपूज्यत्वं भवतीति प्रकाशयति सप्तचत्वारिंशाध्याये गोपीं प्रत्युद्धवोक्तौ (भा: १०-४०-२७-२५)

८१। "अहो युयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोक-पूजिताः।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥

पलाशलोचन हरि तो भक्तिसे ही हाथीके प्रति प्रसन्न हुये थे ॥७५॥ हे दानवगण! अतएव भगवान् हरिमें भक्ति करो ओर समस्त प्राणीयों को अपने समान ही देखो ॥७६॥ मनुष्य जगत् में मनुष्यों का यह ही एकमात्र स्वार्थ है-श्रीगोविन्द में एकान्तभक्ति एवं सर्वत्र उनको ही देखना है ॥७७॥ तथा चतुर्थस्कन्धस्थ प्रचेताके उपाख्यान में श्रीनारद के उपदेश इसप्रकार है-वह ही जन्म, कर्म, आयु, मन, वाणी, है, जिससे विश्वात्माईश्वर हरि की सेवा होती है ॥७८॥ यज्ञपत्नी के प्रति भगवान् की उक्ति इसप्रकार है-निज प्रियव्यक्ति को जैसी प्रीति कुशल स्वार्थपरायण व्यक्तिगण करते हैं, मेरे प्रति भी साक्षात् उसी प्रकार प्रीति विज्ञव्यक्तिगण करते हैं ॥७९॥ जिनके सम्पर्क से ही प्राण, वुद्धि, मन, आत्म, दार, अपत्य, धनादि प्रिय होते हैं, उनको छोड़कर अपर कौनव्यक्ति अधिक प्रिय ही सकताहै ॥८०॥

८२। दान-व्रत-तपोहोम-जप-स्वाध्याय-संयमैः।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥
८३। भगवत्युत्तमःश्लोके भवतीभिरनुत्तमा।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥
तथैकादशे द्वितीयाध्याये परीक्षितं प्रति शुकदेवोक्तौ-(११-२-२)
८४। "को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्द-चरणाम्बुजम्।
न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥
तथा च वसुदेव-नारद-संवादे-(भा: ११-२-३३, ३७)
८५। "मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य,
पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्,-
विश्वात्मना यत्र निवर्त्तते भीः ॥"

भगवद् भजनसे ही कृतार्थ एवं सर्वपूज्य-मानव होते हैं, दशमस्कन्धस्थ गोपीके प्रति उद्धव की उक्ति उक्तप्रकार है। अहो! आपसब धन्य हैं परिपूर्णहैं एवं सर्वलोक पूज्यहैं, भगवान् वासुदेव के प्रति आपलोकोंने आपने मनको समर्पण करदिया है ॥८१॥ दान, व्रत, तप, होम, जपस्वाध्याय, संयम, एवं विविध श्रेयस्कर कार्योंके द्वारा एकमात्र श्रीकृष्णभक्ति प्राप्ति की कामना साधित है ॥८२॥ उत्तमश्लोक भगवान् के प्रति भाग्यवश आपलोकोंने उत्तमाभक्ति का आचरण कियाहै, जो मुनियों के लिए भी दुर्लभ है ॥८३॥ एकादशस्कन्धस्थ द्वितीयाध्याय में परीक्षित के प्रति शुकदेव की उक्ति इसप्रकार है—हे राजन्! श्रेष्ठ देवतागण द्वारा उपास्य मुकुन्द चरणाम्बुजका भजन मृत्युग्रस्त इन्द्रियवान् कौन ऐसाव्यक्ति है जो नहीं करेगा? (८४) वासुदेव नारद संवादमें उक्तहै-मैं समझता हूँ कि-इस संसारमें अच्युत श्रीहरिके चरणाम्बुज की उपासना करना ही अकुतोभय एवं परमार्थ है। कारण असत् देहादि को आत्मा मानने के कारण जिनके चित्त

८६ । भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या,-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं,
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥"

तथा षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने दूतं प्रति यमोक्तौ (६-३-२२)

८७ । "एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥"

दशमेऽष्टचत्वारिंशाध्याये-(१०-४८ २६)

८८ । "कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्,-
भक्तिप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा,-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥"

व्यतिरेकेणाह षष्ठस्कन्धे नवमाध्याये वृत्रभयात् पलायन-पराणां देवानां स्तुतौ (६-९-२२)

उद्विग्न हो रहेहैं, उनका मृत्युभय इससे निवृत्त हो जाता है ॥८५॥ भय देहमें अभिनिवेश के कारण ही होताहै, भयहै-मृत्यु ! असत् का ध्यान करने वाले पुरुष का मनही मनोरथ से स्वप्न की भाँति उसको प्रकाश करता है । अतएव बुधगण को चाहिये कि वे श्रीगुरुचरण के आश्रित होकर भक्तिद्वारा हरिका भजन करें। कारण परमसुहृद श्रीहरि को भूलजाने के क़ारण ही मृत्युभय होताहै ॥८६॥ षष्ठ स्कन्ध में अजामिलोपाख्यान में वर्णित है-इस जगत् में मनुष्य के लिए परम धर्म वह है, परमप्रिय श्रीभगवान्के प्रति उनके नामग्रहण द्वारा भक्ति योगका अनुष्ठान, जिससे सम्पन्न हो ॥८७॥ दशमस्थ अटतालिस अध्यायमें है-आपको छोड़कर कोन ऐसापण्डितहै जो दुसरे की शरण ग्रहण करेगा, आप कृतज्ञ, सुहृद्, भक्तप्रिय, करुण हैं। भजन करने

८९ । "अविस्मितं तं परिपूर्ण-कामं,
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि वालिशः,
श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥"

अतो भगवद्भजनमेव श्रेयः । नन्वास्तां भगवद्भजनम्, ज्ञानकर्म्म-योगयोरपि स्वतन्त्रत्वाद्यत्र यस्य रुचिस्तदपि श्रेयोऽन्तरम् ? नैवम्, प्रथमतो ज्ञानयोगेनानन्दालाभात् फल-शून्यता, अतो निष्फले पुरुषप्रवृत्तिः परिश्रमायैव । तत्राह–तृतीयस्कन्धे विदुर-मैत्रेय-संवादे पञ्चमाध्याये—
(३-५-४६)

९० । "तथापरे चात्म-समाधियोग,-
वलेन जित्वा प्रकृतिं वलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति,
तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥"

वालेको तो आप सवकुछ दे देतेहैं, आत्मदान भी कर देतेहैं, तथापि आपमें कमी वेशी नहीं होती है ॥८८॥ वृत्रके भयसे पलायन परायण देवता की स्तुति में उक्तहै कि–अविस्मित, निरहङ्कार, कौतूहलशून्य रागादिशून्य, स्वराट्, आत्मलाभसे परिपूर्णकाम, उपाधिपरिच्छेदशून्य करुण परमेश्वर को छोड़कर जो जन अपर की शरणग्रहण करता है, वह पूर्णमूर्ख है, यज्ञिय पशुतुल्यहै, कारण वह कुत्तेकी पुंछको पकड़कर समुद्र का पारकरना चाहता है, जैसे उससे समुद्र तरण सम्भव नहीं है, डुवकर मरणा ही है, वैसेही अनीश्वर दूसरे के आश्रय ग्रहण से भी वासना सागरसे उत्तीर्ण होना असम्भव है ॥८९॥ अतएव भगवत् भजनही श्रेयस्करहै, मानताहूँ, तथापि ज्ञानकर्म योगकी भी स्वतन्त्रता है, अतएव जिसकी रूचि जहाँपर है उसका श्रेय, उसमार्गसे ही होगा ? ऐसा नहीं ? प्रथमत ज्ञानयोगसे आनन्द लाभ की सम्भावना नहीं है, अतएव उसमें फलशून्यता है । अत निष्फल में पुरुष प्रवृत्ति व्यर्थपरिश्रमके लिए ही होतीहै । विदुरमैत्रेय संवादमें इसका विवरण

तथा त्रयोदशाध्याये-(भा: ३-१३-१७)

९१। "येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्द्दनः।
तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम्॥"

तथा च दशमे द्वितीयाध्याये-(१०-२-३२)

९२। "येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन,-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्ध-बुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः,
पतन्त्यधोऽनादृत-युस्मदङ्घ्रयः॥"

अङ्घ्रयनादरेणानन्दालाभात् फलशून्यता। तथा च नवमेऽध्याये-(भा: १०-९-२१)

९३। "नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥"

है-समाधियोग से प्रकृति बलिष्ठ होनेपर भी संयत करके परमपुरुष आपको प्राप्त करते हैं, किन्तु उनका श्रमहीफल होताहै, किन्तु सेवासे जोफल प्राप्त होताहै, वह परिश्रमशून्य निर्भरशील निश्चितफलहै॥९०॥ त्रयोदशाध्यायमें कथितहै-यज्ञलिङ्ग जनार्दन भगवान् जिनके आचरण से तुष्ट नहीं होतेहैं, उसका श्रम विफल है, कारण उसने परमप्रिय आत्माका समादर ही नहीं किया॥९१॥ दशमके द्वितीयाध्याय में उक्तहै-हे अरविन्दाक्ष! जो लोक भक्तिद्वारा आपका भजन को छोड़ कर ज्ञानद्वारा विमुक्ताभिमान कर लेताहै, वह संयमरूप भयानक कष्टसे उन्नत स्थानप्राप्त करलेने परभी संसार में आपड़ता हैं, क्यों कि आपके चरणों का समादर उसने नहीं कियाहै॥९२॥ भगवत् चरणार विन्दका अनादरसे आनन्दलाभ तो होता ही नहीं अतएव वह निष्फल ही होता है, नवमाध्याय में इसका विवरण,-गोपिका सुत भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिमान् व्यक्तिके जैसा प्रियहैं, वैसा ज्ञानी एवं अन्यान्य मनुष्य के सुखद नहीं है॥९३॥

तथा दशमे ब्रह्मस्तुतौ– (१०-१४-३-५)

९४। "ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय-वार्त्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥

९५। श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध लब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूल-तुषावघातिनाम् ॥

९६। पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन,–
स्त्वदर्पितेहा निजकर्म्म-लब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया,
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥"

दशमके ब्रह्मस्तुति में वर्णितहै-जो लोक स्वरूपानुसन्धानरूप ज्ञान के लिए प्रयत्न न कर केवल श्रीकृष्ण को नमस्कार ही करता है, एवं सज्जन के मुखनिर्गलित कथा सुनकर ही जीवित रहता है, आप के धाममें स्थित होता है, तनमन वाणी से शरणागत भी होताहै उससे ही आप अजित होनेपर बद्ध हो जाते हैं ॥९४॥ हे विभो, श्रेयसमुहके उत्सरूप भक्ति को छोड़कर जो लोक केवल स्वरूप बोध के लिए ही यत्नकरता, उसका वह कृत्य केवल क्लेश बहुल ही होता है, जैसे तण्डुल के लिए तण्डुलहीन केवल स्थूल तूषराशिको कूटनेपर न तण्डुल निकलता अपितु क्लेश ही होताहै ॥९५॥ हे भूमन्! यह भक्तिमार्ग आधुनिक ही नहीं है किन्तु सुप्राचीन कालसे अनेक भक्तियोगीगण आत्मसमर्पण द्वारा कथा श्रवणरूप भक्तिद्वारा आपको प्राप्तकर सुखी होते हैं ॥९६॥

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे एकादशाध्याये-(११-११-१८)

९७। "शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः॥"

एतावतानुरक्तेऽपि हेयत्वं दर्शितम्। अत आह पञ्चमस्कन्धे ऋषभचरिते षष्ठेऽध्याये—(५-६-८)

९८। "राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां,
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः।
अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो,
मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्॥"

तथा वाय्वादिधारणयाजरत्वं दीर्घायुष्ट्वं साधयति, तदपि फलशून्यत्वान्निरस्तम्। तत्राह एकादशे भगवदुद्धवसंवादेऽष्टाविंशाध्याये-(११-२८-४३)

९९। "योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत् कल्पतामियात्।
तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः॥"

एकादशस्कन्ध में भगवदुद्धव संवाद का विवरण इसप्रकार है-शब्दब्रह्म में निष्णात होकर परब्रह्म श्रीकृष्ण की भक्तिमें निपुण नहीं होताहै, तो उसका वह दुग्धहीन धेनु की रक्षा की भाँति केवल क्लेश ही होता है॥९७॥ इसप्रकार अनुरक्त होनेपर भी हेयत्व है, अतएव पञ्चमस्कन्धस्थ ऋषभ चरित्रमें वर्णित है-हे राजन्! आप सबके एवं यदुकुलके मुकुन्द,-पति, गुरु, दैव, प्रिय, कुलपति, किङ्कर भी हैं, भगवान् मुकुन्द, भजन करने वाले को मुक्ति प्रदान तो करते ही हैं, किन्तु भक्तियोग प्रदान सहसा नहीं करते हैं॥९८॥ प्राणायाम के द्वारा जराशून्य एवं दीर्घायु होनेपरभी उसको फलशून्य ही कहाजाता है, एकादशस्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद में इसका विवरण इसप्रकार है-योगके आभ्यास से कायकल्पतो होताहै, किन्तु मतिमान्जन उसका आदर न कर भक्तिमान् वनें॥९९॥

तथा च दशमे श्रुत्यध्याये—(१०-८७-३३)

१००। "विजित-हृषीक-वायुभिरदान्त-मनस्तुरगं,
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।
व्यसन-शतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं,
वणिज इवाज सन्त्यकृत-कर्णधरा जलधौ ॥"

कर्म्मयोगोऽपि परम-दोषावहो निष्फलश्च, अतो महद्भिर्न समाचरणीयः।
तत्र प्रथमस्कन्धे सूतशौनकसंवादे द्वितीयाध्याये-(१-२-८-१०)

१०१। "धर्म्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

१०२। धर्म्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्म्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥

१०३। कामस्य नेन्द्रिय-प्रीतिर्लाभो जीवेत-यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्म्मभिः ॥"

दशमके श्रुति अध्यायमें वर्णित है-मन इन्द्रिय प्रभृति अतिचञ्चल होने परभी संयत करने के लिए विभिन्न उपायों के अवलम्बन से खिन्न होजाते हैं, क्यों कि वे सागरमें नाविक को छोड़कर नावको ग्रहण करने की जैसी अवस्था होती वैसी अवस्था होतीहै, कारण उनलोकोंने गुरुचरण का अवलम्बन नहीं किया है ॥१००॥ कर्मयोग भी परम दोषावह एवं निष्फल हैं, अतएव महद्व्यक्तिगण इसका आचरण न करें, प्रथमस्कन्ध के शौनकसूत संवादमें वर्णित विवरण इसप्रकार है-अपने अपने अधिकारोचित धर्मका अनुष्ठान उत्तमरूपसे होनेपरभी उससे यदि विष्वक्सेन की कथामें रुचि ही नहीं होती है तो वह अनुष्ठान केवलमात्र श्रमपूर्ण ही होगा ॥१०१॥ मुक्तिप्रद धर्मका फल अर्थ प्राप्ति ही नहीं है, धर्ममूलक अर्थका फल कामभोग ही नहीं है, कामका भी फल इन्द्रिय प्रीति नहीं है, किन्तु मानव जवतक जीवित रहेगा, तत्त्व, यथार्थवस्तु की जानने की इच्छा ही जीवन का एकमात्र

तथा व्यास-नारद-संवादे पञ्चमाध्याये-(भाः १-५-१७)

१०४। "त्यक्त्वा स्वधर्म्मं चरणाम्बुजं हरे,-
भंजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं,
को वार्थ आप्तोऽभजतां-स्वधर्म्मतः ॥"

तथा चैकादशेऽष्टाविंशाध्याये-(११-२८-२६)

१०५। "कुयोगिनो ये विहतान्तरायै,-
र्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ।
ते प्राक्तनाभ्यास-वलेन भूयो,
युञ्जन्ति योगं न तु कर्म्मतन्त्रम् ॥"

प्रथमस्कन्धे-(१-५-१८,३४;१-६-६)

१०६। "तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो,
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्य्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं,
कालेन सर्वत्र गभीर-रंहसा ॥"

फल है, वह कर्मसे नहीं होता है ॥१०२-३॥ व्यासनारद संवादे में उक्तहै-स्वधर्म परित्याग पूर्वक श्रीहरि के चरणाम्बुज का भजन करते करते अपक्वभजन अवस्थामें शरीर विनष्ट हो जानेपरभी कुछभी हानी नहीं होती है, अतएव स्वधर्म आचरण से फल ही क्या है ॥१०४॥ एकादशस्कन्ध के अष्टाविंशाध्याय में वर्णित है-मनुष्यभूत देवगणों के द्वारा अन्तराय उत्पन्न होनेपर कुयोगिगण योगभ्रष्ट होजाते हैं, किन्तु प्राक्तन आयास से पुनर्वार भक्तियोग को प्राप्त होते हैं किन्तु कर्मतन्त्र के अधीन नहीं होतेहैं ॥१०५॥ प्रथमस्कन्ध में उक्तहै-विद्वान्गण उसके लिए ही प्रयत्न करें जिस की समस्त शरीरप्राप्त होनेपर, प्राप्ति नहीं होती है । काल की गतिसे सर्वत्र दुःखके समान सर्वत्र सुखभी

१०७। "एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृति-हेतवः ।
त एवात्म-विनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥"

१०८। "यमादिभिर्योगपथैः काम-लोभ हतो मुहुः ।
मुकुन्द-सेवया यद्वत् तथाद्धात्मा न शाम्यति ॥"

तथा तृतीयस्कन्धे विदुरमैत्रेय सम्वादे सप्तमाध्याये-(३-७-४१)

१०९। "सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।
जीवाभय-प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥"

तथा पञ्चमस्कन्धे ऊनविंशाध्याये-(५-१९-२१)

११०। "किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै,-
दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायण-पादपङ्कज,-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥"

ननु स्वर्गादि-लोकानां नानासुखदातृत्वात् कथं निष्फलत्वम् ? तत्राह
मिलता रहता है, किन्तु तत्त्वज्ञान ही दुर्लभ है ॥१०६॥ इसप्रकार
(क्रियायोग) काम्यकर्म, पुनर्जन्म ग्रहण करने के लिए कारण ही है,
भक्तियोग के द्वारा पुनर्जन्म का कारण विनष्ट हो जाताहै ॥१०७॥
यमनियम आसन प्राणायाम प्रभृति योगमार्ग द्वारा पुनः पुनः काम
प्रभृतिके कवलमें साधक आ जाताहै, किन्तु मुकुन्द सेवासे जिसप्रकार
अनायास आत्मसंयम होता है वैसा योगपथ से नहीं होता है ॥१०८॥
तृतीयस्कन्धस्थ विदुर मैत्रेय संवादमें वर्णितहै–हे अनघ ! सकल वेद,
यज्ञ, तप, दान प्रभृति साधन जीवाभय प्रदान के लिए एक कलामात्र
भी समर्थ नहीं है ॥१०९॥ पञ्चमस्कन्ध के ऊनविंशाध्याय में कथित
है—दुष्कर यज्ञ, तप, व्रत, दान प्रभृति फल्गुस्वर्ग प्राप्ति प्रभृतिसे क्या
प्रयोजन है, क्यों उनसब स्थलों में केवल इन्द्रियोत्सव में मुग्धता ही
प्रकट होती है, श्रीनारायण के पादपङ्कज की स्मृति की सम्भावनाही
नहीं है ॥११०॥

एकादशे भगवदुद्धव-संवादे दशमाध्यायमारभ्य त्रयोदशाध्यायं यावत् (११-१०-२०)

१११। "को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥"

परञ्च नानाविघ्नादिना कर्मनिर्वाह एव न भवति। तत्राह (भा:११-१०-२१

११२। "श्रुतश्च दृष्टवद्दुष्टः स्पर्धासूयात्यय-व्ययैः ।
बह्वन्तराय-कामत्वात् कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥"

ननु परम-सावहितेन विघ्नापसारणादिकं कर्त्तव्यम् ? तत्राह—(११-१०-२२-२६,२९)

११३। "अन्तरायैरविहतो यदि धर्म्मः स्वनुष्ठितः ।
तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥

११४। इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ।
भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान्निजार्जितान् ॥

स्वर्गादि लोक अनेकानेक सुखद होने के कारण वे सब निष्फल कैसे होंगे ? इस विषयमें एकादश के दशमाध्याय से त्रयोदशाध्याय पर्यन्त भगवदुद्धव संवाद द्वारा कहते हैं कौन ऐसा विषय है जो वध करने के लिए जिसको लायागया है, उसको सुखीबना सकता है ? अतएव मृत्यु जब निकटमें रहतीहै तो काम कैसे सुखी करेगा ।।१११।। परन्तु नानाविघ्न से काम्यकर्म का निर्वाह ही नहीं होता है। इस को कहते हैं स्पर्धा, असूया, विनाश, एवं व्यय से खेतीके तरह काम्यकर्म भी दोषयुक्त है, कामनासे प्रवृत्त होने के कारण कृषि की भाँति वह निष्फल ही होता है ।।११२।। यदि परम सतर्क होकर विघ्नापसारण भी करे तो भी जैसीगति काम्य कर्म की होती है सुनो ! अनुष्ठित धर्म विघ्नसे यदि मुक्त होताहै तब, उससे जो स्थान मिलता है उसे श्रवण करो ।।११३।। याज्ञिकगण यज्ञद्वारा देवार्चन कर स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं, वहाँपर निजार्जित भोगसमूह का उपभोग देवताके समान वे लोक

११५। स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ।
गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेशधृक् ॥

११६। स्त्रीभिः कामग-यानेन किङ्किणीजालमालिना ।
क्रीड़न्न वेदात्मगतिं सुराक्रीड़ेषु निर्वृ तः ॥

११७। तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् काल-चालितः ॥"

११८। "कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ।
देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥"

अतएवाह चतुर्थस्कन्धे प्रचेतस प्रति नारदोपदेशे-(४-३१-१०-१२)

११९। "किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्र-सावित्र-याज्ञिकैः ।
कर्मभिर्वा त्रयी-प्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ।

१२०। श्रुतेन तपसा किंवा वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ।
बुद्धया वा किं निपुणया बलेनेन्द्रिय-राधसा ॥

करते हैं ॥११४॥ पुण्य से प्राप्त विमान में गन्धर्ववेष्टित होकर मनोहर वेशभूषासे सज्जित होकर वे लोक भ्रमण करते हैं ॥११५॥ संकल्प से चलने वाली विमान में मनोज्ञस्त्रीयों से विहार करने करते समय का ज्ञानही नहीं रहता है ॥११६॥ इसप्रकार विहार का सौभाग्य तवतक होता है, जबतक स्वोपार्जित पुण्य रहता है, पुण्यसमाप्त हो जानेपर काल की प्रेरणासे वे सब नीचेशिर कर पृथिवी में गिर पड़ते हैं ॥११७॥ पुनर्वार वे लोक क्लेशकर अनेक प्रकार कार्य करते रहते हैं, जिससे शरीर की प्राप्ति होती है, अतएव मरण धर्मशील के लिए सुख ही क्याहै ॥११८॥ चतुर्थस्कन्ध में प्रचेता के प्रति श्रीनारद जी के उपदेश में उक्तहै-शुक्र-सावित्र, याज्ञिक ये तीनजन्मों से क्या प्रयोजन है ? वेदोक्त काम्यकर्म से भी क्या प्रयोजन, यदि देवताकी आयुके समान भी आयुमिलेतो भी क्या प्रयोजन है ? (११९) वेदादि

१२१। किंवा योगेन सांख्येन न्यास-स्वाध्याययोरपि ।
किंवा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥"

नन्वात्मशुद्धिरेव फलम्? तत्राह-(भा:११-१४-२२;११-१९-८;११-२१-३१)

१२२। "धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥"

१२३। "कर्म्मणां परिणामित्वादाविरिञ्च्यादमङ्गलम् ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥"

१२४। स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवण-प्रियम् ।
आशिषो हृदि सङ्कल्प्य त्यजन्त्यर्थान् यथा वणिक् ॥"

इदानीं दोषाश्रयत्वं प्रकाशयति (भा: ११-२१-३२,३४)

शास्त्राध्ययन, तपस्या, मनोहर व्याख्यानचातुरी, निपुणबुद्धि, अधिकवल सामर्थ्य, अतिशय इन्द्रियशक्ति, प्रभृति से भी क्या प्रयोजनहै? (१२०) वेद अध्ययन, योग, तत्त्वज्ञान, सन्नयास, एवं अन्यान्य कल्याणप्रद कार्यों से भी क्या प्रयोजन है, जिसमें आत्मप्रद हरिकी प्राप्तिके लिए कुछभी सम्भावना नहीं है ॥१२१॥ उनसवों से आत्मशुद्धितों होती है, वह ही उनसवका फल है? उत्तर में कहते हैं–सत्यादि गुणयुक्त कर्म, तपस्यायुक्त विद्या भी यदि हरिभक्तिहीन होते हैं तो, वे सब चित्तशुद्धि करनेमें असमर्थ हैं॥१२२॥ काम्यकर्म एवं कर्मफल परिणामी है, एवं विरिञ्चि से लेकर जितने लोकहैं, वेसव निर्भरशील नहीं हैं। विज्ञजन उनसव को दृष्टवस्तु को भाँति ही नश्वर देखें ॥१२३॥ जिस प्रकार वणिक दुस्तर समुद्रलङ्घन कर वहुधन प्राप्ति करने की इच्छासे अपना जमाकिया हुआ धनको भी छोड़कर उभयभ्रष्ट होता है, वैसा ही अज्ञजन स्वप्नतुल्य अनित्य एवं केवल श्रवणप्रिय स्वर्गादि परलोक में अनेक प्रकार के सुखों की कल्पना करके उसके लिए धर्मादि चतुर्वर्गरूप श्रेष्ठपुरुषार्थों को भी गँवा देते हैं, उसलिए वे अत्यन्त मन्दमति हैं ॥१२४॥

१२५। "रजःसत्त्व-तमोनिष्ठा रजःसत्त्व-तमोजुषः ।
उपासते इन्द्रमुख्यान् देवादीन तथैव माम् ॥

१२६। इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ।
तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥

१२७। एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्त-मनसां नृणाम् ।
मानिनाञ्चातिस्तब्धानां मद्वार्त्तापि न रोचते ॥"

यान् यदर्थं यैर्यजन्ते, सर्व्वं मिथ्या ? तत्राह-(भा: ११-२३-२७)

१२८। "किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ।
मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥"

कर्मणां स्वभावदोषं प्रकाश्य कर्माभिधातुर्दोषं प्रकाशयति वेदेतिहास पुराण--भारतादिके सर्ववर्ण-धर्म्मनिरूपणानन्तरं भगवान् व्यासो मलिनान्तरात्मा वितर्कयामास। तत्राह प्रथमस्कन्धे व्यास-नारद-संवादे चतुर्थ-पञ्चमाध्याये--(१-४-२६-१-५-६,१२--१६)

१२९। "एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः ।
सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥

सम्प्रति दोषवर्णन भी करते हैं--रजगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्तिगण उक्तगुणयुक्त इन्द्रादि प्रमुख देवता की उपासना करते हैं, भगवान् श्रीहरि की आराधना नहीं करते हैं ॥१२५॥ यज्ञद्वारा देवता को उपासना कर स्वर्ग गमन करेंगे। वहाँ जाकर प्रचुर विषयभोग करेंगे। एवंपुनर्बार धनी महाकुल सम्पन्न होकर पुण्यकर्म करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार आपातत रमणीय वाणीसे आक्षिप्त चित्त होकर काम्यकर्म प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते रहते हैं, श्रीहरि कथा उनसव की रुचिकर नहीं होती है ॥१२७॥ जो भी व्यक्ति जिस किसी वस्तु के लिए किसी भी देवता की आराधना करते हैं, वे सव ही मिथ्या हैं, कारण धन, धनद, काम एवं कामद, से क्या प्रयोजन सिद्धहोगा, जो जन मृत्यु से ग्रस्त है, उसके लिए काम्यकर्म एवं तदनुरूप जन्मसे लाभ ही क्या

१३०। नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ।
वितर्कयन् विविक्तस्थ इदञ्चोवाच धर्मवित् ॥

१३१। धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतञ्चानुशासनम् ॥

१३२। भारत-व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थः प्रदर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादिः स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥

१३३। तथापि वत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ।
असम्पन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥

१३४। किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥

होगा ? (१२८)

काम्यकर्म समूह स्वाभाविक दोषग्रस्त है, उसका प्रकाशन करने लिए काम्यकर्म प्रचारक व्यक्ति भी उक्तदोष से ग्रस्त हो गया था, इसका विवरण देते हुये कहतेहैं, वेद, इतिहास, पुराण, भारतादि ग्रन्थमें सर्ववर्ण धर्म निरूपणानन्तर भगवान् व्यासदेव मलिनचित्त होकर चिन्ता किये थे। प्रथमस्कन्धस्थ व्यासनारद संवाद में इसका विवरण निम्नोक्त रूपहै,—

सरलता से सवप्रकार से मानवों के हितकर ज्ञानप्रदान कार्यमें प्रवृत्त होने परभी व्यासदेव के हृदय मलिन हो गया था ॥१२६॥ अतिशय मलिन हृदय धर्मवित् व्यासदेव सरस्वतीतटस्थ एकान्त पवित्र स्थान में बैठकर शोचने लगे ॥१३० मैंने श्रीगुरुदेवके अनुशासन को निष्कपट भावसे पालन किया, यथावत् धर्मनियम में रहकर अध्ययन एवं स्वधर्माचरण भी किया ॥१३१॥ ज्ञानदान से ही जीवकल्याण होता है, अतः वेदार्थ के प्रकाशन के लिए ही मैंने महाभारतग्रन्थ लिखा, जिससे स्त्री, शूद्र, प्रभृति व्यक्ति भी वेदार्थ को अनायास जान सकेंगे ॥१३२॥ मैंने धर्माचरण एवं विद्यादान कर्म सर्वोत्तमरूप से

१३५। तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ।
कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ।।

१३६। तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिम् ।
पूजयामास विधिवन्नारदं सुर-पूजितम् ।।

१३७। अथ तं सुखमासीन उपासीनं वृहच्छ्रवाः ।
देवर्षिः प्राह विप्रर्षिः वीणापाणिः स्मयन्निव ।।

१३८। पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ।
परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ।।

१३९। जिज्ञासितं सुसम्पन्नमपि ते महदद्भुतम् ।
कृतवान् भारतं यस्त्वं सर्वार्थ-परिवृंहितम् ।।

१४०। जिज्ञासितमधीतञ्च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
तथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ।।

किया है, तथापि मेरी आत्मा अशान्तिग्रस्थ होकर असम्पन्न की भाँति होगई ।।१३३।। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखनिर्गलित भागवतधर्म का निरूपण क्या मैंने पूर्णरूपसे नहीं किया, परमहंसगणके वह भक्ति धर्म एकमात्र प्रिय है, और वे सवही अच्युत के भी प्रिय हैं ।।१३४।। व्यासजी अपने के वारेमें जव उसप्रकार शोचही रहे थे और अपनी योग्यता की तुच्छता का अमुभव कर रहे थे, उस समय उनके आश्रम में श्रीनारद जी पधारे थे ।।१३५।। व्यासजी उनके आगमन को जानकर उठकर खड़े होगये और सुरपूजित श्रीनारदजी का उन्हों ने विधिवत् पूजन किया ।।१३६।। अनन्तर सुखोपविष्ट श्रीनारदजी के समीप में उपविष्ट विप्रर्षि व्यासदेव को वीणापाणि वृहच्छ्रवा देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुये वोले ।।१३७।। हे पाराशर्य ! हे महाभाग ! आपका शरीर, मन, आत्मा प्रसन्न है न ? (१३८) आपने उत्तमरूप से वेदादि शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन का सुप्रचार किया, एवं समस्त अर्थयुक्त महत् अद्भुत ग्रन्थ महाभारत का भी प्रणयन

व्यासोक्ती—

१४१। अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं,तथापि नात्मा परितुष्यते मे
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं, पृच्छामहे त्वात्मभवात्मभूतम् ॥

१४२। स वै भवान् वेद समस्त गुह्य,-
मुपासितो यत् पुरुषः पुराणः ।
परावरेशो मनसैव विश्वं,
सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ॥

१४३। त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकी,-
मन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः,
स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥

किया ॥१३९॥ सनातन ब्रह्मरूप वेदादि शास्त्रों का अध्ययन आपका सर्वथा आचरण पूर्वक प्रचारण से सफल रहा, तथापि क्यों आप अकृतार्थ के समान ही समर्थ होकर भी शोच रहे हो ? (१४०) व्यास जीने कहा—आप की कही हुई सबबात ही मुझमें सर्वथा है, तथापि मेरी आतमा सन्तुष्ट नहीं है, उसका कारण क्या है, मैं आपसे जानना चाहता हूँ। आप समदर्शी सर्वज्ञ हैं ॥१४१॥ आप वेदगुह्य समस्त बातको जानतें हैं, कारण आपने पुराण पुरुष को उपासना द्वारा जाने हैं, जो असङ्ग होकर भी संकल्प द्वारा ही जगत् को उत्पन्न, पालन, एवं नाश करता हैं, एवं उस विषय में अहङ्कार में लिप्त नहीं होता ॥१४१॥ आप तिन लोकों में सूर्यके समानज्ञान प्रदान करने के लिए विचरण करते रहते हैं, एवं वायुके समान अन्दर बाहर की बात को भी जानते हैं, अतएव धर्म व्रतादि द्वारा ब्रह्मोपासना करने परभी मुझमें न्युनता क्यों आई है ? इसका विचार आप अवश्य करें ॥१४३॥

श्रीनारदोक्तौ—

१४४। भवतानुदित-प्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥

१४५। यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्त्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥"

१४६। "नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाव-वर्जितं,
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे,
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥

१४७। अथो महाभाग भवानमोघदृक्,
शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिल--बन्ध--मुक्तये,
समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥

श्रीनारदजी बोले। आपने परमकरुण भगवान् के अमलयश का वर्णन नकारके बराबर ही किया है, जिससे भगवान् श्रीहरि सन्तुष्ट नहीं हुए, ओर सर्वसामर्थ्य युक्त आपकी आत्मा में तुच्छता आगई है ॥१४४॥ आपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ का वर्णन जितना अधिक रूपसे किया है, उसके परिमाणमें वासुदेव की महिमा का वर्णन आपने किया ही नही ॥१४५॥ निरञ्जन, नैष्कर्म्य जो ज्ञान निर्वाण मुक्तिके लिए उपयोगी है, वह अच्युत की भक्ति से रहित होनेपर, मुक्ति प्रदान में असमर्थ है, तब काम्यकर्म जो कि सर्वथा अमङ्गल कर ही है, फलप्रदान में कैसे समर्थ होगा ? भगवान् में अर्पण करके करे अथवा करके अर्पण करे, तो भी पहले से कुछभी विशेष नहीं होता है, जैसे सकामकर्म की गति है वैसे ही गति निष्काम की हैं, भक्तिके बिनाफल प्रदान वह

१४८। अतोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः,
पृथग्दृशस्तत्कृत–रूपनामभिः ।
न कुत्रचित् क्वापि च दुःस्थिता मति,-
र्लभेत वाताहत–नौरिवास्पदम् ॥

१४९। जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः,
स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो,
न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥

१५०। विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभो,-
रनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
प्रवर्त्तमानस्य गुणैरनात्मन,-
स्ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥"

समर्थ नहीं है ॥१४६॥ अतएव हे महाभाग ! आपकी दृष्टि अमोघ हैं, एवं आप पवित्र यशयुक्त, सत्यवादी, दृढ़व्रती हैं, अखिलबन्ध मुक्ति के लिए समाधिस्थ होकर उरुक्रम श्रीहरि के चरित्र का वर्णन करिए ॥१४७॥ इससे अन्य विषयों के वर्णन से ग्रहणकारी का मन चञ्चल हो जाता है और वायुसे चालित नाव के समान उसकी गति हो जाती है, कहींपर स्थिति नहीं होती है ॥१४८॥ धार्मिक व्यक्ति की प्रवृति यदि स्वार्थप्रद काम्यकर्म के प्रति अधिक हो तो स्वाभाविक प्रवृत्ति वाले के लिए तो वह सहायक हो जाता, कारण वे लोक अपनें उद्देश्य पूर्त्तिके लिए महज्जन के वाक्य को प्रमाण मानते हैं, और स्वार्थपरायणता से उनसब को निवृत्त नहीं किया जा सकताहै ॥१४९॥ आप अतिशय निपुणव्यक्ति हैं, निवृत्ति से ही सुख सम्भव है, अतएव अनन्तपार परमकरुण श्रीहरि के चरित्र का वर्णन लोकहित के लिए आप करें ॥१५०॥

तथा वेदस्यापि दोषाश्रयत्वं प्रकाशयति द्वितीयस्कन्धे द्वितीयाध्याये श्रीशुकदेवोक्तथा-(२-२-२.३)

१५१। "शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था,
यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्,
मायामये वासनया शयानः॥

१५२। अतः कविर्नामसु यावदर्थः,
स्यादप्रमत्तो व्यवसाय-बुद्धिः।
सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र,
परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः॥"

तथैकादशे वासुदेव-नारद-संवादे तृतीयाध्याये-(११-३-४४)

१५३। "परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा॥"

वेदस्थ काम्यकर्म के आश्रय से जो दोष होता है-उसका वर्णन द्वितीय स्कन्धस्थ द्वितीयाध्याय के आधार से वर्णन करते हैं-शब्दब्रह्ममय वेद के अनुकूल यज्ञादि मार्गमें प्रवृत्त मनुष्य,-नश्वर स्वर्गादि सुखके लिए यत्न करते हैं, किन्तु यथार्थ सुख प्राप्त वे लोक नहीं कर पाते हैं। स्वर्गसुख स्वाप्निकसुख के समान है॥१५१॥ अतएव निपुण व्यक्ति संयत होकर जितना प्रयोजन हो तदनुरूप ही निर्वाह के लिए विषय ग्रहण करें, व्यवसायवुद्धि एवं अप्रमत्त होकर भगवत् चरित्र से शिक्षा प्राप्त करें। दुःखके समान सुख भी स्वतः प्राप्त है, अतएव उसके लिए परिश्रम न करके भगवद् भक्ति में मतिको नियुक्त करें॥१५२॥ एकादशस्कन्धस्थ तृतीयाध्याय में वासुदेव नारद संवाद इसप्रकारहै-वेदका तात्पर्य सुदुर्ज्ञेय हैं, कारण उसमें सवविषय परोक्षवादसे वर्णित हैं, यथार्थ अभिप्राय को छिपाकर वहाने से वर्णन हुआ है। जैसे बालेक को ओषध पिलाने के लिए कहानी सुनाकर लड्डू के लोभ

तथा चतुर्थस्कन्धे नारद-प्राचीनवर्हिःसंवादे ऊनत्रिंशाध्याये(४-२९-४९)

१५४। "एवं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्द्दनः ।
आहु धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥"

तथा च षष्ठस्कन्धे इन्द्रोक्तौ सप्तमाध्याये- ६-७-१४)

१५५। "तेषां कुपथ-देष्टृणां पततां तमसि ह्यदः ।
ये श्रद्दधुर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥"

तथा देवान् प्रति भगवदुक्तौ नवमाध्याये-(भाः६-९-४८,४९)

१५६। "न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥

१५७। स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥"

देकर औषध पिलाई जातीहै वैसे ही वेद बालक के समान अल्पज्ञ को परोक्षवाद से स्वर्गादि फल को दिखाकर काम्य कर्मों से मुक्त करने के लिए यज्ञादि कर्मोंका उपदेश देतेहैं ॥१५३॥ चतुर्थस्कन्ध में नारद प्राचीन वर्हिःसंवाद में वर्णितहै-जो लोक धूम्रधिय हैं वे लोक जनार्दन एवं उनके स्थानको नहीं जानते हैं, वे तो धुएँसे अपनी बुद्धि को मलिन कर चूके हैं, अतएव वेदका तात्पर्य काम्यकर्म पर है, ऐसा कहते हैं, वे लोक वेद का यथार्थ तात्पर्य नहीं जानते हैं ॥१५४॥ षष्ठस्कन्धस्थ इन्द्रकी उक्तिमें कथित है-जो लोक काम्यकर्म का उपदेश देताहै, वे लोक कुपथका उपदेशक है, वे लोक स्वयं निज उपदेश के साथ निविड़ अन्धकाररूप नरक में पड़ते हैं, जो लोक उनके वचन में विश्वस्त होकर चलते हैं, वे लोक पत्थर की नाव के समान ही डूबकर मरते हैं ॥१५५॥ देवताओं के प्रति श्रीभगवान् की उक्ति इसप्रकार है-जो जन हेय विषयों को परमार्थ समझता है, वह अत्यन्त मूर्खहै, कृपण होने के कारण वह अपने कल्याण को समझ नहीं पाता है, ऐसे व्यक्ति को जो अभीष्टका दान करताहै वह भी मूढ़ है, ॥१५६॥

(भा: ५-५-१७) "१५८। कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चि,-

दविद्यायामन्तरे वर्त्तमानम् ।

दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धि,

प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे एकविंशाध्याये-(११-२१-२८)

१५९। "न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ।

उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहार-चक्षुषः ॥"

कर्माभिधातुर्दोषं प्रकाश्य कर्मकर्त्तृदोषं प्रकाशयति तृतीयस्कन्धे विदुरमैत्रेय-संवादे पञ्चमाध्याये-(३-५-२)

१६०। "सुखाय कर्माणि करोति लोको,

न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ।

स्वयं मुक्तिमार्ग को जानकर कभी भी अज्ञव्यक्ति को काम्यकर्म का उपदेश नही देता है, उत्तम चिकित्सक कभी भी मांगने परभी रोगी को कुपथ्य नहीं देता है ॥१५७॥ स्वयं कुमार्ग को जानकर कभी भी अज्ञव्यक्ति को उस कुमार्गका उपदेश नहीं देताहै, अन्धव्यक्ति जब कुमार्गपर चलने लगता है, तो दयालुसज्जन उसे उससे सत्पथ में ले आते हैं ॥१५८॥ एकादशस्कन्ध के भगवदुद्धव संवादमें वर्णित है-हे उद्धव ! मैं सबके हृदय में अवस्थित हूँ, तथापि मुझे लोक नहीं जानते हैं, अहङ्कार को तो जानते हैं, किन्तु परमात्मा को नहीं जानते हैं, जिससे जगत् को सृष्टि स्थिति प्रभृति होती है, न जानने के कारणहै कि वे लोक काम्यकर्म को पशुहिंसा को ही सार्थक मानते हैं। वे लोक केवल देहेन्द्रिय परायण होते हैं, अतएव तमव्याप्त चक्षुद्वारा सन्निहित वस्तु को भी देख नहीं पातेहैं ॥१५९॥ काम्यकर्म में प्रवृत्त कराने वाले का दोष को कहकर सम्प्रति काम्यकर्माचरण कारि का दोष कहते हैं-तृतीयस्कन्धस्थ विदुर मैत्रेयसंवाद के द्वारा-स्वार्थपरायण व्यक्तिगण स्वयंसुखी होनेके लिए काम्यकर्म का अनुष्ठान

विन्देत भूयस्तत एव दुःखं,

यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥"

चतुर्थ-स्कन्धे नारद-प्राचीनवर्हिःसंवादे ऊनत्रिंशाध्याये—(४-२९-४३-४६,५०)

१६१। "प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान् गिरिशो मनुः ।
दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥

१६२। मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वशिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥

१६३। अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्या-समाधिभिः ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम् ॥

१६४। शाब्दे ब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे ।
मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥"

करत रहते हैं, किन्तु उससे सुख को प्राप्ति नहीं होती, नतो दु ख की निवृत्ति ही होती है, किन्तु वह व्यक्ति पुनर्वार कर्म फल भोग करने के लिए जन्मग्रहण करता है, और दुःखको प्राप्त करता है। कारण वह श्रीभगवान्के चरणोंमें शरण नहीं लेताहै ॥१६०॥ चतुर्थस्कन्धस्थ ऊनत्रिंशाध्याय में प्राचीनवर्हि संवाद द्वारा कहते हैं-प्रजापतिपति साक्षात् भगवान् गिरीश,मनु,दक्षादि प्रजाध्यक्ष,नैष्ठिक सनकादि ॥१६१ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलहक्रतु, भृगु, वशिष्ठ, नारद प्रभृति ब्रह्मवादिगण ॥१६२॥ वाचस्पतिगण भी तप विद्या समाधि प्रभृति द्वारा परमेश्वर को जान नहीं पातेहैं, ईश्वर अनुकम्पा ही उन को जानने के लिए प्रधान अवलम्बन है ॥१६३॥ कारण शब्दब्रह्म अतिविस्तृत है, अर्थ भी पारशून्य है, मन्त्रालिङ्ग वामतः वज्रहस्त पुरन्दर है, इसप्रकार परिच्छिन्न इन्द्रापि देवता को मानका उपासना करते रहते हैं, कर्मोंके आग्रह से भजन जब करतेहैं तो परमेश्वर को

१६५। "आस्तीर्य्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम् ।
स्तब्धो वृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥"

तथा चतुर्थे-(४-२९-३१,३२)

१६६। "क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ।
चरन् विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥

१६७। तथा कामाशयो जीव उच्चावच-पथा भ्रमन् ।
उपर्य्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥"

तथा ब्रह्म-नारद-संवादे ब्रह्मोक्तौ द्वितीयस्कन्धे षष्ठेऽध्याये-(२-६-३५)

१६८। "सोऽहं समाम्नायस्तपोमयः,
प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ।
आस्थाय योगंनिपुणं समाहित,-
स्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसम्भवः ॥"

तथा च सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते-(७-७-४१,४६,४७;७-९-४६)

जान नहीं पाते हैं ॥१६४॥ विशेषकर काम्यकर्मानुष्ठान करते करते अभिमान हो जाता है, वे लोक अतिमूर्ख होतेहैं, पशुवध द्वारा यज्ञानुष्ठान एवं कुशके द्वारा पृथिवी को आवृत कर देंगे, इसप्रकार अभिमान द्वारा अविनीत हो जाते हैं। अतएव जिससे श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उसकर्म को जानते ही नहीं है ॥१६५॥ चतुथ के (४-२९-३१, ३२) में कहाहै कि-जिस प्रकार दीन कुक्कुर क्षुधासे पीड़ित होकर घर घर घूमता रहता है, भाग्यसे कुछमिलता है तो अन्यकुछ दण्ड हीं मिलता है ॥१६६॥ जिस प्रकार कर्मवासनायुक्त जीव उत्तम, अधम गति को प्राप्त करतेहैं एवं भाग्यक्रम से प्रिय एवं अप्रिय को भी प्राप्त करते हैं ॥१६७॥ ब्रह्म नारद संवादमें कहागया है-ब्रह्मा कहते हैं-मैं वेदमय तपोमय, प्रजापतियोंके पति एवं वन्दित होकर भी निपुणता से समाधिस्थ होने परभी आत्मसम्भव के स्थान को जान नहीं पाया ॥१६८॥

१६९। "यदर्थ इह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ।
करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ।।"

१७०। "निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान् देहभृतोऽसुराः ।
निषेकाद्यवस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ।।

१७१। कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्त्तिना ।
कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ।।"

१७२। मौन-व्रत-श्रुत-तपोऽध्ययन-स्वधर्म,-
व्याख्या-रहोजप-समाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां,
वार्त्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ।।"

तथा दशमस्कन्धे याज्ञिकानामात्म-निन्दायां त्रयोविंशाध्याये—(१०-२३-३८,४०)

१७३। "दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानञ्च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ।।

सप्तमस्कन्धस्थ प्रह्लाद चरित्र में—पण्डित अभिमानी व्यक्ति जिस के लिए काम्यकर्म का अनुष्ठान करता रहता है,उससे सुनिश्चित विपरीत फल ही मिलता है ।।१६९।। अतएव निर्णय करना आवश्यक है कि-देहधारी के लिए कौन सा स्वार्थ है, कर्मद्वारा वह तो निषेक से लेकर सकल अवस्था में घुमता रहता है ।।१७०।। देही काम्यकर्म का ही अनुष्ठान करता रहता है, उस अविवेक से देहद्वय की सृष्टि होती है ।।१७१।। मौन व्रत अध्ययन, तप, श्रवण स्वधर्म, व्याख्या, एकान्त वास जपसमाधि, मुक्तिकासाधन,आत्मवोध प्रभृति साधन अजितेन्द्रिय दाम्भिकव्यक्ति के लिए जीविका वनजाते हैं ।।१७२।। दशमस्कन्ध में याज्ञिकों की आत्मनिन्दाप्रसङ्गमें उक्तहै—भगवान् श्रीकृष्णमें स्त्रियों की अलौकिकी भक्ति को देखकर याज्ञिकगण अपने को हीन मानकर

१७४। धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग्वहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

१७५। नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥"

नानायज्ञ दानाध्ययनाध्यापन-तपस्यादिमतां कृष्णे विमुखता, एतैर्विहीनानां स्त्रीणां कृष्णे अलौकिकी भक्तिरित्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां कर्मकर्त्तृणां दोषं द्रढ़यति,(१०-२३-४१,४३,४७,४८,५२)

१७६। "अहोपश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ,
दुरन्तभावं योऽविध्यन् मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥

१७७। नासां द्विजाति-संस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥

१७८। तथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढ़ा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥"

धिक्कार देने लगे थे ॥१७३॥ हमारे जन्म धिक्, संस्कार, विद्याध्ययन व्रत, वहुज्ञता, कुल,क्रिया, निपुणता दीक्षा, सब धिक्कार के योग्य है, अधोक्षज में जो विमुख है, वे सव धिक्कार के योग्य हैं ॥१७४॥ निश्चय ही भगवान् की माया मायावी कोभी मुग्ध करती है, हमसब मनुष्यों के गुरु होते हुये भी मुग्ध हो गये हैं ॥१७५॥

नानायज्ञ, दान अध्ययन अध्यापन तपस्यादि युक्त व्यक्तिगण भी कृष्णके प्रति विमुख होतेहैं। उक्त सम्पत्ति जिनमें नहींहैं ऐसी स्त्रीयों में कृष्ण में अलौकिकी भक्ति देखी गईहै, अन्वयव्यतिरेक द्वारा काम्य कर्म आचरण कारियों के दोष का प्रतिपादन करते हैं—
अहो देखो ! जगद्गुरु कृष्ण के प्रति उत्तमा भक्ति हुई है, जिससे संसार नामक मृत्युपाश भी नष्ट होगया ॥१७६॥ उसमें द्विजाति संस्कार, गुरुगृहवास, अध्ययन, तप, आत्म मीमांसा, शौच, शुभक्रिया प्रभृति कुछभी नहींहै ॥१७७॥ तथापि योगेश्वरेश्वर उत्तमश्लोक कृष्ण

१७९। "देशःकालः पृथग् द्रव्यं मन्त्र-तन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥

१८०। स एव भगवान् साक्षात्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
जातो यदुष्वित्यशृण्म ह्यपि मूढ़ा न विद्महे ॥"

१८१। "इति स्वाधमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृत-हेलनाः ।
दिदृक्षवो व्रजमथ कंसाद्भीता न चाचलन् ॥"
भगवत्तत्त्व-ज्ञानेऽपि कंसभयाद् द्रष्टुं न गताः ।
एतावता कर्मकर्त्तृणां दोषाश्रवत्वं प्रकाशितम् ॥

तथा च दशमे मुचुकुन्द-स्तुतौ एकपञ्चाशत्तमाध्याये-(१०-५१-५२)

१८२। "करोति कर्माणि तपः सुनिष्ठितो,
निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।
पुनश्च भूयासमहं स्वराड़िति,
प्रवृद्धतर्पो न सुखाय कल्पते ॥"

में दृढ़ा भक्ति हुई है, हमसव संस्कारादि निखिल गुणयुक्त होनेपर भी उनके प्रति हमारीभक्ति नहीं हुईहै ॥१७८॥ देश,काल,द्रव्य,मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विक्, अग्नि, यजमान, देवता, क्रतुधर्म सव ही श्रीकृष्ण हैं ॥१७९॥ योगेश्वरेश्वर भगवान् साक्षात् विष्णु यदुकुल में आविर्भूत हुए हैं, शुनकर भी मूढ़ा हम नहीं जान पाये ॥१८०॥ इस अपना अपराध को जानते हुए भी कृष्ण का अवहेलन इनलोकों ने किया, और कंस के भयसे भीत होकर श्रीकृष्णको देखनेके लिए नहीं गये । भगवत्तत्त्व ज्ञान होनेपर कंसके भयसे कृष्ण को देखने के लिए नहीं गये । इससे स्वार्थपरायण व्यक्ति जव अपने लिए काम्य कर्मानुष्ठान करते हैं तो वे दोष दुष्ट होजातें हैं ॥१८१॥ दिग्विजयी राजा होनेपरभी एक समान राजाओं से पूजित होनेपर भी मिथुनीभाव सुरत ही एकमात्र सुखशान्ति एवं मानव जीवन का फल है, इसप्रकार मानकर योषित

तथा चैकादशे वसुदेव-नारद-संवादे तृतीयाध्याये-(११-३-६,७,१८)

१८३। "कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् ।
तत्तत् कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह सुखेतरम् ।।

१८४। इत्थं कर्मगतीर्गच्छन् बह्वभद्रवहाः पुमान् ।
आभूत-संप्लवात् सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ।।"

१८५। "कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत् पाक-विपर्यासं मिथुनाचारिणां नृणाम् ।।"

पाक-विपर्यासं विवृणोमि—(भाः ११-३-१९)

के क्रीड़ामृग के समान स्त्रीके इसारे पुरुष चलने लगता है। किन्तु अति तृष्णाकुल व्यक्ति के लिए विषय भोगमें कुछभी सुख नहीं होता है। तपस्या नीचेसोना, ब्रह्मचर्य का सुनिस्थित रूपसे पालन कर स्वराङ् इन्द्र वनें गे, अथवा जन्मान्तर में इसप्रकार चक्रवर्त्ती राजा वनें गे, इसप्रकार वासना से वह जन कभी भी सुखी नहीं होता है ।।१८२।। अन्तर्यामी द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों से विषय भोगकरने के लिए शरीरको ही जीव अपना मानलेता और आसक्तिसे कर्माचरण द्वारा पुनर्जन्मप्राप्त करलेता है। भोग करने के वाद कैसे आसक्ति होगी, मुक्ति ही होना चाहिये ? उत्तर-कर्मन्द्रिय द्वारा वासना के अनुरूप करके कर्मफल का ग्रहण पूर्ववत् करने से पूर्ववत् ही संसार होता है, मुक्ति नहीं होती है, कर्म भी सुखदुःखात्मक होताहै ।।१८३।। कव तक वहजीव भ्रमण करता है ? उत्तर में कहते हैं इस प्रकार अनेकानेक अभद्र प्रापक शरीर में घूमने लगता है, प्रलयके वाद सृष्टि, सृष्टि के वाद प्रलय, इसप्रकार शरीर ग्रहण का परिच्छेद नहीं होता है ।।१८४।। शरीर में आत्मवुद्धि वाले की मुक्ति भक्ति को छोड़कर किसी से भी नहीं होती है, प्रथम विषयवैराग्य द्वारा ही गुरूपसत्ति है, दुःख से मुक्त होने के लिए काम्यकर्म का अनुष्ठान जीव करता है, एवं विवाह करलेता हैं, और पाकविपर्यासरूप फल उससे मिलजाता है ।।१८५।।

१८६। "नित्यार्त्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्त-पशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥"

एतेषां वियोगाच्छोक-सम्मोहादिना नानाक्लेशाव्याप्तेः। तथा च भगवद् वसुदेव-संवादे एकविंशाध्याये-(११-२१-३०)

१८७। "हिंसाविहारा ह्यलब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृ भूतपतीन् खलाः ॥"

(भाः ११-२२-३८)—

१८८। "ध्यायन्मनोऽनुविषयान् दृष्टान् वानुश्रुतानथ ।
उद्यत् सीद्यत् कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनुशाम्यति ॥

अन्वय-व्यतिरेकेणाह-(भाः ११-२९-३)

१८९। "अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं,
हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।
सुखं नु विश्वेश्वर योग-कर्मभि,-
स्त्वन्माययामी विहता न मानिनः ॥"

पाकविपर्यास इसप्रकार है-कर्म से प्राप्त वित्तादि सुखद नहीं होते हैं, इसप्रकार अवश्य विचार कर देखें। नित्य ही दुःखद वित्तादि होते हैं, एवं आत्माका पतन भी उसी से होताहै, अतएव गृह, अपत्य, कुटुम्ब, पशु प्रभृति सव ही नश्वर है, उस अनित्य एवं विनाशी वस्तुयों में प्रीति दुःखद ही है ॥१८६॥ इस सव से वियोग होनेपर शोक मोह प्रभृति द्वारा नाना प्रकार क्लेश होते रहते हैं, वसुदेव संवादमें वर्णित है-अज्ञ होनेके कारण खलमानव हिंसापरायण होते हैं, और अपने सुखके लिए पशु प्रभृति उपायन द्वारा यज्ञ करते हैं, देवता, पितृ, भूत पतियों की उपासना करते हैं ॥१८७॥ दृष्ट एवं श्रुत विषयों का ध्यान करते करते कुछ संस्कार वनता रहताहै, उससे कुछ कर्मभी होता पश्चात् वर्त्तमान् कर्म में आसक्त होने पर पूर्व कर्म में आसक्ति नहीं रहतीहै ॥१८८॥ सारासार विवेक पूर्णमानव निश्चित

तथा च द्वादशेऽष्टमाध्याये नरनारायणं प्रति मार्कण्डेयोक्तो (१२-८-४८)

१९०। "यं वै न वेद वितताक्षपथैर्भ्रमद्धीः,
सन्तं स्वकेष्वसुषु हृद्यपि दृक्‌पथेषु।
तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षा,-
दाद्यस्तवाखिल-गुरोरुपसाद्य वेदम्॥"

कर्मकर्त्तृ-दोषं प्रकाश्य यस्मिन् काले कर्मणां प्राधान्यं तस्यापि हेयत्वं दर्शयति। एकादशे वसुदेव-नारद संवादे आर्षभकथने पञ्चमाध्याये (११-५-३६-३८)

१९१। "कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥

रूप से श्रीकृष्णचन्द्र के चरणारविन्द की सेवा ही करते हैं, योगादि में इन्द्रिय संयम की एवं विराग की विशेष आवश्यकता है, किन्तु विराग, एवं संयम भी असंभव है, केवल क्लेश ही होता है, जोलोक योगज्ञानादि द्वारा अभिमानी वनजाते हैं, वे लोक आपके चरण की शरण में नहीं आते हैं, अतएव विनाश प्राप्तहोते हैं। जो आपके भक्त हैं, आपकी मायासे पीड़ित नहीं होते हैं, समस्त कर्म करके भी अभिमानी नहीं वनते हैं। अन्यजन मोहित होकर हम योगी हैं, ज्ञानी हैं, कर्मकुशल हैं, इसप्रकार केवल गर्व को ही प्राप्त करते रहते हैं॥१८९॥ द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायस्थ मार्कण्डेयोक्ति का विवरण भी इसप्रकार है—जिन को कपट इन्द्रियमार्ग द्वारा विषय ग्रहण पटु व्यक्तिगण नहीं जानते हैं, वेलोक विक्षिप्त वुद्धि होते हैं, संयत इन्द्रिय होनेपर भी आपको नहीं जानसकते हैं, कारण आपकी माया द्वारा वे लोक आवृत मति होते हैं, आद्य विद्वान् जगत्‌गुरु आपसे प्रवर्त्तित वेदके द्वारा ज्ञानप्राप्त कर वे लोक भी आपको जान सकते हैं॥१९०॥ स्वार्थपरायण व्यक्ति अपने लिए काम्यकर्म करते हैं, इससे वे लोक दुष्ट हो जाते हैं, सम्प्रति जिस कालमें कर्मका प्राधान्य है, उसमें भी दोषहै, वसुदेव नारद संवाद द्वारा इसको कहतेहैं—वुद्धिमान् व्यक्तिगण

१६२। न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥

१६३। कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण-परायणाः ॥"

तथा च द्वादशे तृतीयाध्याये—(१२-३-५१,५२)

१६४। "कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥

१६५। कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरि-कीर्त्तनात् ॥"

एतेन सत्यादियुगत्रय-धर्म-ध्यान-यज्ञ-पूजाकर्त्तृणां कालस्य च दोषो निरूपितः । अपरञ्च कर्माभिधान-करणं महान्तोऽभिशापत्वेन निरूपयन्ति । तत्राह-चतुर्थस्कन्धे दक्षं प्रति नन्दिशापे द्वितीयाध्याये—(४-२-२२,२४,२५)

कलियुग की प्रशंसा करते हैं। जिसमें श्रीहरिनाम संकीर्त्तन द्वारा हीं सकल पुरुषार्थ लाभ होता है ॥१६१॥ संसार में भ्रमणरत मनुष्य गण के लिए और कुछभी परमलाभ नहीं है, जिससे परमशान्ति की प्राप्ति एवं संसृति का नाश हो ॥१६२॥ हे राजन् ! सत्य त्रेता द्वापर के प्रजागण भी कलि युगमें जन्मलेना चाहतेहैं, कारण कलिमें श्रीनारायण परायण होने की सम्भावना है ॥१६३॥ द्वादश के तृतीयाध्याय में कथित है-दोष निधि कलियुग का एक ही महानुगुण है, श्रीकृष्ण नाम कीर्त्तन से ही जन सांसारिक आसक्ति से सुनिश्चित मुक्त हो जाता हैं ॥१६४॥ सत्ययुग में ध्यानयोग से श्रीविष्णु की आराधना द्वारा, त्रेतायुग में यज्ञद्वारा, द्वापरमें परिचर्या द्वारा श्रीविष्णु आराधनासे जोफल होता है, कलियुग में केवल श्रीहरिनाम कीर्त्तनसे ही वहसिद्ध होता है ॥१६५॥ इससे सत्यादि युगत्रय में धर्म ध्यान यज्ञ पूजन कारियों में कालदोष समधिक है ।

१६६। गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया।
कर्मतन्त्रं वितनुताद्वेदवाक्यविपन्नधीः॥"

१६७। "विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जड़ः।
संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम्॥

१६८। गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा।
मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः॥"

अपरश्च वातवर्षतपोहिम-सहिष्णुता-नानाक्लेश-नानापाषण्ड-निर्वाणेन तपस्यादिकं विधाय क्रोधलवेनापि शापादिकं दत्त्वा वृथा सर्वमुत्सृजन्ति। सप्तमस्कन्धे प्रह्लाद-चरिते नवमाध्याये-(७-९-४०)

१६९। "जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता,
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।

दूसरी वात् यहहै कि-काम्यकर्म तन्त्रप्रणेता के महद् व्यक्तिगण मानव जीवनके लिए एक अभिशाप मानते हैं। चतुर्थस्कन्धमें दक्षके प्रति शाप प्रकरणमें इस विषय वर्णितहै-ग्राम्यसुख भोगकी इच्छासे आसक्ति युक्त सांसारिक धर्ममें अतिशय आसक्त होकर वेदार्थ को दूसरे प्रकार से दिखाकर पण्डितगण कर्मतन्त्र का प्रणयन करेंगे ॥१६६॥ काम्य कर्ममय अविद्यामें विद्याबुद्धि स्थापनकर जड़ देहाभिमानी व्यक्तिगण काम्यकर्मतन्त्र का प्रणयण करेंगे, उसके अनुयायी, शिवावमाननकारी व्यक्तिगण होंगे, और संसार गतिको प्राप्तकरते रहेंगे ॥१६७॥ मनोहर मधुमय पण्डितों की वाणीसे प्रोत्साहित होकर हरद्विषः व्यक्तिगण मुग्ध होंगे ॥१६८॥ और भी वातवर्षातप हिम सहिष्णुता प्रभृति नानाक्लेश सदन एवं नानाप्रकार पाषण्डवुद्धि, दमनकर तपस्या परायण होकरभी स्वतपक्रोधसे शापादि प्रदानकर सवसुकृति को नष्ट करतेहैं। सप्तमस्कन्धस्थ प्रह्लादचरित्र में इसका वर्णन है। हे अच्युत! अतृप्तजिह्वा एक और आकर्षण करती है, दुसरी और जननेन्द्रिय, त्वक्, उदर, श्रवण, घ्राण, नयन, एवं कर्मशक्ति पृथक् पृथक् रूपसे

घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति,-

र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥"

एतान् विजित्य क्रोधवशान्नश्यति? तत्राह-एकादशे वसुदेव नारद-संवादे नरनारायणोपाख्याने कामदेवादि-स्तुतौ चतुर्थाध्याये-(११-४-११)

२००। क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुत-जैह्व्य-शैश्न्या,-

नस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।

क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो,-

र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥"

एतेन कर्मणां यत्किञ्चित् सर्वं विफलम्। ननु भक्ताः किं कर्ममात्रं न कुर्वन्ति ? तत्राह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते पञ्चदशाध्याये-(७-१५-४७)

२०१। "प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।

आवर्त्तते प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥"

तत्रैकादशे भगवदुद्धव-संवादे दशमाध्याये-(११-१०-४)

आकर्षण करते रहते हैं, जैसे एक गृहपति की अनेक पत्नी होनेपर जैसी अवस्था होता है, वैसी अवस्था शरीर में अवस्थित आत्मा की होती है ॥१९९॥ इनसव को जय करने के वाद भी क्रोधके वशमें आकर नाशप्राप्त हो जातेहैं. एकादशस्कन्धस्थ वसुदेव नारद संवाद में इसका विवरणहै-क्षुधा पिपासा, कालगुण, मारुत,जिह्वा,जननेन्द्रिय, को संयत कर साधक क्रोधके वशमें आजाते हैं, जैसे अपार जलनिधि पार होकर गोष्पदमें डूबकर मरताहै, वैसा व्यर्थ क्रोधके वशमें आकर सर्वनाश करलेतेहैं एवं तपस्या प्रभृति को व्यर्थही त्याग करतेहैं ॥२०० इससे ज्ञात होता है कि काम्यकर्म से जो कुछभी मिलता है, वे सब ही विफल हैं। तब क्या जो भक्त होतेहैं, वेकुछ भी कर्म नहीं करेंगे ? इसके उत्तर में कहते हैं-प्रवृत्त एवं निवृत्त भेदसे वैदिक कर्म द्विविध होतेहैं। प्रवृत्तधर्म से जन्ममरण होते रहते हैं, और निवृत्तसे अमृत प्राप्त होता है ॥२०१॥

२०२। "निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम् ॥"

ननु भक्तोऽपि निषिद्धं न करोति, विहितश्च करोति, तत्र का विचारणा ? तत्राह भगवदुद्धवसंवादे एकादशे सप्तमाध्याये-(११-७-११)

२०३। "दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्त्तते ।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥"

एतेषां कुमनीषिणां स इज्या पूजामपि न गृह्णाति भगवान् । तत्राह चतुर्थस्कन्धे प्रचेतोनारद-संवादे एकत्रिंशाध्याये-(४-३१-२१)

२०४। 'न भजति कुमनीषिणां स इज्यां,
हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुत-धन--कुल--कर्मणां--मदैर्ये,
विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥"

एकादशस्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद में वर्णित है-भक्तजन निवृतकर्म का अनुष्ठान ही करें काम्यकर्म का समादर न करें ॥२०२॥ आच्छा, भक्तभी तो निषिद्ध कर्म नहीं करता है । विहित कर्म ही करता, उस में विचार ही क्या है ? भगवत उद्धव संवाद में इसका समाधान है-विहित एवं निषिद्ध कर्म में दोष दर्शनकर विधान को देखकर प्रवृत्त न होवे, निषेध को देखकर भी निवृत्त न होवे, किन्तु बालक जिस प्रकार स्वाभाविक रूपसे कर्म करता है, वैसा ही भक्त अधिकारोचित कर्मका आचरण करेंगे ॥२०३॥ काम्यकर्म परायणव्यक्ति स्वार्थपर होताहै, अतः उसकी पूजा अङ्गीकार भगवान् नहीं करते हैं । चतुर्थ स्कन्धस्थ प्रचेता नारद संवादमें वर्णित है-काम्यकर्म परायण कुबुद्धिव्यक्ति की इज्या भगवान् स्वीकार नहीं करते हैं, श्रीहरि रसज्ञ हैं एवं अधन आत्मधन प्रियहैं, श्रुतधन, कुलकर्म मदसे मत्त होकर जो जन भक्तके प्रति पापदृष्टि रखते हैं, उससे सम्मान ग्रहण श्रीहरि नहीं करते हैं ॥२०४॥

ननु तर्हि किं कर्म-विलोपापत्तिः ? तत्राह एकादशे भगवदुद्धव संवादे विंशतितमाध्याये (११-२०-९)

२०५। "तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ।।"

ननु येषां भगवत्कथायां न श्रद्धा.तः किं कर्तव्यम् ? तत्राह- ११-२०-१०

२०६। "स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव ।
न याति स्वर्ग नरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ।।"

अतः कर्मयोगः साधुभिर्न करणीय । अत आह–चतुर्थस्कन्धे नारद-प्राचीनवर्हिःसंवादे ऊनत्रिंशाध्याये-(४-२९-४७)

२०७। "यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ।।"

लोके मतिश्चापि वेदवर्त्माधीना, अतः कर्मयोगोऽनादरणीयः । तत्राह—(४-२९-४९)

२०८। "तस्मात् कर्मसु वर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ।
मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ।।"

तव क्या काम्यकर्म विलोप ही होगा, एकादशस्कन्धस्थ भगवान् उद्धव संवाद से स्पष्टीकरण करते हैं, जवतक काम्यकर्भ फलमें निर्वेद वैराग्य वितृष्णा प्रभृति नहीं होतेहैं, अथवा भगवत् कथामें श्रद्धा नहीं होतीहै, तवतक काम्यकर्म का अनुष्ठान करें ।।२०५।। जिनकी भगवद् कथामें श्रद्धा ही नहीं है, वे लोक क्या करेंगे ? उत्तरमें कहते हैं- हे उद्धव ! निष्कामभावसे अधिकारोचित यज्ञादि द्वारा यजन् करने पर स्वर्ग एवं नरक की प्राप्ति उनसव की नहीं होगी यदि वे लोक कामना द्वारा प्रेरित न हो तो ।।२०६।। अतएव सज्जनगण के लिए काम्यकर्म का आचरण करना कर्त्तव्य नहीं हैं । चतुर्थस्कन्ध के नारद प्राचीन वर्हिसंवाद इसप्रकार है-भगवान् आत्मभावित होकर जव जिस के प्रति अनुग्रह करते हैं, तो वे लोकिकी प्रथा एवं वैदिक काम्यकर्म

अतएवाह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते दशमाध्याये-(७-१०-१२)

२०९। "कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्व,-
मावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं,
यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे द्वादशाध्याये-(११-१२-१४,१५)

२१०। "तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥

२११। मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥"

के प्रति श्रद्धा को परित्याग करते हैं ॥२०७॥ लौकिक प्रथामें मति भी वैदिकमार्ग के अधीन है, अतः कर्मयोग का समादर अनुचित है। कहते हैं-हे राजन् ! तुम भी अपने को कर्मानुष्ठान से गर्वित मानते हो, कुशके द्वारा पृथिवी को व्याप्त कर देनेसे ही और पशुहत्या अधिक से अधिक करने से ही "उत्तमयज्ञ करने वाला मैं हूँ" ऐसागर्व करते हो। किन्तु कर्मका यथार्थ तत्त्वको तुम वास्तविक रूपमें नहीं जानते हो ॥२०८॥ सप्तमस्कन्ध के प्रह्लाद चरितमें वर्णित हैं-विषयभोग से अवश्य विषयों में आसक्ति होगी, और वद्धही जावेंगे ? उत्तर में कहते हैं नहीं, मेरी परमप्रिय पवित्र कथा को श्रवण करो, और सकल भूतों में अवस्थित यज्ञके अधिष्ठाता मुझमें मनको आविष्ट कर यजन करो। इस प्रकार से भी वन्ध होंगे ? नहीं कर्मार्पण रूपयोग से काम्यकर्म को छोड़कर मेराभजन करो ॥२०९॥ एकादशस्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद में विवरण इस प्रकार है-अतएव हे उद्धव ! तुम विधिनिषेध, प्रवृत्त एवं निवृत्त, श्रोतव्य एवं श्रुतपदार्थ को छोड़कर सकल शरीर धारीके एकमात्र शरण, एवं प्रिय सर्वात्मभावरूप भक्ति से मेरी शरण ग्रहण करो और अकुतोभय वनो ॥२१०-२११॥

ननु देवतान्तर-भजनेन ब्रह्ममहेशादि-भजनेन वापि अकुतोभयत्वं सम्भवतीति ? तत्राह दशमाध्याये-(भा: ११-१०-३०)

२१२। "लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ।

ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्ध-परायुषः ॥"

एतदेवविदुर-मैत्रेय-संवादे ब्रह्मस्तुतौ तृतीयस्कन्धे नवमाध्याये(३-९-१८)

२१३। यस्माद्‌विभेम्यहमपि द्विपरार्ध-धिष्ण्य,

मध्यासितः सकल-लोक-नमस्कृतं यत् ।

तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समान,-

स्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्याम् ॥"

तथा च पञ्चमस्कन्धे ब्रह्म-प्रियव्रत-संवादे प्रथमेऽध्याये-(५-१-१२)

२१४। "न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा,

न योगवीर्येण मनीषया वा ।

नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा,

कृतं विहन्तुं तनुभृद्‌विभूयात् ॥"

ब्रह्मा महेश प्रभृति देवतान्तरका भजनसे भी अकुतोभय होना सम्भव है ? नहीं, समस्त लोक और लोकपाल कालरूप भयसे भीतहैं। कल्पकाल पर्यन्त आयुवाले द्विपरार्ध जीवित रहने वालेका भी मुझसे भयहै ॥२१२॥ विदुर मैत्रेय संवाद में वर्णित है। दुसरे लोक की वात् भी क्या है, द्विपरार्द्ध कालपर्यन्त आयु प्राप्तकर भी में कालरूपी आपसे भयभीत हूँ, भीत होकर आपको प्राप्त करने के लिए निरन्तर तपस्या भी मैंने की। अनेक वत्सर पर्यन्त तपस्या करने परभी मैं सफल नहीं हुआ। यज्ञादि कर्माधिष्ठाता भगवान् आपको प्रणाम करता हूँ ॥२१३॥ इसप्रकार पञ्चमस्कन्धस्थ ब्रह्मप्रियव्रत संवाद में कथित है-हमसव परमप्रिय श्रीहरि के वश हैं, उनके अनुशासन का उल्लङ्घन कोई भी व्यक्ति तप, विद्या, अर्थ, धर्म, स्वयं, वलवान् के आश्रय से भी अन्यथा करने समर्थ नहीं है ॥२१४॥

तथा ब्रह्म-महेशादीनामपि तद्वशत्वं प्रकाशयति । तत्राह प्रथमेऽध्याये (भा: ५-१-१४)

२१५। "यद्वाचि तन्त्र्यां गुणकर्मदामभिः,
सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय,
प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥"

अत आह दशमे श्रुत्यध्याये-(१०-८७-२८)

२१६। "त्वमकरणः स्वराड़खिलकारकशक्तिधर,-
स्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः ।
वर्षभुजोऽखिल-क्षितिपतेरिव विश्वसृजो,
विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥"

तथा च सप्तमस्कन्धे प्रह्लाद-चरिते नवमाध्याये-(७-९-१३)

२१७। "सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो,
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य,
विक्रीड़ितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥"

कर्म करने से उनकी ही अधीनता सर्वथा है, वेदात्मक अनुशासन रूप सुदुस्तर रज्जुद्वारा हमसव बद्ध हैं, और उनकी इच्छासे ही कर्म करते रहते हैं, जैसे चतुष्पद बैल द्विपद मनुष्य के लिए नासिका विद्ध होकर कर्म करता रहता है ॥२१५॥ श्रुति अध्याय में वर्णित है, भगवान् हरि स्वराट् आदि एवं अनादि है, समस्त देवगण उनके अनुशासन से चलते रहते हैं, जैसे सम्राट्के आदेशसे क्षुद्र क्षुद्र राजन्य वर्ग चलते रहतेहैं, उनके प्रदत्त अधिकार प्राप्त होकर ही सव अधिकारी शोभित होते हैं ॥२१६॥ सप्तमस्कन्ध के प्रह्लाद चरित्र में वर्णित है-हे ईश ! आपसे भयभीत होकर अवस्थित हैं, येसव आपके प्रदत्त

तथा चाष्टमस्कन्धे मोहिनीरूप-दर्शने महेश-सम्मोहे पार्वतीं प्रति महेशोक्तौ—(८-१२-४३)

२१८। "अयि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां,
परस्य पुंसः परदेवतायाः।
अहं कलानामृषभोऽपि मुह्ये,
यथावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः॥"

तथा चाम्वरीष-चरिते नवमस्कन्धे दुर्वाससं प्रति ब्रह्म-महेशोक्तौ।
तत्र ब्रह्मोक्तौ—(९-४-५४)

२१९। "अहं भवो दक्ष-भृगु-प्रधानाः,
प्रजेश-भूतेश-सुरेशमुख्याः।
सर्वे वयं तन्नियमं प्रपन्ना,
मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः॥"

तथा महेशोक्तौ—(९-४-५६)

२२०। "वयं न तात प्रभवाम भूम्नि,
यस्मिन् परेऽन्येऽप्यज-जीवकोशाः।

अधिकार में रहते हैं, और भक्त भी हैं, आप विविध रुचिर अवतार के द्वारा विश्ववासी को सुखी करते रहते हैं ॥२१७॥ मोहिनीरूप दर्शनसे मुग्ध होकर शिवजीने पार्वती को कहा था-देखो, परमदेवता श्रीहरि की कलाकौशल मायाको देखो। हम भी जिससे मुग्ध होगये, अन्य अस्वतन्त्रा व्यक्ति की तो वात् ही क्या है ॥२१८॥ अम्वरीष चरित में कहा गया है। में भव, दक्ष, भृगु प्रभृति श्रेष्ठव्यक्तिगण, प्रजेश, भूतेश, सुरेश प्रभृति व्यक्ति उन हरिके नियम के अधीन एवं शरणागत होकर उनके आदेश से ही लोकहित के लिए कार्य करते हैं ॥२१९॥ श्रीमहेश की उक्ति भी इस प्रकार है-हे तात ! मैं तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ। जिन विभु में समस्त वस्तु आश्रित हैं, समय समय पर निकलते हैं, सहस्र सहस्र हमसव उनके अनुशासन

भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः,
सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥"

तेषां ब्रह्ममहेशादीनामपि भगवत्तन्त्रत्वादन्यदेवता-भजनं निरस्तम् । ननु देवतान्तर-भजनाभावे क्रुद्धाः सन्तो विघ्नं करिष्यन्ति, तर्हि भगवद् भजनं न स्यात् ? तत्राह तृतीयस्कन्धे कपिल-देवहूति-संवादे पञ्चविंशाध्याये—(३-२५-३८)

२२१। "न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे,
नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढ़ि हेतिः ।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च,
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥"

तथा दशमे द्वितीयाध्याये—(१०-२-३३)

२२२। "तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्,-
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया,
विनायकानीकप मूर्धसु प्रभो ॥"

से घुमते रहते हैं ॥२२०॥ इसप्रकार महेश प्रभृति देवगण भी श्रीहरि के अधीन हैं, अतएव अन्यदेव की आराधना निरस्त हुई । देवतान्तर का भजन न करने पर वे लोक भजन जीवन में क्रुद्ध होकर विघ्न करेंगे ? ऐसा होनेपर भगवद् भजन ही नहीं होगा ? इसका समाधान तृतीयस्कन्धस्थ कपिलदेवहूति संवाद द्वारा करते हैं । हे शान्तरूपे ! मेरा भजनकारी को विघ्न प्रदान देवतागण नहीं करते हैं, मेरा कालचक्र भी उनसब को ग्रास नहीं करता, जिनके मैं प्रिय आत्मा सुत, सखा गुरु, सुहृद देव एवं इष्ट हूँ ॥२२१॥ दशमके द्वितीयाध्याय में कथित है-हे माधव ! आपके जनगण आपमें बद्धसौहृद होने के कारण मार्गभ्रष्ट कभी भी नहीं होते हैं, विघ्न आते हैं, किन्तु आप के द्वारा अभिरक्षित होनेसे हे प्रभो ! वे लोक विघ्नराज के उपर पैर

दशमे श्रुत्यध्याये—(१० ८७-२७)

२२३। "तव परि ये चरन्ति" इति ॥

तथा च युधिष्ठिर-राजसूयोद्यमे द्विसप्ततितमाध्याये-(भा:१०-७२-११)

२२४। "न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥"

नरनारायणोपाख्याने चतुर्थेऽध्याये-(भा: ११-४-१०)

२२५। "त्वां सेवतां सुरकृता वहवोऽन्तरायाः,
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ।
नान्यस्य वर्हिषि वलीन् ददतः स्वभागान्,
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥"

तथैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-७-१०)

२२६। "ज्ञान-विज्ञान-संयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ।
आत्मानुभव-तुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥"

रखकर उनके मस्तक को सिड्डी वनाकर आपके चरणारविन्द के समीप को पहुँच जातेहैं ॥२२२॥ दशमके श्रुति अध्याय में भी वर्णित है-आप की परिचर्यारत व्यक्तिगण विघ्न से व्याकुल नहीं होते हैं ॥२२३॥ युधिष्ठिर के राजसूय के समय कहा गयाहै—जो लोक मेरी शरणागत हैं, उनको तेज, यश, धन सम्पत्ति, विभूति प्रभृति के द्वारा देवतागण तो वाधा पहूँचा नहीं सकते हैं, राजन्यवर्ग की तो वात ही क्या है ॥२२४॥ नरनारायण उपाख्यान में वर्णित है-तुम्हारे भजन करनेवाले के प्रति देवतागण विघ्न उपस्थित करते हैं, वे लोक समझते हैं कि-हमें लङ्घन कर मर्त्यवासी वैकुण्ठ चले जायेंगे एवं हमारे अनुशासन में रहकर यज्ञादि कर्मदान प्रभृति नहीं करेंगे। किन्तु भक्तगण उनसव विघ्नके मस्तकपर पैरधर कर ही आपके निकट पहूँच जाते हैं ॥२२५॥ एकादशस्थ भगवद् उद्धव संवाद में उक्तहै-ज्ञान विज्ञान संयुक्त देहधारी परमप्रिय आत्मानुभव तुष्टात्माजन

अतो भगवद्भक्तानामकुतोभयत्वम्, तत्राह-तृतीयस्कन्धे कपिल-देवहूति-संवादे पञ्चविंशाध्याये—(३-२५-४१,४२)

२२७। "नान्यत्र मद्भगवतः प्रधान-पुरुषेश्वरात् ।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्त्तते ॥

२२८। मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥"

तथा च पञ्चमस्कन्धे वर्षोपाख्याने लक्ष्मी-स्तुतौ अष्टादशाध्याये—(५-१८-२०

२२९। "स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं,
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं,
नैवात्मलाभादधिमन्यते परम् ॥"

तथा च षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुशापे भवानीं प्रति महेशोक्तौ-(६-१७-२८)

२३०। "नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥"

कभी भी अन्तराय समूह से अवसन्न नहीं होते हैं ॥२२६॥ अतएव भगवद्भक्तगण ही अकुतोभयहैं, तृतीयस्कन्ध के कपिलदेवहूति संवाद का विवरण इसप्रकार है-प्रधान पुरुषेश्वर भगवान् सकल प्राणियों के परम प्रिय मुझको छोड़कर कहीं से भी तीव्रभय नहीं मिट सकता है ॥२२७॥ मेरे भयसे ही पवन प्रवाहित होता, सूर्यभी ताप प्रदान मेरे भयसे ही करता, इन्द्र भी मेरे भयसे ही वर्षा करता है, अग्नि मेरे भयसे ही ज्वलाति है, मेरे भयसे ही मृत्यु सर्वत्र विचरण करती है ॥२२८॥ पञ्चमस्कन्धस्थ वर्षोपाख्यान की लक्ष्मीस्तुति में वर्णित है-वह ही अकुतभय स्वयं ही पतिहै, और सवप्रकार से भयातुर जनों की रक्षा भी करते हैं, वह ही भयशून्य अद्वितीय एक है, अन्य सव ही भेदयुक्तहैं, सुतरां भययुक्तहैं। अतएव परमप्रिय आत्मलाभको छोड़कर वह

तथा दशमे तृतीयाध्याये-(१०-३-२७)

२३१। "मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्,
लोकान् सर्वान् निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य,
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥"

अत आह सप्तमे स्कन्धे पञ्चदशाध्याये—(१-१५-१७)

२३२। "सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।
शर्करा-कण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥"

अतो भगवद्भक्तिरेव परम-पुरुषार्थं इति । ननु सा भक्तिः कीदृशी? कस्माद्वा जायते? तत्राह-तृतीये कपिलदेवहूति-संवादे पञ्चविंशाध्याये—(३-२५-२८)

२३३। "काचित्त्वय्युचिता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ।
यया पदं ते निर्वाणमञ्जसान्वाश्नवा अहम् ॥"

किसीका महत्व नहीं देताहै ॥२२९॥ षष्ठस्कन्धस्थ चित्रकेतुशापमें भवानी के प्रति महेश की वाणी इसप्रकार है-नारायण परायण व्यक्तिगण किसीसे भी भीत नहीं होते हैं, वे सब स्वर्ग, अपवर्ग, नरक में समान दृष्टि रखते हैं ॥२३०॥ दशमस्कन्ध के तृतीयाध्याय में उक्त है—मर्त्यजन मृत्युरूप सर्पभयसे भीत होकर सभी लोकों में आश्रयलेने के लिए गए, किन्तु कहीं पर निर्भय होने का स्थान नहीं मिला, तुम्हारे चरणकमल के सान्निध्य यदृच्छासे प्राप्त होनेपर ही मृत्यु हट जाती है, और जन स्वस्थ होकर सोते रहते हैं ॥२३१॥ अतएव सप्तमस्कन्धस्थ पञ्चदशाध्याय में कथित है-सर्वदा सन्तुष्टमन वालेके लिए सर्वदिक् सुखमय होते हैं, जैसे पादत्राण (उपानद्) धारण करने वालेकेलिए कंकड़ और काँटे, सबही सुखमय होते हैं ॥२३२॥ अतएव भगवद् भक्ति ही परमपुरुषार्थ है । वह भक्ति किस प्रकार है ? भक्ति कैसे होती है ? तृतीयस्थ कपिलदेवहूति संवाद से उत्तर देते हैं-आपकी समुचिता

एकादशे द्वितीयाध्याये वसुदेव-नारद-संवादे इतिहास-कथने कविं प्रति जनकोक्तौ—(११-२-४४)

२३४। "अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ।
यथाचरति यद्ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥"

तथा चैकादशे एकादशाध्याये—(११-११-२६,२७)

२३५। "साधु-स्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ।
भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥

२३६। एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥"

तथा च तृतीये कपिलदेवहूति-संवादे, पञ्चविंशाध्याये-(३-२५-३२,३३)

२३७। "देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविक-कर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

भक्ति किस प्रकार है' और वह भक्ति मैं कैसे प्राप्तकर सकूँगी, जिस से अनायास निर्वाण रूप तुम्हारे चरणकमल को मैं प्राप्त कर सकूँगी ॥२३३॥ एकादशस्कन्धस्थ वसुदेव नारद संवाद इसप्रकार है-अनन्तर भगवत् भक्त का स्वरूप आप वर्णन करें, उनके आचरित धर्म किस प्रकार है, आप सवके आचरण किस प्रकार है, आपसव श्रवण कीर्त्तन किस प्रकार करते हैं, जिस प्रकार धर्माचरण से और चिह्न से आपसव भगवत् प्रिय होते हैं ॥२३४॥ इसप्रकार एकादश स्कन्ध के एकादशाध्याय में वर्णित है-हे उत्तमश्लोक ! आपके मतमें साधु कौन होते हैं, कैसी भक्ति आपके अनुकूल होती है, और किस प्रकार भक्तिका समादर साधुभक्तगण करतेहैं ॥२३५॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! लोकाध्यक्ष ! हे जगत् प्रभो ! प्रसन्न अनुरक्त प्रणत मुझे उक्त विषय में कहैं ॥२३६॥ कपिलदेव शुद्धभक्ति का स्वरूप माताको कर रहेहैं, विषयों के प्रति इन्द्रियों की जो स्वाभाविको असक्ति है, उन समस्त आसक्ति का यदि सत्त्वमूर्त्ति सवके अन्तर्यामी परममनोहर श्रीहरि

२३८। अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥"

भक्तिं निरूप्य यतो जायते तन्निरूपयति । तथा प्रथमे सूत शौनक संवादे द्वितीयाध्याये—(१ २ १६,१८)

२३९। "शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव-कथारुचिः ।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थ-निषेवणात् ॥"

२४०। "नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत-सेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥"

तथा च तृतीयस्कन्धे सप्तमेऽध्याये—(३ ७ १९)

२४१। यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ।
रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥"

में स्थापन हो तो भक्तिहै, वह भक्ति निष्काम होने के कारण मुक्ति से भी श्रेष्ठहै, वह स्वाभाविकी होना आवश्यक है। इस प्रकार स्वरूप होनेका कारण यहहै कि श्रीगुरुदेव के मुखसे शास्त्र श्रवण के अनन्तर तदनुरूप आचरण एवं शुद्ध सत्त्वात्मक मनसे आनुकूल्यसे सेवन ही होता है ॥२३७॥ मुक्ति तो आनुसङ्गिक हो जाती हैं, भक्ति लिङ्ग शरीर को जलादेती है, जैसे जठरानल भुक्तद्रव्य को पचादेती है। प्रयत्न के विना ही मुक्ति भक्तिसे होती है ॥२३८॥ भक्ति निरूपण के वाद भक्ति जिससे होतीहै उसका निरूपण कर रहेहैं,-प्रथमस्कन्धस्थ सूत शौनक संवाद में श्रद्धालु जिज्ञासुव्यक्ति को वासुदेव की कथा में रुचि होती है, महत्सेवा एवं पुण्पतीर्थ का निषेषण भी एकान्त आवश्यक है महत्के मुखसे श्रद्धापूर्वक श्रीहरि कथा श्रवणसे अवश्य श्रीहरि चरणमें भक्ति होगी ॥२३९॥ अहं ममता रूप अविद्या प्राय विनष्ट,-यदि नित्यभागवत भगवद्भक्तके मुखसे श्रीमद्भागवत श्रवण एवं तदनुरूप आचरण से होता है, तव उत्तमश्लोक श्रीहरिचरणों में नैष्ठिकी भक्ति होती है ॥२४०॥ तृतीयस्कन्ध के सप्तम अध्यायमें

तथा चतुर्थे पृथुचरिते द्वाविंशाध्याये—(४-२२-२२)

२४२। "सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया,
जिज्ञासयाध्यात्मिक-योगनिष्ठया ।
योगेश्वरोपासनया च नित्यं
पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च ॥"

तथा प्रथमे सूत शौनक संवादे प्रथमाध्याये—(१-१-१५)

२४३। "यत्पाद-संश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः ।
सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥"

तथा च तृतीयाध्याये—(भाः १-३-३८)

२४४। "स वेद धातुः पदवीं परस्य,
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया सन्ततयानुवृत्त्या,
भजेत तत्पादसरोज-गन्धम् ॥"

वर्णित है–महत् की सेवासे मधुसुदन भगवान् के चरणारविन्द में अतिशय ममता होती है, जिस से सांसारिक आसक्ति दूर होती है ॥२४१॥ चतुर्थस्कन्धस्थ पृथुचरित में वर्णित है–श्रद्धापूर्वक भगवद् धर्माचरण, भागवतधर्म की जिज्ञासा, आधध्यात्मिक निष्ठा नित्य भगवदुपासना श्रीहरिके विमल यशश्रवणसे श्रीहरिचरणोंमें भक्ति होती है ॥२४२॥ प्रथमस्कन्धस्थ सूतशौनक संवाद में उक्तहै–हे सूत ! श्रीहरिके चरणाश्रितमुनिगण निज जन्ममरण प्रवाह को रुद्धकर सन्निधिमात्र से ही सवलोक को पवित्र करते हैं, गङ्गादेवी श्रीहरि चरण से निःसृत होकर स्पर्श आदिसे कदाचित् पवित्र करती है। गङ्गासे भी सद्भक्तका उत्कर्षहै ॥२४३॥ प्रथमस्कन्धके तृतीयाधध्याय में वर्णित है, रथाङ्गपाणि जगन्नाथ श्रीहरिके चरणारविन्द को वह प्राप्तकर सकता जो निरन्तर निष्कपट भावसे उनकी चरणकमल की सेवा करता है ॥२४४॥

यतः साधवो भगवन्तमृते न किञ्चिदपि जानन्ति. अतस्तत्सङ्गाद् भगवति भक्तिर्जायते, अतः साधून् श्लाघयति—(भा: १-३-३८)

२४५। "अथेह धन्या भगवन्त इत्थं,
यद्वासुदेवेऽखिल-लोकनाथे।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं,
न यत्र भूयः परिवर्त्त उग्रः॥"

तथा च नारदं प्रति भगवदाज्ञायां षष्ठेऽध्याये-(भा: १-६-२४)

२४६। "सत्सेवयाऽदीर्घयापि जाता मयि दृढ़ा मतिः।
हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि॥"

तथा च युधिष्ठिर-नारद-संवादे त्रयोदशाध्याये विदुरं प्रति युधिष्ठिरस्तुतौ (भा: १-१३-१०)

२४७। "भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं प्रभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥"

तथा च सूत-शौनक-संवादेऽष्टादशाध्याये-(भा: १-१८-१२,१३,१८)

२४८। "कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्।
आपाययति गोविन्द-पादपद्मासवं मधु॥

कारण भक्तगण भगवान् को छोड़कर कुछभी नहीं जानतेहैं, अतएव उन सद्भक्तगणके सङ्गसे ही भगवत् भक्ति होतीहै। अतएव साधुगण की प्रशंसा करते हैं। उनसब मानव धन्यहैं, जो अखिललोकनाथ वासुदेव में आत्मीयता स्थापन निष्कपटतासे करतेहैं, जिससे पुनर्वार संसार पदवी में नहीं आना पड़ता है ॥२४५॥ प्रथमस्कन्धके षष्ठ अध्यायमें श्रीनारदके प्रति भगवद् आज्ञा भी इसप्रकार है-सत् सेवा स्वल्पकाल में मेरे प्रति दृढ़ामति हुईहै, क्लेश बहुल इसलोक को छोड़कर मेरा परिकरस्वरूप प्राप्त करोगें ॥२४६॥ युधिष्ठिर नारद संवाद में वर्णित है-आपके समान भागवतगण स्वयं ही तीर्थस्वरूप है, हृदय में श्रीहरिका निवास होनेके कारण आपसब तीर्थको भी

२४९। तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥"

२५०। "अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म,
वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं,
महत्तमानामभिधान-योगः"

तथा च शुकदेवागमने ऊनत्रिंशाध्याये-(भाः १-१९-३३)

२५१। "येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शन-स्पर्श-पादशौचासनादिभिः ॥"

तथा च चतुर्थे एकत्रिंशाध्याये—(४-३१-२०)

२५२। अपहत-सकलैषणामलात्मन्यविरत-मेधित-भावनोपहूतः
निजजन-वशगत्वमात्मनो यन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥

पवित्र करते हैं ॥२४७॥ सूतशौनक संवाद में भी उक्तहै-हे सूत ! काम्यकर्म करते करते यज्ञीय धूमसे आत्मारञ्जित होगई है, आप उस समय ही श्रीगोविन्दपादपद्मासवमधु हम सबको पानकरा रहेहैं। ॥२४८॥ स्वर्ग एवं निर्बाण मुक्ति-दोनों ही भगवत्सङ्गि सङ्ग के साथ तुलना नहीं हो सकते हैं, और राज्यैश्वर्य की तो बात् ही क्याहै ? (२४९) सूतजी ने कहा, हमसब जन्म प्राप्तकर धन्य होगयेहैं, विलोम से उत्पन्न होने परभी महद्गण सङ्गसे सबजन अतिसत्त्वर पवित्र ही जाते हैं ॥२५०॥ श्रीशुकदेव के आगमन प्रसङ्गमें कथितहै-जिनके संस्मरणसे गृहसद्य पवित्र हो जाता है, उन सबके दर्शन स्पर्श चरणधौत जल आसन प्रदान प्रभृति से मानव सद्यपवित्र होंगे इसमें आशङ्का ही कहाँहै ? (२५१)· चतुर्थस्कन्धस्थ एकत्रिंश अध्याय में वर्णितहै-जिन्होंने समस्त तृष्णाको छोड़ दी ऐसेनिखिल सांसारिक स्वार्थपर तृष्णाशून्य भक्तसाधुके हृदयाकाशमें श्रीहरि निरन्तर अवस्थान करते हैं, कारण भक्तगण अविरत्त भक्तिभावसे उनको बुलात्ते रहते हैं।

तथा च सप्तमे प्रह्लादं प्रति नारदोक्तौ दशमाध्याये-(७-१०-४८)

२५३। "युयं नृलोके वत भूरिभागा,
लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।
येषां गृहानावसतीति-साक्षाद्-,
गूढ़ं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ।।"

तथा च तृतीये कपिल-देवहूति-संवादे त्रयोविंशाध्याये-(३-२३-५५,५६)

२५४। "सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया ।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ।।

२५५। नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपद-सेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ।।"

तथा च पञ्चविंशाध्याये—(भा: २-२५-२०,२५)

२५६। "प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ।।"

आकाश की भाँति श्रीहरि भी किसी प्रकार भी उक्तस्थान को त्याग नहीं करतेहैं, कारण आप भक्तजनवश्यता को सहर्ष अङ्गीकार करते हैं ।।२५२।। सप्तमस्कन्ध में प्रह्लाद के प्रति नारदजी उक्ति इसप्रकार हैं, प्रह्लाद की महिमा अपार है, हमसव वञ्चित हैं, इसप्रकार सोचने पर नारदजी ने कहा, आपके घरमें तो मुनियों के आगमन होता रहता है। कारण जिनके घरमें श्रीकृष्ण गुढ़ परब्रह्म मनुष्यरूप में विराजित हैं ।।२५३।। कपिलदेवहूति संवाद में वर्णित है-अवुद्धि से असत् सङ्गमें आसक्ति होनेपर ससारके हेतु वनजाता है, और वह आसक्ति अकृत्रिम साधुमें होनेपर मुक्ति का मार्ग वनजाताहै ।।२५४।। जिसका जीवन कर्म, धर्म, विराग, एवं तीर्थपद साधुजन की सेवा में नियुक्त नहीं होता है, वह ही जीवन् मृत है ।।२५५।। कविगण शरीर एवं शरीर सम्वन्धीय आसक्ति को अजर प्रसङ्ग करते हैं, वह प्रसङ्ग शास्त्रीय साधुभक्तके साथ होने पर मुक्तिद्वार खूल जाता है ।।२५६।।

२५७। "सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो,
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्त्मनि,
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥"

तथा च चतुर्थे पृथुचरिते नवमाध्याये-(४-९-११,१२)

२५८। "भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो,
भूयादनन्त महतामलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्वणमुरुव्यसनं भवाब्धिं,
नेष्ये भवद्गुणकथामृत-पानमत्तः ॥

२५९। ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं,
ये चान्वदः सुत-सुहृद्गृहवित्तदाराः।
ये त्वब्जनाभ भवदीय-पदारविन्द-,
सौगन्ध्यलुब्ध-हृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥"

तथा चतुर्थे एकविंशाध्याये—(४-२१-४३)

**२६०। "तेषामहं पाद-सरोजरेणु, मार्या वहेयाधिकिरीटमायुः
यं नित्यदा विभ्रत आशु पापं, नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥"**

सज्जनगण के प्रसङ्गसे श्रीहरि के गुणोपलम्भक हृदय कर्ण पुष्टिद कथा होती है, प्रीतिपूर्वक उसके सेवन से सत्वर ही श्रीहरिचरणार विन्दमें श्रद्धा, रति, एवं भक्ति का उदय होता है ॥२५७॥ चतुर्थ के पृथुचरित्र में कथित है-हे अनन्त ! अमलाशय महत्‌गण के साथ सङ्गहो, एवं आपके चरणारविन्द में अविरला भक्ति हो, जिससे आप की सुचरित कथा पानसे विभोर होकर दुर्जय भवाब्धि को उल्लङ्घन सुखपूर्वक करूँगा ॥२५८॥ हे ईश ! हे अब्जनाभ ! जो जन आप के चरणारविन्द सुगन्ध लुब्धजन के साथ सम्पर्क स्थापन करते हैं, वे लोक सुतगृह,सुहृद वित्तपत्नी प्रभृतिके स्मरण नहीं करतेहैं ॥२५९॥

(भा: ४-२२-१९)—

२६१। "सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषाञ्च सम्मतः ।
यत्सम्भाषण-संप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥

तथा च नारद-प्राचीनवर्हिःसंवादे ऊनत्रिंशाध्याये-(भाः४-२९-४०,४२)

२६२। यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः ।
भगवद्गुणानुकथन-श्रवण-व्यग्रचेतसः ॥

२६३। तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-,
पीयुयशेष-सरितः परितः स्रवन्ति ।
ता ये पिवन्त्यवितृषो नृप गाढ़कर्णै-,
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥

२६४। एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः ।
न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥"

अतएवाह दशमे शुकदेवं प्रति परीक्षिदुक्तौ–(१०-१-१३)

२६५। नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि वाधते ।
पिवन्तं त्वन्मुखाम्भोज-च्युतं हरिकथामृतम् ॥"

तथा चतुर्थस्कन्धके इक्कीश अध्यायमें वर्णितहै-हे आर्य ! यावज्जीवन उनसव सज्जनों की चरणरेणु किरीट के द्वारा मैं वहन करूँगा, जिस रेणुधारण से सत्वर पापसमूह नष्ट हो जाते हैं, एवं सर्वगुण सम्पन्न भी होते हैं ॥२६०॥ सत्साधु समागम, वक्ता श्रोतादि सवके लिए मङ्गलकर है, जिनके सम्भाषण सहित संप्रश्न सवके लिये कल्याण दायक है ॥२६१॥ नारद प्राचीनवर्हिःसंवाद में कथित है–हे राजन् ! जहाँपर भगवद् गुणानुकथन श्रवणके लिए व्यग्रचित्तसाधु भागवतगण हैं, वहाँपर परमशान्ति विराजित है ॥२६२॥ महत्मुखरित श्रीहरि के चरित्र परमामृत स्वरूप होते हैं, उस कथारूप अमृतका पान जो जन एकान्त मनसे करेगा, उसको क्षुधा, पिपासा, भय, शोक, मोह,

अतएवाह चतुर्थे भगवत् प्रचेतःसंवादे त्रिंशाध्याये-(४-३०-३३,३६)

२६६। "यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्म्मभिः।
तावद्भगवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे॥"

२६७। "यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान् न्यासिनां गतिः।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः॥"

तथा च पञ्चमे ऋषभ-चरिते पञ्चमाध्याये-(५-५-२,३)

२६८। "महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-,
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता,
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

२६९। ये वा मयीशे कृत-सौहृदार्था,
जनेषु देहम्भर-वार्तिकेषु।

स्पर्श नहीं करते ॥२६३॥ स्वाभाविक इन उपद्रवों से ही जीवलोक श्रीहरिकथामृतमें प्रीति करने में असमर्थ होते हैं ॥२६४॥ अतएव दशमस्कन्धमें श्रीशुकदेव के प्रति परीक्षितमहाराज का कथन इस प्रकार है-अति असहनीय क्षुधा, जलग्रहण छोड़देने परभी मुझे वाधा नहीं देतीहै, कारण आपके श्रीमुखारविन्दसे निर्गलित श्रीहरि कथामृत का मैं पानकर रहाहूँ ॥२६५॥ अतएव चतुर्थस्कन्ध में भगवत् प्रचेताके संवादमें उक्तहै-स्वकृत कर्मद्वारा जवतक मैं इस संसार में भ्रमण करता रहूँ, तवतक जन्म जन्ममें आपके जनोंके सङ्ग मेरा हो ॥२६६॥ जहाँपर सर्वभूताभय प्रदान कारियों की एकमात्रगति भगवान् नारायण मुक्तसङ्ग द्वारा पुनः पुनः चरित कथासे संस्तुत होते रहते हैं ॥२६७॥ पञ्चमस्कन्धस्थ ऋषभचरित में कथित है-महत् सेवाही एकमात्र मुक्ति का द्वारहै, योषितों के सङ्गिका सङ्ग ही जन्ममृत्यु प्रवाह का द्वारहै। वे सव महत् होतेहैं, जो समचित्त, प्रशान्त, क्रोधरहित, सुहृद एवं साधु हैं ॥२६८॥ जो जन ईश्वर मुझमें प्रीति करते हैं, शरीर पोषण

गृहेषु जायात्मज-रातिमत्सु,

न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥"

षष्ठे प्रथमाध्याये शुकोक्तौ—(६-१-१७)

२७०। "सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।

सुशीलाः साधवो यत्र नारायण-परायणः ॥"

तथा च पञ्चमे जड़भरत-रहूगण-संवादे द्वादशाध्याये-(५-१२-११-१३)

२७१। "ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-,

मनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।

प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्द-संज्ञं,

यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥

२७२। रहूगणैतत्तपसा न याति,

न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।

न च्छन्दसा नैव जलाग्नि-सूर्यै-,

र्विना महत्पाद-रजोऽभिषेकम् ॥

तत्पर जनमें गृह, जाया पुत्र प्रभृति में प्रीतियुक्त नहीं करते हैं, एवं व्यवहार निर्वाह के लिए ही केवल जनसङ्ग करते हैं, वे सब महत् हैं ॥२६९॥ षष्ठस्कन्ध के प्रथमाध्याय में श्रीशुकजी की उक्ति इस प्रकार है—अकुतोभय कल्याणकर साधुसम्मत पथ वह ही है, जहाँपर साधुगण सुशील एवं नारायण परायण हैं ॥२७०॥ पञ्चमके जड़भरत रहूगण संवाद में उक्तहै—ज्ञान ही एकमात्र सत्यहै, वह एक, परमार्थ स्वरूप, अन्तर वाहरशून्य,परिपूर्ण, प्रत्यक्, प्रशान्त, निर्विकार, स्वरूप ज्ञान सत्यहै, जिसको ऐश्वर्यादि षड़गुण द्वारा भगवान् शब्दसे कहा जाता है, उनको ही पण्डितगण वासुदेव कहते हैं ॥२७१॥ उनकी प्राप्ति महत् सेवाके विना नहीं हो सकती है, तपस्या, वैदिक यज्ञादि कर्मद्वारा, अन्नदान, परोपकार, वेदाध्ययन, जल, अग्नि प्रभृतिके द्वारा

२७३।		यत्रोत्तमश्लोक-गुणानुवादः,
प्रस्तूयते ग्राम्यकथा-विघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-,
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥"

तथा त्रयोदशाध्याये रहूगणोक्तौ—(भा: ५-१३-२१,२२)

२७४।		"अहो नृजन्माखिलजन्म-शोभनं,
किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेश—यशःकृतात्मनां,
महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥

२७५।		न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-,
र्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्त्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे,
दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥"

तथा वर्षोपाख्याने प्रह्लाद-स्तुतौ अष्टादशाध्याये-(भा:५-१८-१०,११)

२७६।		"आगार-दारात्मज-वित्त-बन्धुषु,
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।

उपासना प्रभृतिसे भी उनकी प्राप्ति नहीं होती है ॥२७२॥ महत्सेवा ही एकमात्र उनकी प्राप्तिका उपायहै, जिस महत्सङ्गसे ग्राम्य आसक्ति मिटजाती है, उत्तम श्लोक की कथा होती रहती है, आदर पूर्वक उसके सेवनसे वासुदेव के प्रति निश्चला मति होतीहै ॥२७३॥ अहो ! मनुष्य जन्म निखिल जन्मों में शोभन जन्महै, अपर देवादि जन्मसे क्या लाभ है, जहाँपर श्रीहरि के यश वर्णनकारी महात्मागणके प्रचुर समागम नहीं होता है ॥२७४॥ यह वात आश्चर्य की नहीं है, कि आप की चरणरेणु समस्तपाप विदूरित होकर श्रीहरि चरणों में अविचला भक्ति होती है, एक मुहूर्त्तकाल मात्र समागमसे ही दुस्तर्क

यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्,
सिध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ।।

२७७। यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं,
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं,
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ।।"

तथा च सप्तमे प्रह्लाद-चरिते पञ्चमाध्याये-(७-५-३२)

२७८। "नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं,
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं,
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ।।"

(भाः७-६-२७,२८) २७९। "ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह,
नारायणो नरसखः फिल नारदाय ।

मूल अविवेक नष्ट हो गयाहै ।।२७५।। वर्षोपाख्यान की प्रह्लादस्तुति में कथित है कि-गृहपत्नी आत्मज, वित्त बन्धुआदि के सङ्ग नहो, यदि सङ्ग हो तो भगवत् प्रियजन के साथही हो, जो लोक आत्मवान् होतेहैं, एवं जीवित रहने के लिए ही सन्तुष्ट होकर विषय ग्रहण करते हैं, वे लोक धन्यहैं, इन्द्रियप्रिय व्यक्ति उसप्रकार नहीं होतेहैं ।।२७६।। जिनके सङ्गसे श्रीहरिके प्रभाव गुणवर्णन श्रवण होता है, और उससे मननिर्म्मल होताहै, श्रवणके द्वारा गुणवर्णन शब्द अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर आशय को शुद्ध करता रहता है, अतएव कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो मुकुन्द चरित्र का श्रवण नहीं करेगा ।।२७७।। सप्तम स्कन्धस्थ प्रह्लाद चरितमें उक्तहै-उन जनों की मति तवतक श्रीहरि के चरणारविन्द को स्पर्श नहीं करेगी, एवं अनर्थ का विनाश भी नहीं होगा, जवतक निष्किञ्चन जन श्रीहरिके प्रति आत्मसमर्पणकारी

एकान्तिनां भगवतस्तवकिञ्चनानां,
पादारविन्द-रजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥

२८०। श्रुतमेवं मया पूर्वं ज्ञान-विज्ञान-संयुतम् ।
धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥"

महतां विषयात्मनां पावनत्वं नात्यद्भूतम्, अपितु गङ्गादीनामपि यथा दशमे श्रुत्यध्याये—(१०-८७-२७)

२८१। "तव परि ये चरन्त्यखिल-सत्त्व-निकेततया
त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निरृतेः ।
परिचयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां-
स्त्वयि कृत-सौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥"

तत्राह नवमे भगीरथ गङ्गासंवादे—(९-९-६)

२८२। "साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥"

महत् की चरणधूली प्राप्त न होगी ।।२७८।। जो ज्ञान अतिदुष्प्राप्य है, नरसख श्रीनारायण ने श्रीनारदजी को उसका उपदेश कियाथा उसका अनुभव भी अकिञ्चन एकान्त भक्त की चरण रजसे आपने को अभिषिक्त करने से होताहै ।।२७९।। मैंने ज्ञान विज्ञान युक्त भागवत शुद्धधर्म का श्रवण देवदर्शन नारद से पहले किया था ।।२८०।। विषयाविष्ट को पवित्र करने की शक्ति महतोंमें है यह ही नहीं, किन्तु अति पवित्र गङ्गादि को भी महतगण पवित्र करते हैं । दशमस्कन्ध के श्रुत्याध्याय में वर्णित है, आपके चरणारविन्द की परिचर्या करते हैं, वे सब विघ्नके मस्तक पर पैर रखकर श्रीहरिचरण सान्निध्यप्राप्त करलेते हैं । जो लोक आपके साथ सौहार्दस्थापन करते हैं-वे लोक अपने को पवित्र करते हैं, किन्तु भगवद् विमुख व्यक्तिगण अपने को पवित्र नहीं करते हैं ।।२८१।। नवमस्कन्ध के भगीरथ गङ्गासंवाद में वर्णित है-शान्त ब्रह्मिष्ठ न्यासी लोकपावन साधुगण सबके पापों

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-१४-१६)

२८३। "निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ।।"

तथा च दशमे द्वितीयाध्याये—(१०-२-३१)

२८४। "स्वयं समुत्तीर्य्य सुदुस्तरं द्युमन्,
भवार्णवं भीममदभ्र-सौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते,
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ।।"

(भाः १०-१०-४१)

२८५। "साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ।।"

(भाः १०-१३-२)

२८६। "सतामयं सारभृतां निसर्गो,
यदर्थवाणी-श्रुतिचेतसामपि ।

को विनष्ट करते हैं, कारण उनमें ही पापनाशक श्रीहरिनिवास करते हैं ।।२८२।। इस प्रकार एकादश स्कन्धके भगवदुद्धव संवादमें वर्णित है-निरपेक्ष शान्त समदर्शि निर्वैर मुनिके मैं नित्य ही अनुसरण करता रहता हूँ, कारण उनके चरण रेणुसे अखिल ब्रह्माण्ड को पवित्र करना चाहता हूँ ।।२८३।। दशमस्कन्ध के द्वितीयाध्यायमें वर्णित है-श्रीहरि के साथ अदभ्र सौहार्द सम्पन्न व्यक्तिगण सुदुस्तर भवार्णव को पार करके आपके चरणारविन्दरूप नावको वहींपर छोड़ जाते हैं, कारण आपसत्र सज्जनों के प्रति अनुग्रहपरायण हैं ।।२८४।। समर्पितात्मा समचित्त साधुयों के दशन से विषयासक्ति नहीं होती है, कारण सूर्योदय होनेपर नेत्रसे अन्धकार दिखाई नहीं देताहै, सज्जम दर्शनसे भी अज्ञानान्धकार नहीं रहता है ।।२८५।। सज्जन सारग्राही होतेहैं, और वह स्वाभाविक रूपसे ही है, श्रीहरि की कथा निरन्तर श्रवण

प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्,
स्त्रिया विटानामिव साधुवार्त्ता ॥"

(भा: १०-४८-३१)

२८७। "न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥

अक्रूरं प्रति भगवदुक्तौ—(भा: १०-४८-३०)

२८८। "भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥"

तीर्थयात्रायामुपस्थितान् मुनीन् प्रति भगवदुक्तौ-(भा:१०-८४-६,१०,१२

२८९। "अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ।
देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वर-दर्शनम् ॥

२९०। किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ।
दर्शन-स्पर्शन-प्रश्न-प्रह्व- पादार्चनादिकम् ॥"

करने परभी नित्य नवायमान रूपमें आस्वादन होता रहता है, जिस प्रकार स्त्रीलम्पट के पास स्त्री की वार्त्ता पुराणी नहीं होती है, वैसे ही साधुगण के समीप में श्रीहरि कथा नित्य नूतन होती है ॥२८६॥ जलमय तीर्थ समूह, देवता, प्रतिमा प्रभृति सुदीर्घ कालमें पवित्र करते हैं, किन्तु साधुगण दर्शनमात्रसे ही पवित्र करते हैं ॥२८७॥ अक्रूर के प्रति श्रीभगवान के कथन इस प्रकार है-श्रेयस्काम मनुष्य नित्य आप के समान श्रेष्ठ सज्जन की सेवा करना आवश्यक है, कारण देवतागण स्वार्थ परायण होते हैं, किन्तु साधुगण कभी भी स्वार्थपरायण नहीं हैं ॥२८८॥ तीर्थयात्रा में उपस्थित मुनिके प्रति श्रीभगवदुक्ति इस प्रकार है—हम सव जन्मलाभ कर धन्य होगये हैं, सव प्रकार से पूर्ण फल भी मिला, कारण देवगणों के लिए भी दुष्प्राप्य जो योगेश्वर साधुगणों के दर्शन, वह इत जन्म में सम्भव हुआ ॥२८९॥ स्वल्प तपस्यावाले के लिए देवता की अर्चनासे क्या आवश्यक है, कारण

२६१। "नाग्निर्न सूर्यो न चन्द्रतारका,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्त-सेवया ।।"

(भा: १०-६८-५२)

२६२। "देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन-स्पर्शनार्च्चनैः ।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ।।"

तथा चैकादशे वसुदेव-नारद-संवादे आर्षभ कथने द्वितीयाध्याये-(११-२-५,६)

२६३। "भूतानां देव-चरितं दुःखाय च सुखाय च ।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ।।

२६४। भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् ।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ।।"

साधुयों के दर्शन स्पर्शन सत्प्रश्न प्रणाम पादार्चनादि द्वारा जीवन पूर्ण हो जाता है ।।२६०।। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारका, पृथिवी, जल, आकाश, वायु, वाक्य मन उपासित होकर भी भेदवुद्धि जनित अपराध को शुद्ध नहीं कर सकते हैं, किन्तु विज्ञसाधुयों की मुहूर्त्त सेवासे उक्त दोष निरस्त हो जाता है ।।२६१।। देवतागण, धाम, तीर्थ, दर्शन स्पर्शन अर्च्चनसे शनैः शनैः अनेक कालके वाद शुद्धि होती है, किन्तु वह शुद्धि भी श्रेष्ठ वास्तविक साधुभक्तके दर्शनसे ही होतीहै (१०-४८-५२) ।।२६२।। एकादशस्कन्ध के वसुदेव नारद संवाद में उक्त है—देवचरित्र मानवोंके लिए दुःखद एवं सुखद होताहै, किन्तु अच्चुतात्मा साधुभक्तों के चरित्र केवल सुखद है ।।२६३।। जो भी व्यक्ति जिस प्रकार देवताका भजन करताहै, देवगण भी उनसव व्यक्ति का भजन करते हैं, कर्मतन्त्र के व्यक्ति छाया के समान होते हैं, साधुभक्तगण ही केवल दीनवत्सल हैं ।।२६४।।

आस्तां तावत् साधूनां दर्शने पावनत्वम्, साधूनां धर्मोऽपि श्रवणादिना सद्यः पुनाति । तत्राह—(भा: ११-२-१२)

२९५। "श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि ।।"

तत्र सद्धर्म निरूपयति; तत्राह—(भा: ११-२-२८,३०,३४,३५)

२९६। "मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वै मधुद्विषः ।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ।।

२९७। दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रिय-दर्शनम् ।।

२९८। अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघ ।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ।।"

२९९। "ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ।।

साधुभक्त के दर्शन से पवित्र होने की वात सुप्रसिद्ध तो है, साधुभक्तों के धर्म श्रवण प्रभृति द्वारा भी सद्यः पवित्र होते हैं, इसको कहते हैं– श्रवण, ध्यान, आदर, अनुपठन, अनुमोदन से भी सद्धर्म सद्यः पवित्र करते हैं ।।२९५।। सद्धर्म का निरूपण करते हैं-भगवत् विष्णु के साक्षात् पार्षदगण जीवजगत् को पवित्र करने के लिए भूमण्डल में भ्रमण करते हैं ।।२९६।। मानुषदेह, देहधारियों में अतिदुर्लभ है, और वह क्षणभङ्गुर है, उससे भी भगवत् प्रिय व्यक्ति का दर्शन अति दुर्लभ है ।।२९७।। अतएव हे अनघ ! आत्यन्तिक मङ्गल का प्रश्न मैं आपसे करता हूँ, इस संसार में क्षणार्द्धके लिए भी सत्सङ्ग मनुष्य के लिए शेवधि है ।।२९८।। आत्म प्राप्ति के लिए अज्ञपुरुषों के लिए भी सुगम है, और स्वयं भगवान् ने जिस धर्म को कहे हैं उसको ही भागवतधर्म जानना चाहिये ।।२९९।।

३००। यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥"

तानेव सामान्यतो निरूपयति—(भा: ११-२-३६)

३०१। "कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुद्ध्यात्मना वानुसृत-स्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै,
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥"

अतः सत्सङ्गेन विनान्योपायेन भगवान् वशो न भवतीति द्रढ़यति। एकादशे भगवदुद्धव-संवादे द्वादशाध्याये—(११-१२-१)

३०२। "न रोधयति मां योगी न सांख्यं धर्म एव वा।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा ॥"

तथा जनक-प्रश्ने—(भा: ११-२-३१,११-१२-२)

३०३। "धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम्।
यैः प्रपन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥

जिस के अवलम्बन से हे राजन् ! मनुष्य कभी भी प्रमाद प्राप्त होते ही नहीं। आविष्ट चित्तसे भागवतधर्म आचरण करते समय श्रुतिस्मृति विहित किसी धर्मका यदि आचरण नहीं होता है, तथापि वह मानव स्खलित पतित नहीं होते हैं ॥३००॥ सामान्य रूपसे उस धर्मका निरूपण कर रहे हैं-शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, वुद्धि एवं स्वभाव से जो भी कर्म्माचरण होते हैं, उस सव कर्म का समर्पण श्रीनारायण को करें ॥३०१॥ अतएव सत्सङ्ग के विना अन्य किसी भी उपाय से भगवान् वश नहीं होतें हैं, एकादशस्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद द्वारा इसका प्रतिपादन करतेहैं। योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, जनहितकर जलाशयादि का निर्माण,दक्षिणा, दान प्रभृति द्वारा मैं वशीभूत नहीं होताहूँ ॥३०२॥ जनकजी के प्रश्नमें भी कथित है-यदि हम सुनने के अधिकारी हैं तो आप भागवत धर्म का वर्णन

३०४। "व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥"

तथा च एतैर्विहीनानां संस्कारादि-रहितानां दैत्य-तिर्यग्योनीनामपि सत्सङ्गेन भगवान् वशो भवतीति प्रकाशयति। एकादशे द्वादशाध्याये-(११-१२-३-६)

३०५। "सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारण-गुह्यकाः॥

३०६। विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ॥

३०७। बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्र-कायाधवादयः।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥

३०८। सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे॥

३०९। ते नाधीत-श्रुतिगणा नोपासित-महत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः॥

करें,जिस धर्मसे श्रीहरि प्रपन्नव्यक्तिको आत्मदान भी कर देतेहैं॥३०३॥ व्रत,यज्ञ,वेदाध्यायन, तीर्थपर्यटन, नियम, संयम, मुझ भगवान्‌को वैसा वश नहीं कर सकतें हैं, जैसा कि समस्त सङ्ग नाशक सत्सङ्ग मुझको वश करलेता है॥३०४॥ धर्मसंस्कारादि रहित दैत्य तिर्यग् योनियों के निकट सत्सङ्ग द्वारा भगवान् बशीभूत होते हैं-उस को कहते हैं-एकादशस्कन्ध के वृत्तान्त से सत्सङ्गसे ही दैत्यगण यातुधानगण, मृग एवं खग सकल, गन्धर्व, अप्सरा नाग, सिद्धचारण, गुह्यक, विद्याधर, मनुष्यों में वैश्य, शुद्र, स्त्री, अन्त्यज, रजतम प्रकृति वाले जितने होते हैं॥३०५-३०६॥ वृत्र, प्रह्लाद, वृषपर्वाबलि, वाणासुर, मयासुर, विभीषण,सुग्रीव, हनुमान्,जाम्बुवान्, गज, गृध्र, वणिक, व्याध,कुब्जा, यज्ञपति एवं गोपीगण प्रभृति अनेकों ने सत्सङ्गद्वारा मुझको प्राप्त किए

३१०। केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥

३११। यं न योगेन सांख्येन दान-व्रत-तपोऽध्वरैः ।
व्याख्या-स्वाध्याय-सन्न्यासैः प्राप्नयाद्‌यत्नवानपि ॥"

ननु चण्डालादीनां सत्सङ्गात् कथं पातित्यं नश्यति ? तत्राह एकादशे भगवदुद्धव-संवादे चतुर्दशाध्याये—(११-१४-२१,२०,२३,२५,२६)

३१२। "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥

३१३। न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥"

३१४। "कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्‌भक्त्या विनाशयः ॥"

है ॥३०७-३०८॥ वे सब वेदाध्ययन, महत्सेवा, व्रत, तपस्या प्रभृति के अनुष्ठान प्रभृति नहीं किए थे, केवल सत्सङ्ग से ही मुझको प्राप्त किए थे ॥३०९॥ केवल भावसे गोपीगण, गोपगण, नग, मृगगण, नाग सिद्ध, एवं मूढ़धी व्यक्ति भी मुझ को प्राप्त किए हैं ॥३१०॥ योग सांख्यतत्त्वज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञादिकर्म, व्याख्या, स्वाध्याय सन्न्यास प्रभृति द्वारा यत्नपूर्वक भी प्राप्त नहीं कियेहैं ॥३११॥ सत्सङ्ग द्वारा चाण्डालों के पातित्य दोष कैसे नष्ट होता है? एकादशस्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद से उसका स्पष्टीकरण करते हैं—मैं सज्जनगणके प्रिय हूँ। अतएव श्रद्धा एवं एकाग्र भक्तिद्वारा ही परमप्रिय मुझको प्राप्त कर सकते हैं, भक्ति चण्डाल को भी पवित्र करती है ॥३१२॥ हे उद्धव योग, सांख्य, स्वाध्याय, तप, त्याग, धर्म प्रभृतिसे मुझको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, प्रीतिभक्ति जिस प्रकार मुझको प्राप्त कराने में समर्थ है ॥३१३॥ पुलक, चित्तद्रवता, आनन्दाश्रुपुर्ण भक्तिके विना कर्माशय की शुद्धि कैसे होगी ? (३१४)

३१५। "यथाग्निना हेम मलं जहाति,
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय,
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥

३१६। यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ,
मत्पुण्यगाथा–श्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं,
चक्षुर्यथैवाञ्जन–संप्रयुक्तम् ॥"

आस्तां तावन्मद्भक्तेः पावनत्वम्, तादृश–मद्भक्तियुक्तो भुवनमपि पुनाति । तत्राह—(भाः ११–१४–२४)

३१७। "वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं,
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥"

जिस प्रकार अग्नि सुवर्णके मालिन्य को जला कर नष्ट कर देतीहै, सुवर्ण भी मालिन्य रहित होकर अपना यथार्थ रूपमें अवस्थित होता है, उस प्रकार भक्ति योगद्वारा ही कर्माशय को जलाकर भक्तियोग द्वारा मेरा भजन करो ॥३१५॥ मेरे सम्पर्कीय पुण्य गाथा के श्रवण कीर्त्तन से जैसे जैसे आत्मशुद्धि होती है, वैसे वैसे ही भगवद् दर्शन होता है, जिस प्रकार अञ्जन द्वारा नेत्र मालिन्य दूर जैसे जैसे होता है, वैसे वैसे ही वस्तु दिखने लगतीहै ॥३१६॥ केवल भक्ति ही पावन है, यह नहीं किन्तु हरिभक्ति युक्त व्यक्ति जगत् को पवित्र करताहै— जिसकी वाणी गदगदायमान होकर निकलती है, एवं चित्त द्रवित है, पुनः पुनः हँसता, रोता, है, कभी कभी लज्जा को छोड़कर गाता एवं नाचता है, ऐसा मद्भक्ति युक्त व्यक्ति जगत् की पवित्र करता

अतः सतां सङ्ग एव करणीय इति । तत्राह एकादशे भगवदुद्धव-संवादे षड़्विंशाध्याये—(११-२६-२६-:४)

३१८। "ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥

३१९। सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
निर्म्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥

३२०। तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ।
सम्भवन्ति हि ता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥

३२१। ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥

३२२। भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥

३२३। यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥

हैं ।।३१७।। अतएव सज्जन सङ्ग करना एकान्त कर्त्तव्य है । एकादश स्कन्धस्थ भगवदुद्धव संवाद द्वारा कहतेहैं-अतएव दुःसङ्ग को छोड़कर बुद्धिमान्‌जन सत्‌सङ्ग में मनोनिवेश करे, सज्जनगण वाणीरूप असि के द्वारा विषयासक्ति को काट देते हैं ।।३१८।। साधुभक्तगण, अपेक्षा रहित भगवत् अर्पित चित्त, प्रशान्त, समदर्शी, निर्मम, निरहङ्कार, निर्द्वन्द्व, एवं परिग्रह शून्यहोतेहैं।।३१९।। हे महाभाग ! महाभाग्यवानों में भगवत् कथा होती रहती है, प्रीतिपूर्बक उतका सेवन करने पर पापसमूह नष्ट ही जाते हैं ।।३२०।। उन महतां के निकट हरिकथा का श्रवण, गान, अनुमोदन, समादर करने पर शरणागत श्रद्धालु व्यक्ति मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं ।।३२१।। भक्तिलाभ करने वाले के लिए कुछभी अवशेष नहीं रहता है । अनन्तगुण सम्पन्न अनुभवानन्द प्रियस्वरूप मुझ ब्रह्म में उसकी भक्ति होती हैं ।।३२२।। जिस प्रकार

३२४। निमज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढ़ेवाप्सु मज्जताम् ॥

३२५। अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्त्तानां शरणन्त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥

३२६। सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥"

ननु साधवः कीदृशाः ? तत्राह तृतोये कपिल-देवहूति-संवादे- (३-२५-२१,२४)

३२७। "तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

३२८। मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम् ।
मत्कृते त्यक्तकर्म्माणस्त्यक्त-स्वजन-बान्धवाः ॥

भगवान् सूर्यदेव की शरण लेनेपर शीत, भय, तम, नष्ट हो जाते हैं, उस प्रकार साधु की सेवासे भी सेवा करनेवाला सुखी होताहै।।३२३।। धीर भवाब्धि में डूबने वाले के लिए ब्रह्मविद शान्तसाधुगण दृढ़नाव के समान ही परम आश्रय हैं ।।३२४।। जिस प्रकार आर्त्त की शरण मैं हूँ, अन्न जिस प्रकार प्राणियों के प्राणहै, परलोक में धर्म ही जैसे एकमात्र वित्त है, उस प्रकार संसार भयभीत के लिए एकमात्र शरण साधुहैं ।।३२५।। सूर्य उदित होकर लोकों की नेत्र प्रदान करते हैं,किन्तु शास्त्रीय लक्षणाक्रान्त साधुगण ही देवता, बान्धव हैं, यहाँतक कि सन्त आत्मा है, एवं मैं ही सन्त हूँ ।।३२६।। साधुका लक्षण क्या है ? कपिल देवहूति संवाद के द्वारा दर्शाते है,-तितिक्षु, करुण, सकल प्राणियों के सुहृद अजातशत्रु साधुगण होते हैं ।।३२७।। श्रीभगवान् में जो दृढ़भक्ति करतेहैं, और भक्ति के लिए काम्यकर्मों का परित्याग किया ही है, स्वजन बान्धव को परित्यागभी कियाहै ।।३२८।।

३२९। मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥

३३०। त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्ग-विवर्जिताः ।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे एकादशाध्याये-(११-११-२९,३२)

३३१। "कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥

३३२। कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥

३३३। अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड् गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥

३३४। आज्ञायैव गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्म्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स तु सत्तमः ॥"

श्रीभगवत् कथा श्रवण से जिनके चित्तशुद्ध हुआ है, श्रवण कीर्त्तनमें सदारत रहते हैं, भगवद्गत चित्त होने के कारण उनसव की दैहिक दैहिक भौतिक ताप बाधक नहीं होते हैं ॥३२९॥ हे साध्वि ! येसव साधुगण सर्व्वत्र आसक्ति वर्ज्जित होते होते हैं, अतएव उनसवके सङ्ग ही काम्य है, कारण वे सव सङ्गदोष शून्य होते हैं ॥३३०॥ एकादश स्कन्ध के भगवदुद्धव संवाद में उक्त है-साधुगण, कृपालु द्रोहशून्य, तितिक्षु, प्राणियों के हितकारी, सत्यप्रिय, निष्पाप चरित्र, सम, सर्वोपकारी, कामसे अचञ्चलमति, मृदु, शुचि, अकिञ्चन कृष्णभिन्न अन्यत्र आसक्ति रहित, स्वार्थेच्छा रहित, परिमित भोजनकारी, शान्त, स्थिर, मुनि, एवं श्रीहरि शरणागत साधु हैं ॥३३१-३३२॥ अप्रमत्त, गभीरात्मा, धृतिमान्, क्षुधा पिपासा, शोकमोहादि षड् गुणा को जिन्होंने जय किया है, अमानी, मानद, समर्थ, मैत्र, कारुणिक,

३३५। (भा: ११-१४-१७) "निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः,

शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।

कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्,

तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः-सुखं मम ॥

(भा: ११-१०-६,७)

३३६। "अमान्यमत्सरो दक्षो निर्म्ममो दृढ़सौहृदः ।

असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघदृक् ॥

३३७। जायापत्य-गृह-क्षेत्र-स्वजन-द्रविणादिषु ।

उदासीनः समं पश्यन् सर्व्वेष्वर्थ मिवात्मनः ॥"

(भा: १-१८-५०)

३३८। "प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ।

न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्मा गुणाश्रयः ॥"

ननु सतसङ्गेन भक्तिर्भवति, सतसङ्गस्तावत् कथं भवति ? तत्राह-दशमे अक्रूरस्तुतौ चत्वारिंशाध्याये—(१०-४०-२०)

कवि, साधु है ॥३३३॥ वेदोक्त काम्यकर्मो के गुणदोष को जानकर भी निज अधिकारोचितकर्म समूह को त्यागकर जो श्रीकृष्णका भजन करता है, वह साधु सवसाधुओं से उत्तम है ॥३३४॥ निकिञ्चिन श्रीभगवान्में आसक्तचित्त, शान्त, महत् गुणयुक्त, अखिल जीववत्सल, कामादि द्वारा अचञ्चलचित्त व्यक्तिगण साधु होते हैं ॥३३५॥ अमानी अमत्सर, दक्ष, निर्म्मल, भगवान्के साथ दृढ़सौहार्द, असत्त्वर,अचञ्चल अर्थजिज्ञासु, असूयावर्जित, अमोघदृष्टि साधुहोते हैं ॥३३६॥ जाया, अपत्य, गृह, क्षेत्र, स्वजन, धनादि में उदासीन, एवं समस्त विषयोंमें आत्मतुल्य समवुद्धि सम्पन्नव्यक्ति साधु होते हैं ॥३३७॥ प्रायकर साधुगण दुसरेके दुःखको देखकर मोहप्राप्त नहीं होते हैं, व्यथित भी नहीं होते हैं, एवं आनन्दित भी नहीं होतेहैं, कारण आत्मा प्राकृतगुण वर्जित है ॥३३८॥

३३९। "सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं,
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद्यर्हिसंसरणापवर्ग-,
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥"

तथा च मुचुकुन्दोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमाध्याये-(भा:१०-५१-५३)

३४०। "भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्-,
जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ,
परावरेशे त्वयि जायते रतिः ॥"

देवप्रचेतसः प्रति महेशोपदेशेन द्रढ़यति—(भा: ४-२४-५८)

३४१। "अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्त्तितीर्थयो-,
रन्तर्बहिःस्नान-विधुत-पाप्मनाम् ॥

भक्ति सत्सङ्गसे होतीहै, किन्तु सत्सङ्ग क्यैसे होता है ? उत्तर में दशमस्थ अक्रूरस्तुति प्रकरण को कहते हैं-हे प्रभो ! मैं अस्वतन्त्र होकर भी आपके चरणों की शरण प्राप्त हुआ, इन्द्रिय परतन्त्र व्यक्ति के लिए इसप्रकार होना असम्भव है ? कहते हैं-हे ईश ! अन्तर्यामिन् ! आपके चरण शरण प्राप्त होना महतों के लिए सर्वथा असम्भव है, अतएव यह केवल आपके अनुग्रहसे ही सम्भव हुआ । सज्जन की सेवासे भी तो भक्ति होतीहै,मेरा अनुग्रहसे कहना व्यर्थहै ? कहतेहैं जीव का संसार की समाप्ति जव होतीहै श्रीहरि की कृपासे होतीहै, यह सम्भावना ही है, तव ही श्रीहरि चरणमें मति होती है, श्रीहरि कृपाके विना सत्सङ्ग की प्राप्ति एवं सत्सेवा नहीं होती है, सत्सेवाके विना श्रीहरि चरणों में मति भी नहीं होतीहै ॥३३९॥ मुचुकुन्द उपाख्यानमें कथित है-हे अच्युत ! आपकी कृपासे जिस व्यक्ति का संसारबन्ध नष्ट हो जाताहै तव ही भगवज्जन के सङ्गहोता है, जव सत्सङ्ग होताहै, तव अनादि कारण श्रीहरि चरणों में मति होती है ॥३४०॥ देवप्रचेताके

भूतेष्वनुक्रोश–सुसत्त्वशीलिनां,
स्यात् सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥"

ते साधवस्त्रिविधाः–उत्तम–मध्यम-प्राकृताः । तत्रोत्तम-लक्षणमाह एकादशे द्वितीयाध्याये—(११–२–४५,४८,५३,५५)

३४२। "सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥"

३४३। "गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

३४४।
देहेन्द्रिय-प्राण-मनोधियां यो, जन्माप्यय-क्षुद्भय-तर्ष-कृच्छ्रैः ।
संसार-धर्मैरविमुह्यमानः, स्मृत्या हरेर्भागवत-प्रधानः ॥

प्रति महेशका उपदेश पापनाशक श्रीहरि चरण की कीर्त्ति गङ्गा में स्नान दान कर अन्तर बाहर की शुद्धि जिन्हींने कियाहै, वेसब निष्पाप एवं भूतमात्र के प्रति कृपा करने वाले तथा रागादि रहित एवं शील सम्पन्न होतेहैं, उनका सङ्ग श्रीहरि की अनुकम्पासे ही होताहै ॥३४१॥ साधकगण उत्तम मध्यम प्राकृतभेद से तीन प्रकार होतेहैं-उनमें उत्तम साधुका लक्षण एकादश स्कन्धके संवाद से कहते हैं–जो जन समस्त भूतमें भगवान् के प्रति निजी प्रीति जैसी है, इस प्रकार ही रखते हैं, तथा भगवत् सम्पर्कित निजमें समस्त भूतों की प्रीति का भी अनुभव करतेहैं अर्थात् सर्वत्र ही परिपूर्ण भगवत्तत्त्वका अनुभव जोजन करता है, वह ही भागवतोत्तम कहलाते हैं ॥३४२॥ पुनर्वार आट श्लोकों से उत्तम भागवता का लक्षण कहते हैं-श्रीवासुदेव में आविष्टचित्त साधुभक्त इन्द्रिय द्वारा विषग ग्रहण करते हुए भी विद्वेष एवं प्रीति नहीं करते हैं, और परिदृश्यमान विश्व को विष्णुमायामय ही देखते हैं वे भागवतोत्तम हैं ॥३४:॥ जो जन देहेन्द्रियसे प्राप्त जन्म मरणरूप संसार धर्मसे मुग्ध नहीं होताहै, कारण देहका जन्मनाश, प्राण की

३४५। न कामकर्मबीजानां दृश्यते यत्र सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

३४६। न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रम-जातिभिः ।
सज्यतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

३४७। न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूत-समः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

३४८। त्रिभुवन–विभव–हेतवेऽप्यकुण्ठ,-
स्मृतिरजितात्म–सुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्,
लव-निमिषार्धमपि स वैष्णवाग्र्यः ॥"

क्षुधा पिपासा, मनकाभय, बुद्धि की तृष्णा, इन्द्रियो का श्रम जानता है, वह भागवतोत्तम है ॥३४४॥ जिसभक्तसाधु के हृदय में काम, काम्यकर्म, उसकी वासना का उद्भव ही नहीं होता है, एवं जिसका एकमात्र आश्रय श्रीवासुदेव हैं, निश्चित रूपसे वह भागवतोत्तम है ॥३४५॥ जिस लक्षण से साधुभक्त भगवत् प्रिय होता है–उसको कहतेहैं-जन्म,सत्कुल, कर्म्म, तपआदि, जाति अनुलोम प्रति लोमजात संस्कारापन्न जाति आदिसे शरीरमें अवस्थित होकर भी अहङ्कारापन्न नहीं होता है, वह श्रीहरि का प्रिय होता है ॥३४६॥ जिस की बुद्धि धन सम्पत्ति एवं शरीर के विषय में निज, पर–इस प्रकार भेदग्रस्त नहीं होती है, समस्त प्राणियों के सुहृद होता है, एवं समस्त इन्द्रियं तरङ्गों से रहित होता है, निश्चित रूपसे वह भागवतोत्तम होता है ॥३४७॥ और भी त्रिभुवन के विषय तीन लोंकों के साम्राज्य का अवसर प्राप्त होने परभी निमिषार्द्ध कालके लिए भी भगवत् पदारविन्द भजन से विचलित नहीं होताहै वह भागवतोत्तम है, निमिषार्द्ध मात्र भजन छोड़नेपर यदि उतना वड़ा लाभ होताहै, तव क्यों नहीं भगवत् भजन से विचलित होगा ? उनकी अकुण्ठ स्मृति रहती है, अर्थात

३४९। "विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-,
हरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणय-रसनया धृताङ्घ्रिपद्मः,
स भवति भागवत-प्रधान उक्तः ॥"

(भा: ११-११-३३)

३५०। ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥"

मध्यम-लक्षणमाह—(भा: ११-२-४६)

३५१। "ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेम-मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥"

प्राकृत-लक्षणमाह—(भा: ११-२-४७)

भगवत् पदारविन्द से अन्यकुछ सारवस्तु है, इस प्रकार स्मृति उनकी नहीं है, भगवत् पदारविन्दसे अन्यकुछ सारवस्तु कैसे नहींहै ? श्रीहरि में जिन सव की वुद्धि निगूढ़रूप से केन्द्रित है, ऐसे देवगणों के लिए भी जो वस्तु सुदुर्लभ है, और वे लोक केवल अन्वेषण ही करते रहते हैं, इस प्रकार जानकर हरि भजनभिन्न सब वस्तु तुच्छ है, जानकर भगवत् पदारविन्द में ही रतहै ॥३४८॥ अत्यन्त कामासक्त व्यक्ति ही भगवत् भजनसे विषयमें आसक्त होता है, किन्तु भगवत् चरणारविन्द सेवानन्द से तृप्त होने के कारण चित्त शान्त रहता है, जिस प्रकार चन्द्रोदय होनेपर सूर्यताप प्रशमित हो जाता है ॥३४९॥ देशकालादि अपरिच्छिन्न सर्वात्मा सच्चिदानन्द विग्रह श्रीभगवान को विशेष रूपसे जानकर जो जन एकान्त भक्ति भजन करता है, श्रीहरि के मतमें वह भक्त भक्तश्रेष्ठ है ॥३५०॥ मध्यमभक्त का लक्षण कहते हैं-ईश्वर, भक्त, मूर्ख, विद्वेषीव्यक्ति का स्वरूप को जानकर ईश्वर में प्रेम भक्तजन के साथ मैत्री, मूर्ख के प्रति कृपा, विद्वेषी को उपेक्षारूप भेदवुद्धि से जो भक्त व्यवहार करता है, वह मध्यमभक्त है ॥३५१॥

३५२। "अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥"

३५३। (भा:१०-८४-१३) "यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्-,
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥"

तथा तृतीये कपिलदेवहूति-संवादे ऊनत्रिंशाध्याये-(३-२९-२१,२२)

३५४। "अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽन्यद्विडम्बनम्॥

३५५। यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥"

एते त्रिविधा भागवताः, गुणत्रयभेदेन त्रिधा त्रिधा भिद्यते। तत्राह तृतीये ऊनत्रिंशाध्याये कपिल देवहूति-संवादे-(३-२९-८,१०)

प्राकृत भक्त लक्षण कहतेहैं-श्रीहरि विग्रह की पूजा जो श्रद्धासे करता है, उनके भक्त एवं अन्य जनका समादर नहीं करता है, वह आरस्मिक भक्तहै, सम्प्रति भक्तिमार्गमें प्रविष्ट हुआहै, अतएव सत्शिक्षासे क्रमश उत्तम होगा॥३५२॥ निज शरीर में ही जिसकी आत्मवुद्धि, पुत्र पत्नी प्रभृति में निजत्ववुद्धि, पार्थिव पदार्थ में देवतावुद्धि, जलमात्र में ही तीर्थवुद्धि, तत्त्वज्ञव्यक्ति के प्रति श्रद्धा न करना। ऐसा आचरण जिस में दिखाई पड़ताहै, वह दारूण मूर्खहै, गधाहै॥३५३॥ तृकीयस्कन्धस्थ कपिल देवहूति संवाद में वर्णित है-मैं सकल प्राणियों में आत्मारूपमें अवस्थित हूँ। उनसव प्राणिमात्र की अवज्ञाकर मुझ की पूजा करने पर वह अभिनय विड़म्वन ही होता है॥३५४॥ समस्त भूतों में अवस्थित आत्मा ईश्वर मुझको अवमानन कर जो विग्रह सेवा करता हैं, उसकी भस्माहूति होती है॥३५५॥

३५६। "अभिसन्धाय यद्धिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः॥
३५७। विषयाननुसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चादावर्चयेद् यो मां पृथग्भावः स राजसः॥
३५८। कर्म-निर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः॥"

एतेषां परो निर्गुण चतुर्थः। तत्राह—(भा:३-२९-११)

३५९। "मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥"

ननु सत्सङ्गात् सा भक्तिः केन प्रकारेण जायते? तत्राह सप्तमे प्रह्लादचरिते सप्तमाध्याये—(७-७-३०-३२)

३६०। "गुरु-शुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेम च॥

भक्तियोग साधक के स्वभावगुण भेदसे तामस राजस सात्त्विक भेद से तीन तीन प्रकार होते हैं। फल संकल्पभेद से भक्तिभेद होता है। जो साधक संकल्प, क्रोध, भेदवुद्धि से भक्तियोग का आचरण करताहै, वह साधक तामस होता है॥३५६॥ विषय की अभिसन्धि को छोड़ कर यश एवं ऐश्वर्य के लिए भेदवुद्धि से अर्चाविग्रह में भक्ति करताहै, वह तामस कहलाता है॥३५७॥ पापक्षयं के लिए भगवान् में तदीय प्रीति के उद्देश्य से विधिसिद्धि के उद्देश्य से कर्त्तव्यवुद्धि से प्रेरित होकर भेदवुद्धि सम्पन्न साधक अर्चाविग्रहादि में भक्ति करता है, वह सात्त्विक भक्त होता है॥३५८॥ ये सव तामस राजस सात्त्विक भक्त को छोड़कर निर्गुणभक्त एक प्रकार है-उसका लक्षण यहहै। सर्वत्र अवस्थित मुझ ईश्वरमें भगवद्गुण श्रवण मात्रसे ही जिसका मन उस गुणमें गङ्गा का प्रवाह जिसप्रकार समुद्रमें निमज्जित होता है, उस प्रकार निमज्जित होताहै, वह निर्गुण भक्त है॥३५९॥ किस प्रकार

३६१। श्रद्धया तत्कथायाञ्च कीर्त्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुह-ध्यानात्तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥

३६२। एवं निर्जित-षड़्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥
वासुदेवे भगवति यथा संलभते रतिम् ॥"

अत आह एकादशे वसुदेव–नारद-संवादे तृतीयाध्याये-(११-३-२१,२२)

३६३। "तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

३६४। तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥"

(भाः ११–८–१०)

३६५। "अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥"

सत्सङ्ग से भगवत् भक्ति की प्राप्ति होती है ? प्रह्लाद चरित्र प्रसङ्ग से उत्तर देते हैं–भक्ति पूर्वक श्रीगुरुदेव की सेवा से उपलब्ध समस्त वस्तु का अर्पण से, साधुभक्तों के सङ्गसे, ईश्वर की आराधना से भक्ति होती है, ॥३६०॥ श्रद्धया से श्रीहरि कथा श्रवण, उनके गुणकर्म का कीर्त्तन, उनके चरणों का ध्यान, दर्शन, अर्चन प्रभृति से भक्ति होती है ॥३६१॥ इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ मद्मोह, मात्सर्य, की जिस ने परित्याग किया है, वह ही ईश्वरमें भक्ति करते हैं, जिस से भगवान् वासुदेव में प्रीति होती है ॥३६२॥ अतएव एकादश स्कन्धस्थ वसुदेव नारद को कहतेहैं-अतएव उत्तम श्रेयः जिज्ञासु व्यक्ति विद्वान् शास्त्रज्ञ अनुभवी ईश्वरोपासक गुरुचरणों की शरण ग्रहण करें ॥३६३॥ उक्त लक्षण सम्पन्न श्रीगुरुदेव से गुरुको आत्मा एवं इष्टदेव मानने वाला व्यक्ति अमाया से गुरुदेव के आनुगत्य करके भागवत् धर्मकी शिक्षा ग्रहण करे, इस प्रकार शिक्षार्थी के प्रति आत्मा आत्मद हरि प्रसन्न होते हैं ॥३६४॥ कुशलीव्यक्ति अणुमहत् शास्त्रसे मधुकर जिसप्रकार

अतो गुरुत एव भगवद्भक्तिर्भवतीति निर्णयः। तत्राह द्वितीये ब्रह्म-नारद-संवादे सप्तमाध्याये—(२-७-४६)

३६६। "ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां,
स्त्री-शूद्र-हून-शवरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुत-क्रमपरायण-शीलशिक्षा-,
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥"

भागवतान् धर्मान् निरूपयति; तत्राह एकादशे तृतीयाध्याये—(११-३-२७,२८)

३६७। "श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भुत-कर्म्मणः।
जन्म-कर्म-गुणानाञ्च तदर्थेऽखिल-चेष्टितम्॥

३६८। इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्॥"

सप्तमे युधिष्ठिर-नारद-संवादे चतुर्दशाध्याये-(७- ४-१०-१२)

कुसुमों से मधुग्रहण करता है, उस प्रकार सबसे सार उपदेश ग्रहण करे॥३६५॥ (११-८-१०) अतएव निर्णय यह हुआ है कि उक्त लक्षणाक्रान्त सद्गुरुदेवसे ही भगवद्भक्ति होती है, द्वितीयस्कन्धस्थ ब्रह्म नारद संवाद इस प्रकार हैं–वे सबजन देवमाया को जानते भी हैं और उसको अतिक्रम भी करते हैं, वे सब स्त्री, शूद्र, हून, शबर, एवं पापोंसे उत्पन्न जीव क्यों न हो। यदि श्रीहरिभक्त गुरुचरणसे शिक्षा ग्रहण करते हैं तो, ध्यान परायणव्यक्ति तो जानकर ही मायामुक्त हो जाते हैं॥३६६॥ भागवतधर्म का निरूपण कर रहेहैं–एकादशस्कन्ध के तृतीयाध्यायमें वर्णित है–अद्भुतकर्मा श्रीहरिके जन्म कर्म गुणसमूह के श्रवण, कीर्त्तन, ध्यान, एवं श्रीहरि के लिए ही अखिल प्रचेष्टा ही भागवतधर्म है॥३६७॥ याग यज्ञ, दान, अर्पण, तप, जप, धन, सदाचारादि एवं अपना जो अतिप्रिय है, पत्नी, पुत्र, गृह, प्राण प्रभृति श्रीहरि को अर्पण करना भागवत धर्म है॥३६८॥

३६९। "त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥
३७०। आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामान् संविभजेद्यथा ।
अप्येकमात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥
३७१। जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान् हन्याद् वा पितरं गुरुम् ।
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद्यस्तेन ह्यजितो जितः ॥"
(भा: ११-३-२९,३०)
३७२। "एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।
परिचर्यांश्चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥
३७३। परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥"

सप्तमस्कन्धस्थ युधिष्ठिर नारद संवादमें वर्णित है-गृहस्थाश्रमी व्यक्ति सुख पूर्वक धर्म, अर्थ, कामका सेवन करे। देश, काल, दैवसे प्राप्त उक्त वस्तुओं का ही सेवन करे ॥३६९॥ कुकुर, पतित, दरिद्रदुःखी, चण्डाल प्रभृति से लेकर समस्त प्राणियों को अपना भोगके विषयों को विभाग कर प्रदान करे, यहाँतक की धर्मपत्नीमें मनुष्यका एकाधिपत्य रहता है, उसको दुसरे की सेवामें नियोग करने पर आपनी सेवानुकूल्यमें वाधा होगी, ऐसा होने परभी उस पत्नी को भी अतिथि सेवामें नियोग करे, अपना सव विषयो को ही पर सेवाके लिए यथा यथ रूपसे विभागकर नियोग करे ॥३७०॥ जिस स्त्रीके लिए मानव निजप्राण परित्याग करता है, पिता एवं गुरुजनकी हत्या करता है, उस स्त्रीमें जो अपनास्वत्व है, उसको भी जनसेवाके लिए अर्पण करे। पत्नी प्रभृति समस्त वस्तुको यथावत् सेवामें नियोगकर अपने को श्रीहरि सेवक होने की शिक्षाप्रदान करे ॥३७१॥ इस निज एवं समस्त जीवों के प्रिय आत्मा कृष्णके प्रति जिनका सौहार्द है, उनके साथ सौहार्द स्थापन करे। स्थावर जङ्गमकी भी परिचर्या करे, विशेषकर मनुष्य

तथा भगवदुद्धव-संवादे एकादशाध्याये—(भा: ११-११-२३-२५)

३७४। "श्रद्धालुर्मत्कथाः शृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः ।
गायन्ननुस्मरन् कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥

३७५। मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः ।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥

३७६। सत्सङ्ग-लब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ।
स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥"

तथोनविंशाध्याये—(भा: ११-१९-२०-२३)

३७७। "श्रद्धामृत-कथायां मे शश्वन्मदनुकीर्त्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥

३७८। आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥

मात्र की, उसमें भी स्वधर्मशील साधुकी परिचर्या करे, उससे भी महत् श्रीभागवत की परिचर्या करे ॥३७२॥ उनसब आचरण परायण महत् भागवतगण के साथ मिलकर परम पावन श्रीभगवत् यशः का कथन प्रकार की शिक्षा करे, महत्सङ्ग से संस्पर्द्धादि विदूरित होनेपर भगवज्जनके साथ पारस्परिक प्रीति, सुख, तुष्टि सन्तोष, समस्त दुःख की निवृत्ति होती है, इस सब की आचरण अनुभव द्वारा भी शिक्षा करे ॥३७३॥ लोक पवित्रकारिणी परम मङ्गलमयी मेरी कथा का श्रवण श्रद्धालुजन करे, एवं पुनः पुनः जन्म, कर्म प्रभृति का गान, स्मरण, एवं अभिनय भी करें ॥३७४॥ शरणागत होकर मेरेलिए ही धर्म, अर्थ, कामादि का आचरण करने से हे उद्धव सनातन मुझमें निश्चला भक्ति की प्राप्ति होगी ॥३७५॥ सत्सङ्गसे प्राप्त भक्ति द्वारा मेरी उपासना कर अनायास कैङ्कर्य्य प्राप्त होताहै, सज्जनगण भक्ति प्राप्तिके लिए सरलपथ का वर्णन किए है ॥३७६॥ एकादश के उनविंशाध्याय में वर्णित है—मेरी चरित कथा में श्रद्धा नित्य ही मेरा

३७९। मदर्थेऽङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणञ्च मनसः सर्वकाम-विवर्ज्जनम् ।।

३८०। मदर्थेऽर्थ-परित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ।।"

तथा चैकादशेऽष्टमाध्याये—(११-८-६)

३८१। "समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ।
नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ।।"

(भा: ११-११-१५-१७)

३८२। "यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किञ्चिद्यदृच्छया ।
अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ।।

३८३। न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ।।

३८४। न कुर्यान्न वदेत् किञ्चिन्न ध्यायेत् साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ।।"

कीर्त्तन, पूजामें निष्ठा, स्तुति के द्वारा मेरास्तव ।।३७७।। परिचर्या में आदर, सर्वाङ्ग द्वारा प्रणाम, मेरेभक्त की सर्वतोभावेन पूजा, भूतमात्र के प्रति भगवद् बुद्धि ।।३७८।। मेरे लिए कायवाक्यमन की यावतीय क्रिया, वाणी द्वारा मेरा गुणकीर्त्तन, मुझमें मनका अर्पण, एवं सकल कामना वर्ज्जन ।।३७९।। मेरे निमित्त अर्थका परित्याग, भोग एवं सुखका परित्याग, इष्ट, दानकर्म, हवनादि कर्म, जप, व्रत तप सबकुछ मेरेलिए ही हो ।।३८०।। सम्पन्न, अथवा हीन, नारायण परायणमुनि, सागर जिस प्रकार नदीयों से वृद्धिक्षय प्राप्त नहीं होता है, उसीप्रकार उल्लास एवं ग्लानि प्राप्त न करे ।।३८१।। हिंस्रव्यक्ति द्वारा पीड़ित होने पर अथवा अकस्मात् अनायास सम्मानित होने परभी बुधगण उससे प्रभावित न होवे ।।३८२।। उत्तम कर्म देखकर प्रशंसा न करे, नीचकर्म को देखकर निन्दा न करे, समदृष्टि सम्पन्न मुनि गुणदोष

(भा: ११-१९-२४)

३८५। "एवं धर्म्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।

मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥"

ननु भगवत्कथासु श्रद्धावतां विषयादिसुखत्यागे अनीश्वराणां कथं प्रवृत्तिः स्यात् ? तत्राह एकादशस्कन्धे विंशतितमाध्याये—(११-२०-२६-२९)

३८६। "गुणदोष-विधानेन सङ्गानां त्याजनेच्छया ॥

३८७। जातश्रद्धो-मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।

वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥

३८८। ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।

जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥

३८९। प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुनेः ॥"

तथा च भगवदुद्धव-संवादे—(भा: ११-११-१४,११,१२)

वर्णन वर्जित होते हैं ॥३८३॥ साधु एवं असाधु कुछभी कर्म न करे और न बोले न ध्यान करे, आत्माराम मुनिगण जड़के समान विचरण करे॥३८४॥ हे उद्धव ! आत्म निवेदन कारी जनगण उक्त धर्माचरण द्वारा मुझमें भक्तिप्राप्त करलेते हैं, भक्तिप्राप्त करने के पश्चात् कुछभी अवशेष नहीं रहजाता है ॥३८५॥ भगवत् कथामें श्रद्धालु व्यक्ति विषय सुखकी अनायास भोग करते हैं ? किन्तु जो लोक विषय सुख त्याग करने में असमर्थ हैं, उसकी प्रवृत्ति भागवत धर्ममें कैसे होगी ? इस का उत्तर एकादश स्कन्धस्थ विवरण से देते हैं-विषयासक्ति का परित्याग करने के लिए गुणदोष का विचार किया गया है ॥३८६॥ मेरी कथामें श्रद्धालुजन सकल काम्यकर्म में निर्विण्ण होवे, कामनाके विषयों को दुःखद जानकर भी परित्याग करने में असमर्थ है ॥३८७॥ उस अवस्था से ही प्रीत, श्रद्धालु, दृढ़निश्चय जब मेरा भजन करे, दुःखद काम्य विषयके स्वरूप को जानकर निन्दा करे एवं यथा योग्य

३९०। "यस्य स्युर्वीत-संकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्‌गुणैः ॥"

३९१। "एवं विरक्तः शयन आसनाटन-मज्जने ।
दर्शन-स्पर्शन-घ्राण-भोजन-श्रवणादिषु ॥

३९२। न तथा वध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ।
प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥"

(भाः ११-१४-१८)

३९३। "वाध्यमानोऽपि मद्‌भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥"

अत आह दशमे दरिद्र-श्रीदामोपाख्याने; तस्यामरप्रार्थितैश्वर्यलाभेऽप्य-नासक्ति प्रकाशयति—(भाः १०-८१-३८)

३९४। "इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्द्दने ।
विषयान् जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पटः ॥"

विषय ग्रहण करें ॥३८८॥ उक्त भक्तियोग द्वारा मेरे भजनसे मननशील व्यक्ति की इष्टप्राप्ति होती है ॥३८९॥ भगवदुद्धव संवाद में वर्णित है–जिस के प्राण मन इन्द्रिय वुद्धि स्वार्थ संकल्प को छोड़दिये हैं, वह व्यक्ति शरीर में अवस्थान करते हुएभी उसके गुणों के प्रभाव से मुक्त हैं ॥३९०॥ इस प्रकार शयन, आसन पर्यटन, स्नान, दर्शन, स्पर्श, घ्राण, भोजन, श्रवण प्रभृतिके प्रति बितृष्णा, साधुभक्त होतेहैं ॥३९१॥ जिस प्रकार आकाश, सूर्य, पवन, सर्वत्र सञ्चरण कर भी किसी के गुण दोष से संसक्त नहीं होतेहैं, उस प्रकार विद्वान् भक्तजन समस्त विषय ग्रहण करके भी उससे प्रभावित नहीं होते है ॥३९२॥ अजितेन्द्रिय भक्तगण विषयसे आवद्ध हो जाने परभी प्रायकर एकान्तभक्ति आचरण द्वारा वे सव भक्त बिषयों से अभिभूत नहीं होते हैं ॥३९३॥ अतएव दशमस्कन्ध में दरिद्र श्रीदामविप्र के उपाख्यान में कहे हैं । विप्रने अमरगण वाञ्छित सम्पद् प्राप्त करलेने परभी विषयासक्त नहीं हुआ

तथा च रासक्रीड़ायां त्रयस्त्रिंशाध्याये—(भा: १०-३३-३२)

३६५। "कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते।
विपर्ययेण वानर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-२८-२५)

३६६।
"समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभि,र्गुणो भवेन्मत् सुविविक्त धाम्नः
विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं, घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ?"
(भा: १०-२०-३१-३३)

३६७। "तस्मान्मद्भक्तियोगेन योगिनो वै मदात्मनः।
नज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥

३६८। यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञान-वैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि॥

उसको कहतेहैं-वुद्धि इसप्रकार निश्चयकर विप्रजनार्दनके अतीव भक्त होगया और विषयासक्ति की छोड़कर पत्नीके साथ अत्यन्त आसक्त न होकर विषय का सेवन करने लगा॥३६४॥ उस प्रकार रासक्रीड़ा के तेत्रीश अध्यायमें कथित है-हे प्रभो ! प्रकृत विषय संभोग में जनगण मङ्गल शिक्षा प्रदानकारी का उद्देश्य नहीं है, निरहङ्कारि के लिए बिषयभोग से अनर्थ की सम्भावना ही कहाँ है॥३६५॥ विवेकी मुक्त पुरुष के लिए इन्द्रियकृत गुणदोष सम्बन्ध नहीं होता है, जिसने मुझ को सम्यक् प्रकार से जाना है, उस समाहित पुरुष के लिए विक्षिप्त इन्द्रियों का प्रभाव दोषावह नहीं होता है। प्रकाशक प्रकाश्यगत गुणदोषसे युक्त नहीं होती है, सूर्य मेघसे आच्छादित होनेपर एवं अनावृत होनेपर सूर्यका कुछभी नहीं होता है। इस दृष्टान्तसे ही मुक्त पुरुषको जानना होगा॥३६६॥ अतएव मदात्मा भक्तियोगयुक्त व्यक्ति के लिए चित्तवृत्ति निरोध करने के लिए योग अभ्यास एवं मुक्तिके स्वरूपानु सन्धानरूप ज्ञान, एवं विषय वैराग्य श्रेयस्कर नहीं होता

३९९। सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गंमद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥"

ननु विषयसत्त्वे महान् दोषः ? दोषसत्त्वे कथं भगवद्भजनं स्यात् ? तत्राह—(भा: ११-२०-३६, ३७)

४००। "न मय्येकान्त-भक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥

४०१। एवमेतन्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥"

भक्तियोगाद्विषययोगो दूरीभवति । तत्राह-(भा:११-२५-३३)

४०२। "तस्माद्देहमिमं लब्धा ज्ञानविज्ञान-सम्भवम् ।
गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥"

(भा: ११-२९-१६)

है ।।३९७।। काम्यकर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दानधर्म एवं अपर श्रेयःसाधन से जो कुछ भी होता है, सबकुछभी अनायास भक्तगण भक्तियोग द्वारा प्राप्त करते हैं, स्वर्ग, मुक्ति धामवास प्रभृति की जो कुछभी कामना हो भक्तियोग से सबकुछ प्राप्त होते हैं ।।३९८।। विषय होनेपर महादोष होता है ? दोष होनेपर भगवद् भजन कैसे होगा ? इसका समाधान कहते हैं–गुणदोष से उत्पन्न गुणसकल एकान्त भक्तके लिए प्राप्त नहीं होते, कारण वे सब समचित्त साधु एवं प्रकृतिके अतीत हैं ।।३९९।। मेरा मतका अनुसरण जो भी व्यक्ति करेंगे, वे सब ही शान्ति पूर्ण परब्रह्म धाम को प्राप्त करेंगे ।।४००।। भक्ति योगसे विषय भोग विदूरित होता है–अतएव ज्ञान विज्ञान प्राप्त करनेके योग्य मानव देह लाभकर विचक्षण व्यक्तिगण गुणसङ्ग को छोड़कर मेरा भजन करें ।।४०१।। अहङ्कार उपहास लज्जा प्रभृति को छोड़कर भक्तगण कुकुर चाण्डाल गो खर से लेकर सबको भूमिमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम करे ।।४०२।।

४०३। "विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडाञ्च दैहिकीम् ।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥

सप्तमे युधिष्ठिर-नारद-संवादे—(७-१४-९)

४०४। "मृगोष्ट्र-खर-मर्काखु-सरीसृप्-खग-मक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥"

(भा: ११-२९-२२)

४०५। "एषां बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥"

ननु विषयसङ्गेऽपि यदि गुण-दोषौ न स्याताम्, तर्हि पूर्वं यदुक्तं सर्वसङ्गं परित्यज्य मां भजेत् तत् कथं घटत इति ? तत्राह-(भा ११-२८-२७,२८)

४०६। "तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो, गुणेषु मायारचितेषु तावत्
मद्भक्तियोगेन दृढ़ेन यावद्, रजो निरस्येत मनःकषायः ॥

४०७।

यथामयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां, पुनःपुनः संतुदति प्ररोहन् ।
एवं मनोऽपक्व-कषाय-कर्म, कुयोगिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥"

सप्तमस्कन्धस्थ युधिष्टिर नारद संवादमें उक्त है-मृग ऊँट गधा बंदर मुसा सरीसृप साँप खग, मक्षिक आदिको अपने पुत्रके समान प्रतिसे देखे, अपने और इस सबमें कितना अन्तर है ? (४०४) विषय के सङ्गसे भी यदि गुणदोष नहीं हो तो, पहले जो कहा कि सर्वसङ्ग को छोड़कर मेरा भजन करे। यह कथन कैसे सम्भव होगा ? इस उत्तर मे क ते हैं-मायिक वस्तुयों के प्रति आसक्ति को तब तक वर्जन करना एकान्त आवश्यक होगा, जबतब अनन्यभक्तियोग द्वारा मनका कषाय रजगुण विनष्ट नहीं होताहै ॥४०५-६॥ जिस प्रकार रोग की चिकित्सा विपरित होनेपर रोग पुनः पुनः बढ़कर क्लेश भी अधिक होता रहता है, उस प्रकार मनके अपक्व कषाय कर्मवासना सकल आसक्ति अधिक क्लेश प्रदान करती है ॥४०७॥ भक्तियोग द्वारा मनः का कषाय

भक्तियोगेन मनःकषाये निवृत्ते गुण-सम्बन्धेऽपि चेतस्तत्र न सज्जेत।
तत्राह प्रथमे सूत-शौनक-संवादे द्वितीयाध्याये–(१-२-१९-२१)

४०८। "तदा रजस्तमोभावाः काम-लोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥

४०९। एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥

४१०। भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥"

अतो गुरूपासनयोरूभक्तचैव भक्तिर्जायते। दशमे दरिद्र श्रीदामोपाख्याने भगवन्तं गुरोरुक्तौ अशीतितमोध्याये–(१०-८०-४१)

४११। "एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्त्तव्यं गुरुनिष्कृतम्।
यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥"

अत आह एकादशे सप्तदशाध्याये–(११-१७-२७,२८)

४१२। "आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

निवृत्त होनेपर गुणके सम्बन्धसे भी चित्त आसक्त नहीं होता है। इसका विवरण प्रथमस्कन्धस्थ सूतशौनक संवाद द्वारा कहते हैं-रजः तमभाव, काम लोभ प्रभृति से चित्तग्रस्त नहीं होता है, और सत्त्वमें प्रतिष्ठित होकर प्रसन्न होता है ॥४०८॥ इस प्रकार भगवद् भक्तियोग से मन प्रसन्न होनेपर भक्तसंङ्ग परायण का भगवत्तत्त्व का अनुभव होता है ॥४०९॥ अनन्तर हृदयग्रन्थि का भेदन, समस्त संशय का विनाश एवं कर्मसमूह का क्षयभी होताहै ॥४१०॥ अतः गुरु उपासना रूप सेवासे ही भक्ति श्रीभगवच्चरणों में होतीहै, दशमस्कन्धके दरिद्र श्रीदामोपाख्यान में भगवान् के प्रति श्रीगुरुदेव की उक्ति इस प्रकार है, सद्शिष्यगण श्रीगुरुदेव की सेवा इसप्रकार ही करें। और विशुद्ध भावसे सर्वप्रकार आत्मार्पण श्रीगुरुदेव को करे। एकादशस्कन्ध के

४१३। सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ।
यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयुतः ॥"

तत्राह भगवदुद्धव-सवादे एकादशे—(११-१२-२४)

४१४।

"एवं गुरूपासनयैकभक्त्या, विद्याकुठारेण शितेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः, सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥

अतो गुरुशुश्रुषणामेव भगवच्छ्रूषणात् परमिति श्रीदामचरिते दशमे—(१०-८०-३४)

४१५। "नाहमिज्या-प्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥"

अतो गुरुषु मनुष्यबुद्धिं न कुर्यात्। तत्राह युधिष्ठिर-नारद-संवादे प्रह्लाद-चरिते सप्तमे—(७-१५-२६,२७)

४१६। "यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥

सप्तदशाध्याय में कथित है-मुझ को ही आचार्य जानना, कभी भी मनुष्य बुद्धिसे असूया न करे, गुरुदेव सर्वदेवमय होते हैं ॥४११-१२॥ सायं कालीन एवं प्रात: कालीन भोजन के पदार्थ श्रीगुरुदेव को अर्पण करके ही उनके आदेश से सब पदार्थ ग्रहण करे ॥४१३॥ एकादश स्कन्ध थ भगवदुद्धव संवाद में उक्तहै-इस प्रकार गुरु उपासनारूप शाणित भक्तिकुठार से धीरव्यक्ति कर्म वासना को छेदन करे ॥४१४॥ अतएव गुरुशुश्रूषा ही श्रेष्ठ भगवत् सेवा है दशमस्थ श्रीदाम चरितमें कथित है-यागयज्ञ स्वधर्माचरण तप,वैराग्य आदिके द्वारा सर्वभूतात्मा उस प्रकार सन्तुष्ट नहीं होता हूँ, जिस प्रकार गुरुशुश्रूषा से प्रसन्न होता है ॥४१५॥ अतएव गुरुजन के प्रति मनुष्यबुद्धि कदापि न करे, प्रह्लाद चरितमें इसका विवरण इस प्रकार है-ज्ञान प्रदीप प्रदानकारी श्रीगुरुदेव के प्रति जिस की मनुष्यबुद्धि हो उसका हस्ति स्नानके

४१७। एष वै भगवान् साक्षात् प्रधान-पुरुषेश्वरः ।
योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको यं मन्यते नरम् ॥"

गुरु-पितृ-मातृ-स्वजनाद्या यदि संसारबन्ध-मोक्षाय न भवन्ति, तर्हि तेऽप्यनादरणाया । तत्राह पञ्चमस्कन्धे ऋषभ-चरिते (५-५-१८)

४१८। "गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्,
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या,
न्न मोचयेद्यः समुपेत-मृत्युम् ॥"

तथा चाष्टम-स्कन्धे मत्स्य-सत्यव्रत-संवादे चतुर्विंशाध्यायें-(८-२४-५०)

४१९।

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृत,स्तथा जनस्याविदुषोऽवुधो गुरुः
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो,वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥

ननु गुरुतस्तावद्भक्तिर्ज्जायते, भक्तयां सञ्जातायां का निष्ठा ? तत्राह प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतौ— (१-८-३६)

समान सकल अध्ययन व्यर्थ होता है ॥४१६॥ प्रधान पुरुषेश्वर साक्षात् भगवान् हो गुरुरूपमें अवतीण हैं, उनको भी मनुष्य, मनुष्यवुद्धि से देखते हैं ॥४१७॥ गुरु, पिता, माता, स्वजन प्रभृति यदि संसारबन्ध से मुक्त होने में सहायक नहीं वनते तो वे भी आदर के योग्य नहीं होंगे । इसका विवरण पञ्चमस्कन्धस्थ ऋषभ देवचरित में इस प्रकार है-गुरु, स्वजन, पिता, जननी, दैव, पति आदरणीय नहीं होते हैं, यदि वे संसारबन्ध से मुक्त होनेके सहायक नहीं वनते ॥४१८॥ अष्टम स्कन्धके मत्स्य सत्यव्रत संवाद में-चक्षुहीन व्यक्ति देखहीन व्यक्तिके पथप्रदर्शक जिस प्रकार होता है, उस प्रकार ही अविद्वान् जनके लिए अवुधजन ही गुरु होतेहैं, आप सवके नेत्रप्रकाशक सूर्यके समान हैं, अतएव मैं स्वगति को जानने के लिए आपको गुरु रूपमें वरण करता हूँ ॥४१ ॥

४२०। "शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः,
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं,
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥"

तथा च द्वितीयस्कन्धे शुकदेव परीक्षित्-संवादे—(२-८-४)

४२१। "शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि ॥"

तथा च दशमे—१०-२ ३७)

४२२। "शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्,
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-,
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥"

तथा च—(भा: ११-२-४२)

४२३।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति, रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु,स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥

श्रीगुरुदेव से ही भक्तिलाभ होता है, भक्तिप्राप्त होने के पश्चात् उसकी स्थिति क्या होगी ? कुन्तीस्तुति का प्रकरण को कहतेहैं-जो जन श्रीकृष्णके चरित्र श्रवण, कीर्त्तन, ग्रहण, स्मरण, अनुमोदन पुन:पुन: करता है, वह सत्वर ही भवप्रवाह परमरूप आपके चरणाविन्द का दर्शन लाभ अवश्य करेगा ।।४२०।। द्वितीय स्कन्धके शुकदेव परीक्षित संवाद में उक्तहै-श्रीभगवत् चरित्र श्रवण ग्रहण श्रद्धासे नित्य करनेपर अति सत्वर भगवान् हृदयमें प्रविष्ट होते हैं ।।४२१।। दशममें वर्णित है कि-श्रीहरिके मङ्गलमय नामरूप समूह के श्रवण ग्रहण स्मरण चिन्तन करते करते श्रीहरिके चरण सेवामें आविष्ट चित्तव्यक्ति का

साधन-लक्षणा भक्ति निरूप्य सिद्धलक्षणां निरूपयति-(भा:११-२-४३) ४२४।

इत्यच्युनाङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या, भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः
भवन्ति वै भागवतस्य राजं,स्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥

सिद्धलक्षणभक्तेरनन्तरं का निष्ठा? तत्राह वसुदेव-नारद-संवादे एकादशे तृतीयाध्याये—(११- -३१,३२)

४२५। "स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या विभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥

४२६। क्वचिद्रुदन्त्यच्युत-चिन्तया क्वचि,-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं,
भवन्ति तुष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥"

तर्हि भक्ति-मत्ततयोः को भेदः? नैवमनन्तरं वाह्यज्ञानं भवति, तत्राह सप्तमे प्रह्लादचरिते—(७-९-३४-३६)

संसार पुनर्वार नहीं होता है ॥४२२॥ भोजनकारी व्यक्ति को भोजन ग्रहण से जिस प्रकार तुष्टि पुष्टि एवं क्षुधा निवृत्ति एककालमें ही होती है, उस प्रकार शरणागतजन को भक्तिलाभसे भगवत् भक्ति, भगवत अनुभव प्राकृत विषयोंमें विराग एककालमें ही होताहै ॥४२३॥ साधन भक्ति कथमके वाद सिद्धभक्ति लक्षण कहते हैं—श्रीगुरुदेव के आनुगत्य से श्रीहरिके चरणकमलों के भजनसे भक्ति, विषय वैराग्य एवं भगवत् तत्त्वविज्ञान होता है, उससे परम शान्तिलाभ होता है ॥४२४॥ सिद्ध लक्षण भक्तिलाभ के पश्चात् भक्तिकी स्थिति किसप्रकार होती है? वसुदेव नारद संवाद से उसका उत्तर देतेहैं—पापविनाशक श्रीहरि का परस्पर स्मरण प्रभृति करनेपर भक्तिसे उत्पन्न भक्ति द्वारा भक्तशरीर पुलकायित होता रहता है ॥४२५॥ उस समय भावावेशसे कभी रोदन, हास्य, अनुमोदन, नृत्य, गानद्वारा श्रीहरि के अनुशीलन से भक्तचित्त

४२७।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्,वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं, प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति

४२८।

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस,त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते,नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ॥

४२९।

तदा पुमान् मुक्त-समस्तबन्धन,स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः
निर्दग्ध-वीजानुशयो महीयसा,भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥

तत्र दृष्टान्तमाह दशमे—(१०-३०-१४,१५)

४३०। "इत्युन्मत्त-वचो गोप्यः कृष्णान्वेषण-कातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥

परमानन्द में निमज्जित हो जाता है ॥४२६॥ तब भक्त एवं मत्तव्यक्ति में भेद क्या होगा ? पागल एवं भक्तमें भेदहै, आवेशके अनन्तर भक्त का बाह्यज्ञान होता है, पागलमें बाह्यज्ञान का अभाव रहता है, इस विषय प्रह्लाद चरित में वर्णित है, श्रीहरि के अतुल्य गुणसमूह एवं लीलातनु द्वारा आचरित प्रभाव पूर्णलीला समूह को सुनकर अतिहर्ष पुलक अश्रु गदगदायमान कण्ठसे भक्तगण गाते नाचते एवं रोते रहते हैं ॥४२७॥ जिस समय ग्रहावेश के समान कभी हँसते, रोते, ध्यान करते, सबको वन्दने करते पुनः पुनः दीर्घश्वास लेकर हे हरे ! हे जगत्पते, हे नारायण, इस प्रकार लज्जाको छोड़कर कहतेहैं ॥४२८॥ उस समय ही मानव समस्त बन्धनसे मुक्त होकर;तद्भाव भावितान्तःकरण एकान्त भक्तियोग द्वारा कर्माशय को दग्धकर अधोक्षज श्रीहरि सान्निध्य को प्राप्त करते हैं ॥४२९॥ उसमें दृष्टान्त दशमस्कन्धस्थ वाक्यमें है-श्रीकृष्णान्वेषण कातर गोपीगण उन्मत्त प्रलापद्वारा तदात्मा होकर उक्त उन लीलाओं का अनुकरण करने लगी ॥४३०॥

४३१। कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
सोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम् ॥" इत्यादि।

तथा च अष्टमस्कन्धे तृतीयाध्याये गजेन्द्रोक्तौ-(८-३-२०)

४३२।

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं,वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं, गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥"

तथा चैकादशे वसुदेव-नारद-संवादे —(११-२-३९,४०)

४३३। "शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे,-
जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि,
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥

४३४।

एवंव्रतः स्वप्रियनाम-कीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय,त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥

एतदेव महाराजलक्ष्म्यावृतानासक्त-महाभागवताचरणेन द्रढ़यति-सप्तमे प्रह्लाद-चरिते —(७-४-३-४२)

कोई पूतना बनगई तो कोई कृष्णबनी एवं स्तनपान किया, अपर गोपीं कृष्णरूपी बालक बनकर रोनेलगी, एक तो पैरसे शकट भञ्जन ही करदिया ।।४३१।। अष्टमस्कन्ध के तृतीयाध्यायस्थ गजेन्द्रस्तुति में उक्तहै-भगवत् प्रपन्न एकान्त भक्तगण कुछभी चाहते नहीं हैं, अति अद्भुत सुमङ्गल का गान आनन्द, समुद्रमें मग्न होकर करतेहैं ।।४३२।। एकादशस्कन्धस्थ वसुदेव नारद संवाद में वर्णित है-रथा ङ्गपानि श्रीहरि के जन्म कर्म, लोकमें प्रसिद्ध गीतसमूह एवं अर्थयुक्त नामसमूह का गान करते हुये लज्जा का त्यागकर सर्वत्र विचरण करें।।४३३।। इसप्रकार निष्ठाशील व्यक्ति निजप्रिय हरिके नाम कीर्त्तन से अनुराग प्राप्तकर लेताहै एवं द्रवित हृदयसे उच्चैःस्वर से हँसते रोते गाते एवं

४३५। "न्यस्त-क्रीड़नको वालो जड़वत् तन्मनस्तया ।
कृष्णग्रह-गृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥

४३६। आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिवन् ब्रुवन् ।
नानुसन्धत्त एतानि गोविन्द-परिरम्भितः ॥

४३७। क्वचिद्रुदति वैकुण्ठ-चिन्ताशवल-चेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥

४३८। नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥

४३९। क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्श-निर्वृतः ।
अस्पन्द-प्रणयानन्द-सलीलामीलितेक्षणः ॥

४४०।
स उत्तमःश्लोक-पदारविन्दयो,र्निषेवयाकिञ्चनसङ्ग-लब्धया ।
तन्वन् परां निर्वृतिमात्मनोमुहु,र्दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात्

लोक लज्जाको छोड़कर नाचते रहते हैं ॥४३४॥ यहसव महाराज लक्षणाक्रान्त अनासक्त महाभागवत श्रीप्रह्लादके आचरणसे प्रतिपादन कर रहे हैं–वालक तन्मय होकर क्रीड़ोपकरण श्रीकृष्णविग्रह के लेकर खेलते खेलते कृष्णग्रह गृहीत आत्मा होकर वाह्यज्ञान शून्य हो गये थे ॥४३५॥ वैठते, सोते, खाते, पीते, टहलते समय भी ये सव कुछभी नहीं जानते थे, आप स्मरणरूपी श्रीगोविन्दसे परिरम्भित रहे ॥४३६॥ श्रीहरि चिन्तासे विवश होकर कभी रोते हँसते एवं उनकी चिन्ताह्लाद से उत्फुल्ल होकर कभी उँचै स्वरसे गाते रहते हैं ॥४३७॥ उत्कण्ठासे कभी हरिको पुकारते कभी लज्जाको छोड़कर नाचते और कभी उनकी भावनासे तन्मय होकर उनकी लीलाका अनुकरण करने लगे थे ॥४३८॥ कभी तो पुलकायित अङ्ग होकर चूपरहते, आनन्द जड़ता आ जाती थी, कभी तो निस्तरङ्ग प्रणयानन्द सलिल में निमज्जित होकर नेत्र

तृतीयस्कन्धे कपिल-देवहूति संवादे-(३-२५-३५,३६)

४४१।

"पश्यन्ति मे रुचिराण्यम्ब सन्तः, प्रसन्नवक्त्रारुण-लोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि,साकं वाचं स्पृहणीयां-वदन्ति॥

४४२। **तैर्दर्शनीयावयवैरुदार,-विलास-हासेक्षित-वामसूक्तैः।**
हृतात्मनोहृतप्राणांश्च भक्ति,रनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते॥

तथा च चतुर्थे ध्रुवचरिते—(४-१२-१८)

४४३। **"भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्नजस्र,-**
मानन्द वाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः।
विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो,
नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः॥"

तथा चैतेषामिन्द्रियादीन्यपि भगवत्कर्म्मविषयाण्येव। एतदपि महानुभावाचरणेन द्रढ़यति। तत्राह नवमे अम्बरोषचरिते चतुर्थाध्याये-(९-४-१८-२०,२७)

मुँदकर रहते थे ॥४३९॥ भगवद्भक्त के सङ्गसे श्रीहरि चरणारविन्द की सेवा प्राप्त होनेपर परमानन्द से मन दुःसङ्ग मुक्त होगया ॥४४०॥ तृतीयस्कन्धस्थ कपिलदेवहूति संवाद भी इस प्रकार है–हे अम्ब! साधुभक्तगण मेरा मनोहररूप दर्शन करतेहैं,प्रसन्न वदन,अरुण लोचण, दिव्यरूप, वरद वाणीका अनुभव करते हैं, एवं हृदय हारि कथोपकथन भी मेरे साथ करते हैं ॥४४१॥ दर्शनीय अवयव उदार उल्लासकर हास्ययुक्त मधुर वचनों से अपहृत मनप्राण होकर भक्तगण भक्ति सेवानन्द को प्राप्त करते हैं, वे सव मुक्ति की अभिलाषी न होनेपर भी मैं उनसव को मुक्त करता हूं ॥४४२॥ चतुर्थस्कन्ध के ध्रुवचरितमें कथित है-ध्रुवमुक्तलिङ्ग होकर पद्मपलाश लोचन श्रीहरि के चरणारविन्दों में अजस्रभक्तिरसाप्लुत हो गये थे, पिघला हुआ हृदय एवं पुलकायित अङ्गसे इस जगत को भूलगये थे ॥४४३॥

४४४।

"स वै मनः कृष्ण-पदारविन्दयो,र्वचांसि वैकुण्ठ-गुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु,श्रुतिश्चकाराच्युत-सत्कथोदये ।।

४४५।

मुकुन्द-लिङ्गालय-दर्शने दृशौ, तद्भृत्यगात्रस्परशेऽङ्गसङ्गमम्
घ्राणञ्च तत्पाद-सरोजसौरभे,श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ।।

४४६।

पादौ हरेः क्षेत्र-पदानुसर्पणे, शिरो हृषीकेष-पदाभिवन्दने ।
कामञ्च दास्ये न तु कामकाम्यया,यथोत्तमःश्लोकजनाश्रया रतिः

४४७।

"गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु,द्विपोत्तमस्यन्दन-वाजि-पत्तिषु ।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिषु,अनन्त-कोशेष्वकरोदसन्मतिम् ।।"

आस्तां तावदेतेषां सर्वत्रानासक्तिः, अमीषामाचरणं दृष्ट्वा तद्राज्यनिवासिनां ग्राम्यलोकानामपि सर्वत्रानासक्तिः-(भाः९-४-२४)

इन भक्तसाधुओं की इन्द्रियां भी भगवत्कर्म परायण होती हैं। इस की महानुभावके आचरण द्वारा पुष्टकर रहेहैं। नवमस्कन्धके अम्बरीष चरितमें वर्णित है-प्रसिद्ध अम्बरीषमहाराज मनको श्रीकृष्ण पदारविन्द में वाणी को वैकुण्ठ गुणानुवर्णनमें हस्त श्रीहरिमन्दिर मार्जन प्रभृति कर्ममें श्रवण को अच्युत के चरित्र श्रवण में नियोग किए थे ।।४४४।। नयनद्वय को मुकुन्दके श्रीमन्दिर दर्शनमें, उनके भृत्यके गात्र स्पर्शमें अङ्गको, नासिका को श्रीहरिचरण की तुलसी सौरभ आस्वादन के लिए, रसना को तदीय प्रसादद्रव्य आस्वादनमें नियोग किए थे ।।४४५।। चरणद्वय को श्रीहरिधाम गमन में, मस्तक श्रीचरणों में प्रणाम करने के लिए, अभिलाष को दास्य कामनामें कामकी कामनामें नहीं, जिस से भगवज्जन के प्रति प्रीति हो, नियोग किए थे ।।४४६ गृह, पत्नी, पुत्रवधु, हस्तीरथ, अश्वसेना प्रभृति में अक्षय रत्न आभरण आयुध

४४८। “स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः।
श्रृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोक-चेष्टितम् ॥”

तथा च नलकूवर-मणिग्रीव-स्तुतौ—(भा: १०-१०-३८)

४४९। “वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां,
हस्तौ च कर्म्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे,
दृष्टिः सतां दरशनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥”

तथा च नन्दोद्धव-संवादे—(भा: १०-४७-६६)

४५०। “मनसो वृत्तयो न स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वचोभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥”

आस्तां तावदेतेषामन्यत्रानास्था, स्वदेहेऽनास्था। तत्राह एकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-१३-३६)

४५१। “देहञ्च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा,
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम्।

प्रभृति में एवं अनन्तकोश में असत् बुद्धि रखते थे ॥४४७। महाराज की सर्वत्र भौतिक विषयोंमें अनासक्ति तो रही किन्तु इनके आचरण को देखकर उनके राज्यमें रहने वाले ग्राम्यलोकों की भी सर्वत्र अनासक्ति रही। उत्तमश्लोक श्रीहरिके चरित श्रवण कीर्त्तनरत प्रजावर्ग ने अमरप्रिय स्वर्गलोक की कामना भी नहीं की ॥४४८॥ नलकूवर मणिग्रीव की स्तुति में वर्णित है-हम दोनों की वाणी आपक गुणानुकथनमें, श्रवण, कथा श्रवणमें, हस्त कर्मभें, मन श्रीहरि चरण स्मरणमें, मस्तक, श्रीहरिके निवासरूप जगत्के प्रणाममें, नयन भगवत, भागवतके तनु दर्शनमें नियुक्त हो ॥४४९॥ नन्दोद्धव संवादमें उक्तहै-हमारी मनोवृत्ति श्रीकृष्णपादाम्बुजके आश्रित हो, वाणी श्रीहरिनाम ग्रहणमें, शर.र श्रीहरिके प्रणामादि कृत्यमें रत हो ॥४५०। भक्तसाधुकी अन्य आसक्ति तो होती ही नहीं निजदेहमें भी अनास्था

दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं,

वासो यथा परिकृतं मदिरा-मदान्धः ॥"

इन्द्रियादीनामन्वय-व्यतिरेकेणोत्कर्षापकर्षामाह प्रथमे नारद-व्यास-सवादे—(१-५-११)

४५२। "तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो,

यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।

नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि य,-

च्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३-६-३०)

४५३। एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां,सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।

श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां,कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥

तथा च दशमे---(१०-८०-३,४)

होती है, एकादशस्कन्ध के भगवदुद्धव संवाद इस प्रकार है-(११-१३-२६) निज नश्वरदेह संम्बन्धमें भक्तजन विशेषहैं आसक्ति नहीं रखतेहैं, आसनसे उठकर, वहाँपर ही रहते, अथवा वाहर जाते,लौहकर आते, इनसव क्रियाओं में शरीरका अनुसन्धान नहीं रखते, कारण जिसदेह के द्वारा अपना स्वरूप की उपलब्धि हुई है, उसमें आसक्त होते हैं, मदिरा सेवन से भक्तजन जिस प्रकार निज परिधेय वसन है अथवा नहीं अनुसन्धान नहीं रखते, इसप्रकार जानना होगा ।।४५१।। इन्द्रिय प्रभृति के उत्कर्ष अपकर्ष का वर्णन प्रथमस्कन्धस्थ व्यास नारदद्वारा कहते हैं-पदचातुर्यंविना भी भगवद् यशः प्रधान वाणी, अतिशय पवित्र है, कारण उक्त वाणी जगज्जनों के पापराशिको विनष्ट करती है, उससे प्राकृत शब्दका समावेश भी क्यों न हो ? कारण परमप्रिय अनन्तके विमल यशोराशि अङ्कित नामसमूह के श्रवण कीर्त्तन, ग्रहण पुनःपुनः साधुभक्तगण करते रहते हैं ।।४५२।। तृतीयस्कन्ध के विदुर मैत्रेय संवादमें वर्णित है-उत्तमश्लोक शिरोमणि श्रीहरिके गुणवर्णन

४५४।

सा वाग्यथा तस्य गुणान् गृणीते,करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।

स्मरेद्वसन्तं स्थिर-जङ्गमेषु,शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥

४५५।

शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्,तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः

अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां,पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥

तथा च चतुर्थे नारद-प्राचीनवर्हिः संवादे—(४-२९-५०)

४५६। "तत् कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया।

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ॥"

व्यतिरेकेणापकर्षं निरूपयति प्रथमे—(१-५-१०)

४५७। **न यद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो,जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्**

तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा,न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः

ही मानव का वाणी प्राप्तकरने का एकान्त फललाभ है, श्रवणप्राप्ति का भी एकान्त लाभ महत्जन वर्णित श्रीहरि कथासुधा श्रवण में रत होना ही है ॥४५३॥ दशम में वर्णित है-वाणी वही है, जिससे श्रीहरि के गुणवर्णन होता है, जिस हस्तसे श्रीहरिके परिचर्यारूप कर्म सम्पादन होता है, वह ही हस्त कहलाता है, स्थावर जङ्गममें सर्वत्र अवस्थित श्रीहरि के स्मरण से ही मनकी सार्थकता है, और उनकी पावन कथा श्रवणरत को ही कर्ण कहाजाता है ॥४५४॥ श्रीहरिके स्थावर जङ्गम रूपशरीर, एवं श्रीविप्र को यदि मस्तक नमस्कार करता है, तव वह सार्थक होता है, जो नेत्र उनकी सन्दर्शन करे वह ही नेत्रहै, भक्तजन सङ्गसे ही शरीर की सार्थकता होती है, एवं पादोदक के नित्यग्रहण से जो शरीर पवित्र होताहै, उसकी ही शरीर कहाजाता है ॥४५५॥ चतुर्थस्कन्ध के प्राचीन वर्हिः संवाद में कथित है-जिस कर्मसे श्रीहरि का सन्तोष होता उसको कर्म कहाजाता है, जिस विद्यासे श्रीहरि चरणों में मति होती है, उसका नाम ही विद्या है, कारण श्रीहरि ही देह धारियों के आत्मा प्रिय एवं स्वयं सवके जनक हैं ॥४५६॥

तथा च दशमे—(१०-३८-१२)

४५८। "यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै,
वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्,
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः॥"

तथैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-१ -१९,२०)

४५९। गां दुग्धदोहामसतीञ्च भार्यां, देहं पराधीनमसत्प्रजाञ्च।
वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं, हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी॥

४६०। यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म,
स्थित्युद्भव-प्राणनिरोधमस्य।
लीलावतारेप्सित-जन्म वा स्याद्,
वन्ध्यां गिरं तां विभृयान्न धीरः॥

व्यतिरेक से अपकर्ष का निरूपण करतेहैं, जिन की वाणी जगत्पावन परमाश्चर्य श्रीहरि यशका ग्रहण नहीं करती है, उसको काकतीर्थ कहाजाता है, उसमें मानस सरोवरमें विचरणरत हंसगण रत नहीं होते हैं॥४५७। दशममें वर्णित है, सर्वथा अहङ्कार रहित आत्माराम की लीलाभी क्यों होतीहै ? उत्तर है, परानुग्रहके लिए ही है। उनको विशदरूप से कहते हैं, अखिल जगत् के अखिलपापों को विनष्ट करते हैं, एवं शोभन मङ्गल भी प्रदान करते हैं, इस प्रकार करुणादि गुण युक्त श्रीहरि के जन्म कर्मयुक्त वाक्य जगत् को जीवन प्रदान करता तो है ही साथ ही शोभित एवं पवित्रभी करता है, उससे रहित वाणी अपने में सुन्दर अलङ्कृत होनेपर भी वस्त्रादि से अलङ्कृत शवके समान होती है, यह मतसज्जन सम्मत है॥४५८। एकादशमें भगवदुद्धव संवाद में वर्णित है–हे भ्रात ! अप्रसूतगैया, असती भार्या, पराधीन देह, असत् सन्तति, सत्कर्म में न लगया हुआ धनको रखने से जिस प्रकार दुःखी जनको और भी दुःखी बनति हैं, उस प्रकार

तथा द्वादशे—(१२-१२-५०)

४६१। "न तद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो,
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंस-सेवितं,
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥"

तथा च द्वितीये सूत-शौनक-संवादे—(२-३-२०-२२)

४६२।

विले बतोरुक्रम-विक्रमान् ये, न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत, न चोपगायत्युरुगाय-गाथाः ॥

४६३। भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट, मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां, हरेर्लसत्काञ्चन-कङ्कणौ वा ॥

परम पावन भगवत् चरित हीन वाणी भी दुःखी को और भी दुःखित करती है ॥४५८॥ हे मैया ! जिस वाणीमें मेरा पावनकर्म, उत्पत्ति स्थिति लयात्मक चरित्र, लीलावतार के अभिलाषित जन्मकर्म का समावेश नहीं है, उस वन्ध्या वाणी को पोषण धीरव्यक्ति न करे ॥४६०॥ उस प्रकार द्वादशस्कन्धमें वर्णित है-जगत् पवित्र चित्तपद हरियश का कीर्त्तन जो वाणी नहीं करती है, वह उच्छिष्ट गर्त्त काकतीर्थ है, हंस के विचरण का स्थान नहीं है, जहाँपर अच्युत के चरित्र कीर्त्तित होता है, वहाँपर ही अमल साधुभक्तगण निवास करते हैं ॥४६१॥ द्वितीयस्कन्ध के सुतशौनक सवाद में वर्णित है-जो जन उरुक्रम के परम पावन चरितको कर्णद्वारा नहीं सुनता है, उसके कर्ण गड्ढे के समान है, जिसकी जिह्वा उरुगाय श्रीहरि की कथाका कीर्त्तन नहीं करती वह मेढ़क की जीभ के समान होती है ॥४६२॥ किरीट मुकुट शोभित मस्तकद्वारा मुकुन्दका नमन नहीं होता है, तो वह उत्तमाङ्ग होनेपर भी भार ही होता है । काञ्चन कङ्कण शोभित हस्तद्वारा यदि श्रीहरि की सेवा नहीं की जाती है, वह शवके हस्तके समान होता

४६४।
बर्हायिते ते नयने नराणां, लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ,क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥"
तथा हि (भा: २-३-१८,२३,२४)
४६५। "तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।
न स्वादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपाशवोऽपरे ॥"

४६६।
जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं,न जातु मर्त्योऽभिलषेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः,श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥
४६७। तदश्मसारं हृदयं बतेदं, यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो,नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥
ननु लक्ष्मीस्तावद्भगवदङ्गरूपानुलक्षणमेव पादपद्ममनुचरति । तत्रान्येषामनुसन्धाने तया वैशसं स्यात् ? मैवम्, तत्राह चतुर्थे पृथुचरिते—(४-२०-२१)
४६८।
अथाभजे त्वाखिलपूरुषोत्तमं, गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलि,र्न स्यात् कृत-त्वच्चरणैकतानयोः ॥
है।।४६३।। श्रीविष्णुविग्रह का दर्शन जिस नेत्र ने नहीं किया है, तो वह मयूर की पुच्छमें स्थित चन्द्रिका की भाँति व्यर्थ होता है, जो चरण श्रीहरि तीर्थं में गमन नहीं करता वह चरण वृक्षके समान होता है।।४६४।। वृक्षगण क्या जीवित नहीं रहते है, धूँकनी क्या श्वास नहीं लेती है, ग्राम्यपशु क्या भोजन पानादि नहीं करता है ? मनुष्य और पशुमें अन्तर ही क्या है ? (४६५) भगवद् भक्तकी चरणरेणु की अभिलाष जो मानव नहीं करता है, वह जीवित शव कहलाता है । और जो मानव श्रीभगवद्चरण तुलसी का घ्राण नासा से ग्रहण नहीं करता है, वह श्वासलेता हुआ भी शव कहलाता है।।४६६।। उसहृदय

यदि वा कलिः स्यात्तथापि न क्षतिः—(भाः ४-२०-२८)

४६९।

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं,स्यादेव यत् कर्मणि नः समीहितम्

करोषि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः,स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया

ननु तस्याम् रुष्टायां सुखादिकं कथं स्यात् ? दुःखञ्च स्यान् ? नैवम्, तेषां सुखे नापेक्षा, दुःखे नोपेक्षा। तत्राह तृतीये विदुरमैत्रेय संवादे- ३-१३-४९)

४७०। **"तस्मिन् प्रसन्ने सकलाशिषां पतौ,**

किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः।

अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः,

स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥"

को पाषाणसार कहाजाता है, श्रीहरिके नाम ग्रहणसे भी जो पिघलता नहीं नेत्रमें अश्रु एवं शरीर में पुलक नहीं होता है।।४६७।। लक्ष्मीके समान लालसान्वित होकर गुणालय पुरुषोत्तम का मैं भजन करूँगा, श्रीचरण सेवानिष्ठ हम दोनों में एकस्वामी की सेवा में स्पर्धावश कलह उपस्थित तो नहीं होगा ? (४६८) यदि कलह उपस्थित ही होजाता है, तथापि कुछ हानी नहीं होगी। हे जगदीश ! जगज्जननी के साथ एक सेवा क्रम को लेकर यदि कलह भी उपस्थित हो जाता तथापि भयका कारण नहीं कारण आप दीनवत्सल हैं, आप थोड़ी सेवा को भी वहुमानते हैं, निज स्वरूपानन्द में अवस्थित आपकी लक्ष्मी की अपेक्षा ही क्या है ? (४६९) लक्ष्मीरुष्ट होनेपर सुखादि की प्राप्ति कैसे होगी ? दुःख भी होगा नहीं। भक्तों की अपेक्षा नहीं है, दुःख की उपेक्षा भी नहीं हैं। इसका विवरण तृतीय स्कन्धस्थ विदुरमैत्रेय संवाद से सकल आशिष के पति प्रसन्न होनेपर दुर्लभ क्या रहेगा, अति वस्तुकी आवश्यकता ही क्याहै ? एकान्त भक्तियोगसे सर्वत्र अवस्थित श्रीहरिका भजन करने पर श्रीहरि स्वयं ही सर्वश्रेष्ठगति प्रदान करते हैं।।४७०।।

तथा च सनकादि स्तुतौ—(भा: ३-१५-४८)

४७१। "नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं,
किम्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः,
कीर्त्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥"

तथा च कर्दम-स्तुतौ—(भा: ३-२१-१४)

४७२।
ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्,पादारविन्दं भवसिन्धु-पोतम् ।
उपासते कामलवाय तेषां, रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥

तथा च कर्दम-देवहूति-संवादे—(भा: ३-२३-४२)

४७३। "किं दुरापादनन्तेषां पुंसामुद्दाम-चेतसाम् ।
यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः"

तथा च कपिलदेवहूति-संवादे—(भा: ३-२५-३४)

४७४।
नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचि,न्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य, सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥

सनकादि स्तुतिमें कथित हैं-जो जन श्रीचरणों की शरण ग्रहण किया है, एवं परम पावन श्रीहरिकथा में जिनकी रसना रञ्जित होगई है, वह मुक्ति प्रभृति प्रसाद को वहुमान प्रदान नहीं करताहै, कालकवलित साम्राज्य प्रभृति की कामना वह कैसे करेगा ? (४७१) कर्दम स्तुतिमें उक्त है-हे प्रभो ! जो जन आपकी मायासे हतवुद्धि होगया है, वह नारकीय शरीर में भी जो विषय सुलभ हैं, उसकी प्राप्ति के लिए ही भवसिन्धु पोतरूप श्रीहरि चरणका भजन करता है, प्रभु भी उसकी कामना के अनुरूपफल देते हैं ।।४७२।। कर्दम देवहूति संवादमें कथित है-उनसव व्यक्तियोंके लिए दुष्प्राप्य क्याहै, जिन्हीं ने समस्त आसक्ति रोधक श्रीहरि चरणका आश्रय लियाहै ।।४७३।। कपिलदेवहूति संवाद

तथा च चतुर्थे ध्रुवचरिते—(४-६-६,१०)

४७५। "नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते,
ये त्वां भवाप्यय-विमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य,-
मिच्छन्ति यत् स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥

४७६। या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म,
ध्यानाद् भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत,
किम्वन्तकासि-लुलितात् पततां विमानात् ॥"

तथा भगवत्प्रचेतोगण-संवादे—(भा: ४-३०-३०,३२)

४७७। "असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पतेः ।
प्रसन्नो भगवान् येषामपवर्ग-गुरुर्गतिः ॥"

४७८। "पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ।
त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात् किं किं वृणीमहि ॥"

में वर्णित है—मेरे चरणारविन्दों की सेवारत व्यक्तिगण मेरी इच्छाके साथ अपनी इच्छा को मिलाकर चलते हैं, और सायुज्य मुक्ति कोभी नहीं चाहते हैं, परस्पर भक्तजनों में आसक्त होकर श्रीहरि कथा अवलम्बन से जीवन को धन्यवनाते हैं ॥४७४॥ चतुर्थ के ध्रुवचरितमें उक्त है—यह वात् सुनिश्चित हैं कि जन्ममरण प्रवाहसे मुक्तकरने वाले श्रीहरिचरणों का भजन हरिमाया से मुग्धहोकर कुछलोक नहीं करते है, कल्पतरु का भजनकर नारकीय विषय भोगकी प्रार्थना करते हैं ॥४७५॥ श्रीहरिचरण ध्यान, कथा श्रवणसे जो आनन्दलाभ होता है, वह आनन्द ब्रह्मानन्द, मुक्तिमें भी नहीं है, कालके कवलसे ग्रस्त साम्राज्यादि सुखभोग की वात तो दूर है ॥४७६॥ इस प्रकार भगवत प्रचेतागण के संवाद द्वारा कहते हैं—हे जगत् पति ! वह वर हमारे

तथा च दशमे भगवदक्रूर-संवादे—(१०-४८-१)

४७९। "दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्वात् कुमनीष्यसौ ॥"

तथा च मुचुकुन्द-स्तुतौ—(भा: १०-५१-५५)

४८०। "न कामयेऽन्य तव पादसेवना,-
दकिञ्चन-प्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे,
वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥"

तथा च चतुर्थ्ये पृथुचरिते—(४-२०-२३-२५,३१)

४८१। "वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुधः,
कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां,
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥

अभीप्सित है, जिससे अपवर्गगुरु गति श्रीभगवान् प्रसन्न हो ॥४७७॥ अनायास पारिजात कुसुमप्राप्त होनेपर सारङ्ग अन्य पुष्पका सेवन नहीं करता है, साक्षात् श्रीहरि चरणसान्निध्य प्राप्ति होनेके पश्चात् विवेकीजन किसकी कामना करेगा ? (४७८) दशदस्कन्धके भगवदक्रुर संवादमें वर्णित है-सर्वेश्वरेश्वर दुराराध्य विष्णु की आराधना करने के वाद भी जोजन नश्वर मनोग्राह्य विषय की कामना करता है,वह ही कुमनीषी है ॥४७९॥ मुचुकुन्दस्तुति इस प्रकार है-अकिञ्चनगण के एकमात्र वाञ्छनीय श्रीहरिचरण सेवन को छोड़कर अपर कुछभी वर नहीं चाहता हूँ। हे हरे ! अपवर्ग प्रद आपकी आराधना करने के पश्चात् कौन आस्तिक व्यक्ति आत्मवन्धन की कामना करेगा ? (४८०) चतुर्थके पृथुचरित में-हे ईश ! हे कैवल्यपते ! हे विभो ! वरदेश्वर से आपसे क्यों सुधीजन वर प्रार्थना करेगा ? नारकी शरीर में भी गुणविक्रियासे उत्पन्न जोविषय स्वाभाविक उपलब्ध होता है,

४८२।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचि,न्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो,विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥

४८३।

स उत्तमःश्लोकमहन्मुखच्युतो,भवत्पदाम्भोज-सुधाकणानिलः।
स्मृतिं पुनर्विस्मृत-तत्त्ववर्त्मनां,कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः॥

४८४। "त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो,
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं,
तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥"

पृथुं प्रति भगवदुक्तौ—(भा: ४-२०-४)

४८५। "पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ।
श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्ध-सेवया ॥"

उसको मैं नहीं चाहता हूँ ।।४८१।। जहाँपर आपके चरणाम्बुजासव नहीं हैं, मैं उस मुक्ति सुखका भी नहीं चाहता हूँ । महत्तम साधुभक्त हृदय विलगित होकर मुखद्वारा निर्गत आपकी चरित कथा श्रवण के लिए मुझे अयुतकर्ण प्रदानरूप वर दान दें ।।४८२।। उत्तम श्लोक के साधुभक्तके मुखसे निर्गलित आपके चरणारविन्द की चरित कथासुधा के आभास मात्रसे विस्मृततत्त्वज्ञ कुयोगी को तत्त्वस्मृति प्रदान करते हैं इस प्रकार चरणसुधाचरित श्रवण को छोड़कर अन्य वरसे कुछभी प्रयोजन नहीं हैं। ४८३।। हे ईश ! आपकी मायासे मानव खण्डित बुद्धि है, अज्ञजन परमश्रेय परमसत्य आपसे भी अन्यवस्तु की कामना करता है, अतएव पिता निजबालकके लिए जिस प्रकार हित आचरण करते हैं, आपभी उस प्रकार हमारे कल्याण विधान करें ।।४८४।। पृथुके प्रति भगवान् की उक्ति—आपके समान पुरुष भी यदि देवमायासे मुग्ध हो जाता हैं, तब तो सुदीर्घकाल तक वृद्धसेवा का फल केवल

पृथुचरिते—(भाः ४-२३-२८)

४८६। "स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि ।
लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥"

तथा पञ्चमे वर्षोपाख्याने--(५-१९-२३)

४८७।

न यत्र वैकुण्ठ-कथासुधापगा,न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेश-मखा महोत्सवाः,सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्

षष्ठे वृत्रस्तुतौ—(६-११-२५)

४८८।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं,न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा,समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-१४-१४)

४८ ।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं,न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा,मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥

श्रममें ही परिणत होगा ॥४८५॥ पृथुचरित में-आत्मद्रोही वह व्यक्ति वञ्चित है, जो सुमहान् क्लेशसे पृथिवी में अपवर्गद मनुष्य शरीर को प्राप्त करने के पश्चात् त्रिषयों में आसक्त होता है ॥४८६॥ पञ्चमस्कन्ध के वर्षोपाख्यान में-जहाँपर वैकुण्ठ कथासुधासरित् नहीं हैं, भगवतभक्त साधुगण जहाँ नहीं है, जहाँ भगवत् अर्चना नहीं है, वह लोक इन्द्रलोक ही क्यों न हो, उसकी कामना न करें।।४८७।। षष्ठस्कन्ध के वृत्रचरित में-स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, सार्वभौम, पृथिवी के आधिपत्य, योगसिद्धि, सायुज्यमुक्ति भी, हे समञ्जस ! तुम्हें छोड़कर नहों चाहता हूँ ॥४८८॥ एकादशस्कन्ध के भगवदुद्धव संवाद में-ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, सार्वभौम रसाधिपत्य योगसिद्धि, मुक्ति को भी अर्पितात्माजन मुझको छोड़कर नहीं चाहता है ॥४८९॥

४९०। "नान्यथा-तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ।
यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥

४९१। आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥

४९२। अहन्त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वञ्च स्वाम्यनपाश्रयः ।
नान्यथेहावयोरर्थो राज-सेवकयोरिव ॥

४९३। यदि दास्यसि मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥"

यद्यप्यपराधवशाल्लोभाद् भगवद् भक्तानां पारमेष्ठ्यादिष्विच्छा भवति, तर्हि भगवान् ददाति न वेति ? तत्राह षष्ठे वृत्रस्तुतौ-६-११-१२

४९४।
पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां,याः सम्पदो दिवि भूमौ-रसायाम्
न राति यद्द्वेष उद्वेगआधि,र्मदः कलिर्व्यसनं सम्प्रयासः ॥

प्रह्लाद चरित में-हे अखिल गुरो ! परम करुण आपमें अन्यथा नहीं हो सकती है, जो लोक आपसे आशीर्वाद की कामना करता है, वह भृत्य नहीं हैं, निश्चित वह वणिक है ॥४९०। जो भृत्य स्वामीसे आशीर्वाद चाहता है, वह भृत्य नहीं है, जो स्वामी स्वामित्व रक्षाके लिए भृत्य को आशिष प्रदान करता है, वह स्वामी नहीं कहलाता है ॥४९१॥ मैं अकामी भक्त हूँ, और आपभी निरभिसन्धि स्वामी हैं हम दोनों में राजसेवक की भाँति सम्बन्ध नहीं हैं ॥४९२॥ हे वरदश्रेष्ठ प्रभो ! यदि मुझे वर ही देना है तो वह वर प्रदान करें, जिस हृदय में वर मांगने की कामना ही नहीं ॥४९३॥ यदि अपराध तथा लोभ से भक्तों की ब्रह्मपदादि की इच्छा होती है, तब उसको भगवान् देते हैं अथवा नहीं ? वृत्रस्तुति द्वारा उत्तर देतेहैं—स्वर्ग भूमण्डल की सम्पत्ति एकान्त भक्तियुक्त निजजन को श्रीहरि प्रदान नहीं करते हैं, कारण

यदि भगवानाशिषो न ददाति, तर्हि वासना-सत्त्वे कथं कुशलं स्यात् ? अतएवाह दशमे श्रुत्यध्याये—(१०-८७-३९)

४९५। "यदि न समुद्धरन्ति मुनयो हृदि काम जटा,
दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृत-कण्ठमणिः।
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव,-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढ़पदाद्भवतः॥"

नैवम्, भक्तानां वासनोच्छेदमपि भगवान् कुरुते। तत्राह षष्ठे वृत्रस्योक्तौ—(६-११-२३)

४९६। त्रैवर्गिकायास-विघातमस्मत्,पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो,यो दुर्लभोऽकिञ्चन-गोचरोऽन्यैः॥

तथा च पञ्चमे वर्षस्वरूप वर्णने—(५-१९-२६)

४९७।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां,नैवार्थदो यत् पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता,मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्

उससे द्वेष, उद्वेग, आधि, मद कलह आसक्ति, एवं विपुल प्रचेष्टा। होती है॥४९४॥ यदि भगवान् आशीर्वाद नहीं देते हैं तो वासना का क्षय नहीं होगा, वासना रहनेसे कुशल कैसे होगा ? इसको दशम के श्रुत्यध्याय से कहते हैं—हे भगवत् ! यदि मुनिगण हृदय से स्त्रसुख वासना का त्याग नहीं करतेहैं तो हृदयमें नित्य विद्यमान, श्रीहरि को विस्मृत कण्ठमणि के समान ही जान नहीं पाते हैं, प्राणेन्द्रिय परायण मुनिके लिए इस जगत् एवं पर जगत् दोनों स्थानों में ही क्लेश है, कारण भगवत् तत्त्ववोधके लिए उनसवके मन सचेष्ट नहीं हुआ॥४ ५॥ ऐसा नहीं, भक्तों की वासना का उच्छेद भी भगवान् करते हैं, उसका प्रदर्शन वृत्रकी उक्तिसे करते हैं-हे इन्द्र ! हमारे प्रभु श्री रि, धर्म अर्थ कामके लिय प्रयास को नष्ट करदेते हैं, इसंसे ही भगवत् प्रसाद अनुमेय होता है, जो अकिञ्चन के लिए सुलभ है, एवं अपर के लिए सुदुर्लभ

तानेव निन्दति; तत्राह दशमे भगवद्रुक्मिणी-संवादे-१०-६०-५२,५३

४९८। "यो मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया॥

४९९। मां प्राप्य मानिन्यपवर्ग-सम्पदं,
वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम्।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां,
मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः॥"

तथा षष्ठे इन्द्रस्य गुर्वनादरे आत्मनिन्दायाम्—(६-७-१२)

५००। "को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टप-पतेरपि।
ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः॥"

तथा च दशमे द्रौपदी-रुक्मिण्यादि-संवादे—(१०-८३-४१,४२)

५०१। "न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भोज्यमप्युत।
वैराज्यं पारमेष्ठ्यञ्च आनन्त्यं वा हरेः पदम्॥

है ॥४९६॥ पञ्चमस्कन्धके वर्ष वर्णन में–प्रार्थी मनुष्य की प्रार्थना पूर्त्ति सत्यवस्तुसे श्रीहरिही करतेहैं, ऐसी वस्तु प्रदान नहीं करते हैं, जिससे पुनः पुनः प्रार्थी होना पड़े, भजनकारी व्यक्तिके हृदय विवर में भक्त न चाहने परभी श्रीहरि स्वीयपद पल्लव स्थापन करदेते हैं ॥४९७॥ जो जन मुझको दाम्पत्य, तप, व्रतादि द्वारा भजन करताहै, वह सकामी है, मेरी मायासे मोहित है। मैं तो भक्ति प्रदाता हूँ ॥४९८॥ हे मानिनि! अपवर्ग सम्पद्रूप मुझको प्राप्तकर जो जन प्राकृत विषय एवं सम्बन्ध को चाहता है वह मन्दभाग्य है, कारण वहसव विषय तो नरकमें भी नारकी को उत्तम रूपसे मिलता है ॥४९९॥ षष्ठस्कन्ध में इन्द्र को गुरुको अनादर करने के कारण आत्मनिन्दा दिखाते हैं—पण्डित होकर इन्द्र! सम्पत्ति की कामना कौन करेगा। जिस से मैं आज आसुरिक भावको पाया है ॥५००॥ दशम के द्रौपदी रुक्मिणी प्रभृति के संवादमें वर्णित है-हे साध्वि! हमसव साम्राज्य, स्वाराज्य भोज्य

५०२। कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजःश्रियः ।

कुचकुङ्कुम-गन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे ब्रह्मस्तुतौ—(३-९-७)

५०३। "दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्,

सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।

कुर्वन्ति कामसुख-लेशलवाय दीना,

लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥"

नन्वास्तां तावत् सुखापेक्षा, दुःखानुपेक्षा, भगवता सालोक्यादिकं दीयमानमपि न गृह्णन्ति । तत्राह कपिलदेवहूति-संवादे-(भाः३-२९-१३)

५०४। "सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥"

तथा च नवमे अम्बरीष-चरिते—(९-४-६७)

५०५। "मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि-चतुष्टयम् ।

नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम् ॥"

वैराग्य, पारमेष्ठ्य, एवं मुक्ति नहीं चाहती हूँ ॥५०१॥ केवल गदाधर श्रीहरि के कुचकुङ्कुम गन्धाढ्य श्रीमत्चरण रजको मस्तक में धारण करने की कामना करती हूँ ॥५०२॥ तृतीय स्कन्धस्थ विदुरमैत्रेय संवाद की ब्रह्मस्तुति में वर्णित है—भाग्यसे ही वे लोक आपके प्रसङ्गसे विमुख है, वह प्रसङ्ग सर्व अशुभका विनाश करता है, जो लोक उस से विमुख है वे कामसुख लबलेश के लिए लोभ से अभिभूत होकर निरन्तर दीनता को प्राप्त करते हैं ॥५०३॥ सुखकी अपेक्षा, दुःखकी उपेक्षा भक्तसाधु जीवनमें ही, किन्तु भगवान सालोक्यादि प्रदानकरने परभी भक्तगण ग्रहण नहीं करते हैं, कपिलदेवहूति संवाद से दर्शाते हैं भक्तगण मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य समान लोकमें वास, समान ऐश्वर्य, सामीप्य, समानरूप एकत्व मुक्तिको देने परभी ग्रहण नहीं करते हैं ॥५०४॥ अम्बरीष चरित में-भक्तगण मेरी सेवासे स्वाभाविक

तथा च षष्ठे देवान् प्रति भगवदुक्तौ—(६-९-४७)

५०६। "किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥"

तथा च दशमेऽक्रूरस्योक्तौ—(१०-३९-२)

५०७। "किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन्नाभिवाञ्छन्ति किञ्चन ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११-२०-३४)

५०८। "न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥"

एतदेव महापुरुषाचरणेन प्रमाणयति पञ्चमे जड़भरत महिमोपवर्णने-(५-१४-४३,४४)

५०९। "यो दुस्त्यजान् दार-सुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।
जहौ युवैव मलवदुत्तमःश्लोक-लालसः ॥

प्राप्त सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य की इच्छा नहीं करते हैं, काल केवलित होने वाली वस्तु साम्राज्यादि की इच्छा वे क्यों करेंगे? भक्तगण सेव्यकी सेवा करके ही परिपूर्ण होतेहैं ॥५०५॥ षष्ठमें देवताओं के प्रति भगवदुक्ति-हे विबुधश्रेष्ठागण ! मैं सन्तुष्ट होनेपर दुष्प्राप्य क्या रहजाता है ? तथापि एकान्तमति भक्तगण तत्त्ववित् होते हैं, अतः वे सब मेरेसे कुछभी नहीं चाहते हैं ॥५०६॥ दशमके अक्रूरकी उक्तिमें-श्रीनिकेतन भगवान् प्रसन्न होनेपर क्या अलभ्य रहता है ? तथापि हे राजन् ! भगवत् पर व्यक्तिगण उनसे कुछभी नहीं चाहते हैं ॥५०७॥ एकादश के उद्धव संवाद में-मेरे एकान्ती साधुभक्तगण मैं देनेपर भी अपुनर्भव, जन्ममरण प्रवाह शून्य, कैवल, सायुज्यमुक्ति की वाञ्छा भी नहीं करते हैं ॥५०८॥ यह महापुरुषके आचरण द्वारा प्रमाणित करने के लिए पञ्चमस्थ जड़भरत महिमा वर्णन क्रमसे कहते हैं-भरत जी उत्तमः श्लोक श्रीकृष्ण पदारविन्द प्राप्ति की लालसा से युवावस्था

५१०। यो दुस्त्यजान् क्षिति-सुत-स्वजनार्थदारान्,
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्,-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥"

नन्वास्तां तावत् पारमेष्ठ्यादि--कैवल्यसुखोपेक्षा, दुःखानुपेक्षा नरकाद्यनुपेक्षा च । तत्राह तृतीये सनकादि स्तुतौ-(३-१५-४९)

५११। "कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ता,-
च्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसीवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः,
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥

में ही दुस्त्यज पत्नी, पुत्रसन्तति, सुहृद, हृदय लोभनीय राज्यको भी मलवत्त्याग किएथे, अर्थात् मलत्याग करके उसत्याग से अपने को गर्वित जगतपूज्य वनाने का अभिमान् उसके मूल्यसे प्राप्त नहीं किये, न तो त्यागको मूल्यसे जनताके निकटसे कर ग्रहण ही कियेथे ॥५०९॥ दुस्त्यज पृथिवी के आधिपत्य, उत्तम पुत्रसन्तति, स्वजन, अर्थ सम्पत्ति एकमात्र सत्त्व सम्पत्ति धर्मपत्नी, देवगण की चिरवाञ्छित लक्ष्मी सम्पत्ति को भी राजाने नहीं चाहा, श्रीकृष्ण पदारविन्द सेवानुरक्त मानस महत् साधुगणके निकट अभव कैवल्यमुक्ति अर्थसार शून्य फल्गु पदार्थ है ॥५१०॥ पारमेष्ठ्यादि से लेकर समस्त लोभनीय की उपेक्षा भक्तगण करते हैं, ब्रह्मानन्द कैवल्य सुखकी उपेक्षा भी करते हैं, केवल दुःखसमूह की उपेक्षा, एवं नरक प्रभृति दुःख की उपेक्षा, भक्तगण नहीं करते हैं, तृतीय स्कन्धोक्त सनकादि स्तुति इस प्रकार है-निज आचरित पापात्मक कभी चरण के फलस्वरूप यथेष्ट जन्म नरकसमूह में हो, इससे कोई दुःख नहीं है, किन्तु चित्त यदि मधुलोलुप भ्रमरके समान तुम्हारे चरणकमलोंमें रतहोताहै तो, हमारी वाणी यदि तुलसी के समान यदि तुम्हारे चरणकमल की शोभाको वढ़ानेके लिए रत हो

परञ्च विपदोऽपि प्रार्थयन्ति। तत्राह प्रथमे कुन्तीस्तुतौ-(१-८-२५,२६)

५१२। "विपदः सन्तु ताः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भव-दर्शनम् ॥

५१३। जन्मैश्वर्य-श्रुत श्रीभिरेधमानमदः पुमान्।
न चार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चन-गोचरम् ॥"

अतो विपद एव भगवद्भजनानुकूलाः, तत्राहाष्टमे वलि-निग्रहे ब्रह्माणं प्रति भगवदुक्तौ—(८-२२-२४)

५१४। "ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं माञ्चावमन्यते ॥"

ननु तर्हि अम्बरीषादीनां राज्ञां कथं भगवद्भजनम् ? तत्राह-(भाः ८-२२-२६,२७)

५१५। "जन्म-कर्म-वयोरूप-विद्यैश्वर्य-धनादिभिः।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥

एवं यदि तुम्हारे विमलगुणगण के द्वारा हमारे कर्णरन्ध्र पूर्ण होता है तो ॥५११॥ परन्तु भक्तगण तो विपदकी ही कामना करते हैं, प्रथम स्कन्ध की कुन्ती स्तुतिमें–हे जगद्गुरो! पहले जो कुछ भयङ्कर विपद होगये हैं, उससब विपद समूह निरन्तर हमारे हो, जिससे आपका दर्शन मिलता रहेगा, उससे पुनर्वार भव दर्शन नहीं होगा ॥५१२॥ जन्मऐश्वर्य श्रवण अध्ययन धनसम्पत्ति आदिके द्वारा निरन्तर अभिमान बढ़ता रहताहै, आपको जानने के लिए कहनेके लिए उक्त पुरुष समर्थ नहीं होता है, कारण आप अकिञ्चन भक्तके गोचर हैं, अर्थात् आप एवं आपकी शिक्षासे जिसका चित्त महत्त्वाक्रान्त हुआ है, वह आपको जानसकता एवं कहसकता है ॥५१३॥ अतएव विपद समूह ही भगवद् भजन के अनुकूल है, अष्टमस्कन्ध के वलिनिग्रह प्रसङ्ग में कथित है- हे ब्रह्मण! जिसके प्रति मैं अनुग्रह करता हूँ, उसके धनसम्पत्ति का अपहरण सर्व प्रथम करता हूँ। अर्थापहरण से अनुग्रह ही क्या होता

५१६। मानस्तम्भ-निमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः।
सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः॥"

तथा च दशमे—(१०-८८-८,६)

५१७। "यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य बान्धवा दुःखदुःखितम्॥

५१८। स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्॥"

तथा च यमालार्जुनोपाख्याने—(भाः १०।१०।१३-१८)

५१९। "असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते॥

५२०। यथा कण्टक-विद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम्।
जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्ध-कण्टकः॥

है ? अर्थका मद वहुतज्यादा होता है, और उस मदसे मेरा अभजन रूप अवमान मानव करता है ॥५१४॥ तव अम्बरीष प्रभृतियों का भगवद् भजन कैसे होता है ? जन्म, कर्म वयःरूप, विद्या, ऐश्वर्य, धन प्रभृति के द्वारा मानव का गर्व नहीं होता है, वहाँपर मेरा अनुग्रह समधिक है, जानना होगा ॥५१५॥ सव प्रकारसे सकलश्रय विनाशक जन्मकर्मादि से दम्भ है, भक्तगण उससे मुग्ध नहीं होते हैं ॥५१६॥ दशमस्कन्धमें उक्त है। जिसको मैं अनुग्रह करता हूँ शनै. शनैः उसके समस्त धन अर्थका अपहरण करता हूँ, उस अधन व्यक्तिको उसके वान्धवगण उसके दुःखसे दुःखित होकर उसको परित्याग करतेहैं॥५१७ उक्त व्यक्ति धनोपार्ज्जन के लिए जव निविण्ण हो जाता है, एवं सत्य साधुभक्त के साथ मित्रता करलेता है, तब ही उसपर मेरा अनुग्रह है, जानना होगा ॥५१८॥ यमलार्ज्जुन उपाख्यानमें कथित है-धनमदमत्त असत् व्यक्तिके लिए दारिद्र्य परम अञ्जन है, दरिद्र व्यक्ति अपने समान सुखी दुःखी सबलोक को देखता है ॥५१९॥ जिस प्रकार

५२१। दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥

५२२। नित्यं क्षुत्क्षाम-देहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्त्तते ॥

५२३। दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥

५२४। साधूनां समचित्तानां मुकुन्द-चरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥"

तथा—(भा: १०-२७-१६)

५२५। "मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥"

कण्टकविद्ध व्यक्ति अपना काँटे गड़नेका दुःख अनुभव कर दूसरे को इस प्रकार दुःख न हो वैसा प्रयन्त करता है, जिसका पैरमें कभी भी काँटा गड़ा ही नहीं है, इसका अनुभव दुःखका नहीं है, अतः दुसरे को इससे सतर्क नहीं करता है ॥५२०॥ दरिद्र अहङ्कार मुक्तहोता है, समस्त मदसे भी मुक्त होताहै, अदृष्ट वश जोकुछ कष्ट मिलता है, वह उसके लिए परम तपस्या हो जाती है ॥५२१॥ निरन्तर भूक्से पीड़ित अन्नहीन दारद्र की इन्द्रियां सुखतीं रहतीं हैं, और उससे हिंसाभी निवृत्त होजाती है ॥५२२॥ दरिद्रसे ही समदर्शि साधुगण मिलते रहते हैं, सावुगण उसकी विषय तृष्णाको नष्टकर देते हैं । और वह विशुद्ध हो जाता है ॥५२३॥ धनमदमत्त असदाश्रय असद्गुण द्वारा समदर्शि मुकुन्द चरणरत साधुगण उपेक्षित होनेपर साधुओं की कुछभी हानि नहीं होती है ॥५२४॥ मैं दण्डपाणि हूँ, ऐश्वर्य श्रीमदान्ध व्यक्तिगण मुझको देखकर भी नहीं देखपाते, जिसको अनुग्रह करने की इच्छा करता हूँ, उसको सम्पद्से रिक्त कर देता हूँ ॥५२५॥

तथा च भगवद्रुक्मिणी-संवादे—(भा: १०।६०।१४)

५२६। "निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चन-जनप्रियाः ।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥"

तथा च जरासन्धवद्धराज्ञामुक्तौ-(भा: १०।७३।६,१०,१२,१३)

५२७। "नैनं नाथानुसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥

५२८। राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यन्ते सम्पदोऽचलाः ॥"

३२९। वयं पुरा श्रीमद-नष्टदृष्टयो,
जिगीषयास्या इतरेतर-स्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो,
मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ॥

५३०।
त एव कृष्णाद्य गभीर-रंहसा,दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया,विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥

भगवद् रुक्मिणी संवाद में वर्णित है, हमसब निष्किञ्चन हैं और निरन्तर निष्किञ्चन जन ही हमारे प्रिय होते हैं, अतएव प्रायकर धनी व्यक्तिगण मेराभजन नहीं करतेहैं ।।५२६।। जरासन्धवद्ध राजाओं की स्तुति भी इस प्रकार है-हे नाथ ! हे मधुसूदन ! मगधराज को हमसब दोष नहीं देते हैं, राजाओं की राज्यच्यूति आपके अनुग्रह का ही कारण है ।।५२७।। राज्य ऐश्वर्य मदसे मत्त होकर राजन्यवर्ग श्रेयप्राप्ति नहीं होते हैं, तुम्हारी मायासे मुग्ध होकर अनित्य सम्पद को अचलमान लेते हैं ।।५२८।। पहले हमसब ऐश्वर्यमदमत्त होकर परस्पर के साथ जयेच्छु होकर लड़ते थे, अति निर्दय होकर प्रजानाश भी करते थे, मदोन्मत्त होकर मृत्युको भी नहीं सोचते थे ।।५२६।।

तथा च मुचुकुन्दोपाख्याने—(भा: १०।५१।४७-५१)

५३१।

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो,राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः

मर्त्यात्मबुद्धेः सुत-दार-कोशभू,ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥

५३२।

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्य-सन्निभे,निरूढ़मानो नरदेव इत्यहम् ।

वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-, र्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्म्मदः ॥

५३३।

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया, प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।

त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे,क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥

५३४। पुरा रथैर्हेम-परिष्कृतैश्चरन्, मतङ्गजैर्वा नरदेव-संज्ञितः

स एव कालेन दुरत्ययेन ते,कलेवरो विट्कृमिभस्म-संज्ञितः ॥

५३५।

निर्जित्य दिक्चक्रमभूत-विग्रहो, वरासनस्थः समराज-वन्दितः

गृहेषु मैथुन्य-सुखेषु योषितां, क्रीड़ामृगः पूरुष ईश नीयते ॥"

हे कृष्ण ! वे ही हमसब दुरन्तवीर्य कालसे ऐश्वर्य भ्रष्ट एवं दर्पशून्य होकर तुम्हारे चरणों का स्मरण करते हैं ॥५३०॥ मुचुकुन्द उपाख्यान में वर्णित है–हे अजित ! मेरा यह समय व्यर्थ गया, राजोचित ऐश्वर्य मदसे विभोर रहा। मर्त्य वस्तु में आत्मवुद्धि पुत्र पत्नी कोश राज्य प्रभृति में आसक्ति एवं दुरन्त चिन्तामें ही लिप्त रहा ॥५३१॥ इस कलेवरमें नरदेव अभिमान था, जो कि घड़ाके समान नश्वर है, हस्ती अश्व रथ, सैन्य प्रभृति के द्वारा मदोन्मत्त था ॥५३२॥ कर्त्तव्य की चिन्ता, प्रवृद्ध लोभ, विषयों के प्रति लालसा प्रभृति से विभोर रहा, सर्प जिस प्रकार मुस की पकड़ लेता है, वैसे मृत्यु को भी मैं देखनहीं पाया ॥५३३॥ पहले रथ आदिके द्वारा सुसज्जित होकर नरदेव नाम होता है, पश्चात् कालग्रस्त होनेपर कृमिविट् भस्म संज्ञा उसकी होती

ननु गृहस्थस्य स्त्रीपुत्रसुखापेक्षया विषय वासना अवश्यं भविष्यत्येव, तर्हि कथं गृहस्थो भगवन्तं भजेत् ? तत्राह चतुर्थे भगवत्प्रचेतः— संवादे—(भा: ४।३०।१९)

५३६। "गृहेष्वाविशताञ्चापि पुंसां कुशल-कर्मणाम् ।
मद्वार्त्ता-यातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ।।

तथा च पञ्चमे ब्रह्म-प्रियव्रत-संवादे—(भा: ५।१।१७)

५३७।

"भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्,यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य, गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ।।"

ननु भगवद् भक्तानां दारिद्रयमवश्यम्,अतो भगवद्भक्ता अकिञ्चनास्तैः केन योग्येन द्रव्येण भगवत्पूजा विधेया । तत्राह दशमे दरिद्र श्रीदामोपाख्याने—(भा: १०।८१,३)

५३८। "अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्य्येव मे भवेत् ।
भूर्य्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।।"

है।।५३४।। दिग्विजय करने के बाद राजन्यवर्ग के द्वारा पूजित होकर भी घरमें मैथुन सुखमें रतहोकर योषित के क्रीड़ामृग पुरुष हो जाता है।।५३५। गृहस्थ को स्त्री पुत्रादि की अपेक्षा है, और इस के भरण पोषण समाधान के लिए विषय वासना अवश्य होगी। तब गृहस्थजन भगवानका भजन कैसे करसकता है ? इसका उत्तर चतुर्थ-स्कन्धके भगवत् प्रचेताके संवादसे देतेहैं,गृहस्थाश्रममें कर्त्तव्यरत कुशल कर्माव्यक्तिगण भगवत् चरित कथा श्रवण से दिवस अतिवाहित करने से गृहाश्रम बन्धके लिए नहीं होता है, यह मत श्रीहरिका है।।५३६।। पञ्चमस्कन्ध ब्रह्म प्रियव्रत संवाद में वर्णित है-प्रमत्त व्यक्ति के लिए वनमें भी भय अवश्य होगा, कारण काम क्रोध लोभ मोह मद एवं मात्सर्यरूपी शत्रुगण साथही रहते हैं, जितेन्द्रिय आत्मनिष्ट विज्ञव्यक्ति के लिए गृहस्थाश्रम दोषावह नहीं हैं।।५३७।। भगवद् भक्तों के दारिद्र

तथा चैकादशे—(११।२७।१८)

५३९। "श्रद्धयोपहृतं श्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि।
भूर्य्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।।"

(भा: २०।२२।३५)

५४०। "एतावज्जन्म-साफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ।।"

ननु तेषां पारमेष्ठ्य-सारूप्यादि-सुखापेक्षा नास्ति, तर्हि ते केन सुखेन सुखिन: ? तत्राह एकादशे भगवदुद्धव-संवादे-(भा:११।१४।१२,१३)

५४१। "मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयात्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ?

५४२। अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।।"

अवश्य ही है, अतएव भगवद् भक्त अकिञ्चन होते हैं। वे सव किस प्रकार योग्य द्रव्यद्वारा भगवत् पूजा करेंगे ? इसका विवरण दरिद्र श्रीदामोपाख्यान से कहते हैं-प्रेम पूर्वकभक्ति अणुस्वल्प मात्र मुझे प्रदान करने पर मेरेलिए वह अत्यधिक हो जाता है, अभक्त यदि अधिक वस्तु देतेहैं तो मेरा सन्तोष के लिए वह नहीं होता है ।।५३८।। एकादशस्कन्ध में वर्णित है-भक्तजन यदि जलभी मुझको देतेहैं तो श्रद्धापूर्वक प्रदान होनेसे वह श्रेष्ठ होता है, अत्यधिक वस्तुप्रदान करने परभी मेरा सन्तोषके लिए वह नहीं होता है ।।५३९।। इस जगत् में मनुष्य देह प्राप्त करने काएकमात्र लाभ है, कि व; प्राण अर्थ, बुद्धि एव वाणीसे सदा श्रेयस्कर आचरण अपरके प्रति करे, इससे मानव जीवन सफल होता है ।।५४०।। (१०-२२-३५) भक्तों की पारमेष्ठ्य एवं सारूप्य सुखकी अपेक्षा नहीं है, तव भक्तगण किस सुखसे सुखी होते हैं ? इसका उत्तर एकादशस्कन्ध के भगवद् उद्धव संवादसे देते हैं-हे सभ्य ! सव प्रकार से अर्पितात्माजन परमप्रिय मुझको प्राप्तकर

आस्तां तावद्भगवदानन्देनानन्दवत्त्वम्, यस्य वशे ब्रह्मादयो नस्योत गाव इव विधिकराः, स सुखस्वरूपो भगवान् वशो भवत्येतदेव प्रकाशयन् दुर्वाससोऽम्बरीषं प्रति शाप-प्रदानेन सुदर्शनतेजसाभितप्तस्य ब्रह्ममहेशादेरप्यलब्धप्रतीकारस्य स्वपादमूल-पतितस्य मरणापन्नस्य, ब्रह्मवधशङ्कामप्यनादृत्य स्वायुध-निवारण-क्षमोऽपि भगवान् सुदर्शनं न निवारयामास । तत्राह अम्बरीष-चरिते नवमे-(भाः९।४।६३-६६,६८)

५४३। "अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

५४४। नाहमात्मानमाशसे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियञ्चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

५४५। ये दारागार-पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ?

जिस प्रकार सुखी होते हैं, उस प्रकार सुख विषयासक्त के लिए कहाँ है? (५४१) अकिञ्चन दान्त शान्त समचित्त व्यक्ति मुझको प्राप्त कर सब और से सुखी होता है ।।५४२।। भक्तगण भगवान् की खुसीसे आनन्दित होते हैं । जिनके वशमें ब्रह्मादि देवगण नाथैया वैलके तरह रहते हैं, वह सुखस्वरूप भगवान् भी भक्तके वश हो जाते हैं, इस प्रकरण को दिखाने के लिए अन्बरोष का प्रकरण आरम्भ करते हैं, दुर्वासाजी ने अम्बरीष के प्रति शापदिया, अनन्तर सुदर्शन तेजसे अति उद्विग्न होकर ब्रह्मा महेशादि की शरण उन्होंने ली, जब उस क्लेश का प्रतिकार नहीं हुआ तो मरणापन्न होकर चरणों में गिराहुआ दुर्वासा की रक्षा नहीं की, ब्रह्मवध पाप को उपेक्षा की, एवं सुदर्शन अस्त्रका निवारण करने में समर्थ होने परभी भगवान् ने वैसा नहीं किया । इसका विवरण अम्वरीष चरित से कहते हैं, हे द्विज ! मैं भक्तपराधीन हूँ, अस्वतन्त्र जनके समान ही अधीन हूँ । साधुभक्तों ने मेरा हृदयपर अधिकार जमालिया है, मैं भी भक्तजन प्रियहूँ ।।५४३

५४६। मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥"

५४७। "साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयन्त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥"

ननु दुर्वासास्तपस्यादियुतः परमधर्मनिष्ठस्तेनाम्बरीषं प्रति शापे दत्ते भगवदस्त्रेण सुदर्शनेन स कथं तापितः ? तत्राह तृतीये कपिलदेवहूति संवादे—(३।२५।३९,४०)

५४८। "इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ।
आत्मानमनु ये चेह ये रायः पशवो गृहाः ॥

५४९। विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।
भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान् मृत्योरतिपारये ॥"

हे ब्रह्मन् ! भक्तसाधुको छोड़कर मैं आत्माको नहीं चाहता हूँ। अनपायिनी एकान्त आश्रित लक्ष्मी को भी समादर नहीं करता हूँ ॥५४४॥ जो जन पत्नी गृह पुत्र कुटुम्ब प्राण, धन को छोड़कर मेरी शरणमें आयाहै, उसको मैं कैसे छोड़सकता हूँ ॥५४५॥ समदर्शि साधुभक्तगण मेरे में आसक्त हृदय होते हैं, वे सव सत्स्त्री जिसप्रकार सत्पति को वशीभूत करती है, उस प्रकार मुझको वशीभूत करते हैं ॥५४६॥ साधुभक्तगण मेरे हृदय हैं, और मैं साधुओं के हृदय हूँ। वे सव मुझको छोड़कर कुछ नहीं जानते, मैं भी उन साधुभक्तको छोड़ कर अपर कुछभी नहीं जानता हूँ ॥५४७॥ अच्छा ! दुर्वासाजी तो तपस्यानिष्ठ एवं परमधार्मिक भी थे, उन्होंने जव अम्बरीष को शाप दिया तो भगवद् अस्त्रसे उनको पीड़ा क्यों होगई ? कपिलदेवहूति संवादसे उत्तर देते हैं,–इस लोक, एवं परलोक, स्व पर, शरीर, धन सम्पत्ति,पशु गृहादि को छोड़कर एवं अन्यसव को छोड़कर विश्वतोमुख मेरा जो भजन करता है, मैं उन अनन्यभक्ति से भजन करने वाले को मृत्युसे उद्धार करता हूँ ॥५४८–५४९॥

एतेन भक्तानामापद्युपसन्नायां भगवान् स्वयं स्वास्त्रेण रक्षतीति निश्चितार्थः। तथा चाष्टमे बलिनिग्रहे-प्रह्लादोक्तौ-(८।२३,६,७)

५५०। नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं,न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ये।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो,विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः॥

५५१। यत्पादपद्म-मकरन्द-निषेवणेन,
ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः।
कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते,
दाक्षिण्यदृष्टि-पदवीं भवतः प्रणीताः॥"

अतएव आत्मबन्धनकृते रज्वानयन श्रमखिन्नगात्राया यशोदायाः कृपया स्वबन्धनममन्यत। तत्राह दशमे—(१०।९।१८,१९)

५५२। "स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्त-कबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबन्धने॥

५५३। एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥"

इस से भक्तों के आपद् उपस्थित होनेपर भगवान् स्वयं निज अस्त्रसे भक्तको रक्षा करते हैं, यह निश्चित सिद्धान्त हुआ। अष्टमस्कन्ध के बलिनिग्रह के समय प्रह्लाद की उक्ति इस प्रकार हैं-विरिञ्चि, लक्ष्मी, शिव, भी इस प्रकार प्रसाद के अधिकारी नहीं हुये, अपर की तो बात ही क्या है। विश्वके वन्दनीय व्यक्ति द्वारा वन्दनीय चरण होकर भी आप असुरोंके दुर्गपाल हो गये॥५५०॥ जिस पादपद्म के मकरन्द निषेवण से ब्रह्मादि देवगण विभूती के अधिकारी हुये हैं, हम सब कुयोनि से उत्पन्न हैं, हमारे प्रति आपकी इस प्रकार दाक्षिण्यदृष्टि कैसे हुई॥५५१॥ अतएव श्रीकृष्ण को बांधनेके लिए रज्जु आनयन श्रम से थकी हुई मैया यशोदा को देखकर कृष्णने कृपासे बन्धन को अङ्गीकार किया, इस का विवरण दशमस्कन्ध में है-निज माता

अतएवाह—(भा: १०।९।२०)

५५४। "नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥"

तथा च गोप्योद्धव-संवादे—(भा: १०।४७।६०)

५५५। "नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः,
स्वर्योषितां नलिन-गन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड-गृहीतकण्ठ-,
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥"

तथा च व्रजस्त्रीणां दर्पभङ्गाय कृत तिरोधान-जनित मानप्रशमनायंब्रह्ममहेशादिभिरपि वन्दित-चरण आत्मानो दुःशीलतां प्रशमयति; तत्राह दशमे—(१०।३२।२०-२२)

५५६।

नाहन्तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्,भजाम्यमीषामनुवृत्ति-वृत्तये
यथाधनो लब्धधने विनष्टे,तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद॥

यशोदा को परिश्रम क्लान्त देखकर श्रीकृष्ण ने कृपासे बन्धन को स्वीकार किया।।५५२।। हे अङ्ग ! श्रीहरि कृष्णने इस प्रकार भक्त वश्यता को प्रकट किया, जिस के वशमें ईश्वर के साथ सकल जगत् हैं।।५५३।। इस लिए ही कहा है—विरिञ्चि शिव अनपायिनी शक्ति लक्ष्मी भी उस प्रकार कृष्ण प्रसाद के अधिकारी नहीं हुये, गोपियों ने जिस प्रकार प्राप्त किया।।५५४।। गोपी उद्धव संवाद में वर्णित है, उस प्रकार प्रसाद लक्ष्मीने भी प्राप्त नहीं किया, कमलगन्ध वाली अन्य रमणी की तो बात ही क्या है, रासोत्सव में श्रीकृष्ण के भुजसे आलिङ्गित होकर नृत्यगीत का अवसर गोपियोंने प्राप्त किया।।५५५।। व्रजस्त्रीयों के दर्पनाश करने के लिए श्रीकृष्ण छिपगया था, उस से गोपीयों का मान होगया, उसको दूर करने के लिए ब्रह्मा महेशादि द्वारा वन्दित चरण श्रीकृष्ण अपनी दुःशीलता को प्रशमित करते हैं—

५५७। एवं मदर्थोज्झित-लोकवेद,स्वानां हि मय्यनुवृत्तयेऽवलाः
मया परोक्षं भजता तिरोहितं,मासूयितं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः
५५८। न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां,स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खला,संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना

अतएव दशमे गोप्युद्धव-संवादे—(१०।४७।५८,५०)

५५९। "एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो,
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढ़भावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयञ्च,
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

हे सखीगण ! मैं भजन करने परभी भजन नहीं करता हूँ। इससे भजन कारि का आवेश बढ़ता है, जिस प्रकार अधन व्यक्ति का धन प्राप्त हौने के वाद धन नष्ट हो जानेपर धनचिन्ता में तन्मय हो जाता है, इस प्रकार तन्मयता को वढ़ानेके लिए मैं भजन करनेपर तत्काल भजन नहीं करता हूँ।।५५६।। इस प्रकार मेरेलिए निज जन लोकधर्म वेदधर्म को जिन्होंने परित्याग कर मेरे आनुकूल्य के लिए ही चला है, मैं उनसव का भजन छिपकर ही करता हूँ। अतः मेरे प्रति असूया न करो।।५५७।। निर्दोषकारिणी तुमसव को आभारो हूँ, मैं ऋणशोध नहीं करसकता हूँ, भजन के अनुरूप भजन तुम सवके साथ नहीं कर सकता हूँ, चाहे मुझे ब्रह्माकी आयुभी क्यों न मिले। अतः अपने सौशील्य गुणसे ही सन्तुष्ट हो जाओं। दुर्ज्जर गेह श्रृङ्खल को तोड़कर तुम सवने जो निर्दोष सम्बन्ध स्थापन किया है, उसका प्रतिदान करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।।५५८।। अतएव दशम के गोपी उद्धव संवाद में उक्त है—पृथ्वीमें तनु धारियों में गोपवधूगण ही सर्वश्रेष्ट है, कारण निखिलात्मा गोविन्द में उनसव के रूढ़भाव है। जिसकी वाञ्छा भवभय से भीत होकर मुनिगण एवं हमसव करते रहते हैं, विशेषकर अनन्त की कथास्वादन परायण के लिए ब्रह्मजन्म का

५६०। क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार-दुष्टाः,
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढ़भावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा,-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥"

अपरञ्च-यत्तृप्तयेऽशेषक्रतवो न समर्थाः, स तु भगवान् गोगोपीस्तनपानेन तृप्त इत्युद्भुतं महत् । तत्राह दशमे ब्रह्मस्तुतौ (१०।१४।३१)

५६१।अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः,स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना,यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः

तथा च सप्तमे प्रह्लाद-चरिते—(७।६।२६)

५६२। "क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः सुरेतर-कुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकर-प्रसादः ॥"

महत्व ही क्या है ॥५५६॥ ये सब स्त्री है, और वनचारी है, किन्तु इनसब के गोविन्द के प्रति कैसा असमोर्द्ध रूढ़भाव है, न जानकर भी उत्तम ओषधि सेवन से फलप्राप्त होने में सन्देह नहीं रहता है, उस प्रकार ईश्वर को प्रियरूप में भजन करनेपर भी परमश्रेयः लाभहोता ही है ॥५६०॥ जिनकी तृप्ति सम्पादन के लिए अशेष यज्ञादि समर्थ नहीं है, वह भगवान् गोगोपीस्तन पानके द्वारा तृप्त हुये, यह एक अत्यद्भुत महत् है । दशम की ब्रह्मस्तुति में वर्णित है-व्रजके गोगण एवं रमणीगण अति धन्य है, अति आनन्दसे उनसब के स्तन्यामृतका पान श्रीहरिने किया, वालवत्सरूप धारण कर विभुने जिनसब के स्तन्यपान किया, जिन श्रीहरि को तृप्त करने के लिए आज तक याग यज्ञ समर्थ न हुये ॥५६१॥ सप्तम के प्रह्लाद चरित में उक्तहै-हे ईश ! मैं रजतमः पूर्ण असुरकुलजन्मा हूँ आपकी अनुकम्पा मेरे प्रति कितनी आश्चर्य की वात है । ब्रह्मा, भव, रमा, जिस प्रसाद को प्राप्त करने

तथा च दशमे ब्रह्मस्तुतौ--(१०।१४।३३,३५)

५६३। "एषां तु भाग्यमहिताच्युत तावदास्ता-,
मेकादशैव हि वयं वत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीक-चषकैरसकृत् पिवामः,
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदज-मध्वमृतासवं ते ॥"

५६४। "एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न
श्चेतो विश्वफलात् फथं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थ-सुहृत्-प्रियात्म-तनय-प्राणाशयास्त्वत्कृते ॥"

एतेषां व्रजनिबासिनां चरण-रेणुं ब्रह्मादयोऽपि प्रार्थयन्त्यतो भगवतो भक्तवश्यत्वमिति स्फुटम्, तत्राह—.भा: १० १४।३४)

५६५। "तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां,
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द,
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥"

समर्थ नहीं हुऐ, ऐसा मेरे शिरपर पद्मकर प्रदान आपने किया ।।५६२।। इस प्रकार दशम की ब्रह्मस्तुति में उक्तहै–हे अच्युत ! इनसव की भाग्यमहिमा को तो क्या कहूँ, एकादशेन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवता हम सव इनके सम्पर्क से भूरिभाग्यवान् हैं, इनसव के इन्द्रिय के द्वारा आपके चरणामृत का पान हमसव पुनः पुनः करते रहेंगे ।।५६३।। इन सव घाषवासियों को आप क्या दान करेंगे, यह सोचकर हमारे चित्त विवश हो जाता है, सज्जनवत् वेशधारण कर पूतना आई, उसको आपने कुलके साथ उत्तम गति प्रदान की, जिन्होंने धाम अर्थ सुहृत् प्रिय आत्म तनय प्राण आशय को आपको ही देदिया है, उनको आप क्या देंगे ? (५६४) इस वृन्दावन में जङ्गलों में कुछभी जन्मलाभ हो

तथा च गोप्युद्धव-संवादे—(भा: १०।४७।६१,६२)

५६६। "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने दिमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।

५६७। या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-,
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं,
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ।।"

अतो भगवद्भजनमेव श्रेयः। सा च भक्तिर्नवधा भिद्यते, तत्राह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते—(७।५।२३,२४)

५६८। "श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ।।

जाय तो मैं उसे ही भूरिभाग्य मानेंगे। कारण गोकुलवासी किसीके चरण रेणुसे अभिषिक्त होने का सौभाग्य होगा, गोकुलवासियों के निखिल प्राणाधार भगवान् मुकुन्दु हैं, जिन के पद रजः कण श्रुतिगण केवल अन्वेषण ही करतीं रहतीं है ।।५६५।। अहो ! वृन्दावन में गुल्मलता ओषधियों में कुछभी एकजन्म प्राप्तकर इससव व्रजललना के चरणरेणु सेवन करूँ। जिन्होंने दुस्त्यज स्वजन अर्थपथ को छोड़ कर मुकुन्द की सेवा की जिस को श्रुतिगण केवल अन्वेषण ही करती रहती है ।।५६६।। जिन के चरण की सेवा लक्ष्मी करती है, ब्रह्मादि आप्तकाम मुनिगण हृदयमें ध्यान ही करते रहते है। उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द को रासगोष्ठो में गोपाङ्गनागण वक्ष स्थलमें धारणकर ताप को उपशमित किए थे ।।५६७। अतएग भगवद् भजन ही श्रेयस्कर हैं। वह भक्ति नव प्रकार हैं, प्रह्लाद चरित में इसका विवरण है-श्रीविष्णु चरित श्रवण, कीर्तन, स्मरण पाद सेवन, अर्चन

५६६। इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥"

तत्र प्रथमं श्रवणं निरूपयति प्रथमे सूतशौनक-संवादे-(१।१८।१५)

५७०। तन्नो भवान् वै भगवत्प्रधानो,महत्तमैकान्त-परायणस्य
हरेरुदारं चरितं विशुद्धं,शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥"

अथा च द्वितीये सूत-सौनक-संवादे—(२।३।१४)

५७१। "एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ।
कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।५।१५)

५७२। तदस्य कौषारव शर्मदातु,र्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्त्तबन्धो,शिवाय नः कीर्त्तय तीर्थकीर्त्तेः ॥

ननु भवन्तो याज्ञिकाः कदाचिद्यज्ञानुष्ठानं कदाचित् कृष्णकथाश्रवणमेवं यदि स्यात्तर्हि मया अभिधातुं न शक्यते । तत्राह प्रथमे सूतशौनक-संवादे—(१।१।१९)

५७३। "वयन्तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥"

वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, भक्ति नवधा है ।।५६८।। श्रीविष्णु मे आत्मसमर्पण करके नवधा भक्ति का अनुष्ठान यदि करे तो उत्तम अध्ययन कहाजायेगा ।।५६९।। उसमें से प्रथम श्रवण भक्तिका निरूपण करते हैं, प्रथम के सूतशौनक संवाद से आप श्रीभगवान् के चरित्र को प्रधानरूपसे मानते हैं, महत्तम व्यक्तियोंके एकमात्र आश्रय श्रीहरि के विशुद्ध चरित,हे विद्वन् श्रवणेच्छु हमारे निकट वर्णन करें ।।५७०।। द्वितीयस्कन्ध के सूतशौनक संवादमें वर्णित है हे विद्वन् सूत ! श्रवणेच्छु हम सबके निकट सज्जनगण सेव्य श्रीहरिकथा का कीर्त्तन करें ।।५७१।। तृतीयस्कन्धस्थ विदुरमैत्रेय संवाद में-मङ्गलमय श्रीहरि की कथा सकल कथाओं में सार है, हम सबके मङ्गल के लिए समस्त

किमपरं सकृदपि श्रुत्वा को नाम निवर्त्तेत ? तत्राह सूतसौनक संवादे—(भाः १।१।१६)

५७४। "को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ।
शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ।।

(भाः १।२।१५)

५७५। "यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थि-निवन्धनम् ।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम् ।।"

५७६। (भाः १।१८।१४)

"को नाम तृप्येद् रसवित् कथायां, महत्तमैकान्त-परायणस्य
नान्त गुणानामगुणस्य जग्मु,र्योगेश्वरा ये भव-पाद्ममुख्याः ।।"

तथा च द्वितीये सूत-शौनक-संवादे—(२।३।१२)

भगवत् चरितों से सार ग्रहणकर आप वर्णन करें ।५७२।। आप सव याज्ञिक हैं, कभी यज्ञानुष्ठान करेंगे, और कदाचित् कृष्णकथा श्रवण इस प्रकार होनेपर मैं कृष्णकथा कह नहीं सकूँगा, इसके उत्तर में प्रथमस्थ सूतशौनक संवाद कहते हैं-उत्तमश्लोक चरित्र शुनने में हम सव अतृप्त नहीं होंगे, कारण हरिकथा रसज्ञ व्यक्तिके लिए पग पग पर स्वादु स्वादु होती हैं ।५७३।। अधिक कथा कहना है, जो एकवार भी सुनकर उससे निवृत्त होगा ? सूतशौनक संवाद को कहते हैं-कौन ऐसा व्यक्तिहै जो शुद्धिके लिये कलिमलापहारक पुण्यश्लोकगण संस्तुत भगवान् के विमल यशः का श्रवण नहीं करेगा ? (५७४) जिन का अनुध्यानरूप असिके द्वारा कर्मग्रन्थिटूट जाती है, कौन ऐसा विवेकी व्यक्ति होगा जो भगवन् कथा में प्रीति नहीं करेगा ? (५७५) ऐसा कौन रसवित् व्यक्ति होगा जो महतों के एकमात्र आश्रय श्रीहरि कीं कथा से तृप्त होगा ? अप्राकृत गुणसम्पन्न श्रीहरिके गुणों की इयत्ता नहीं है, योगेश्वर, भव, ब्रह्म प्रभृति भी श्रीहरि के गुणोंका निर्णय करने में असमर्थ हैं ।।५७६।।

५७७। "ज्ञानं यदाप्रतिनिवृत्त-गुणोर्मिचक्र,
आत्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।
कैवल्य-सम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः,
को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे - (३।५।११)

५७८।
कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्,सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात्
यः कर्णनाड़ीं पुरुषस्य यातो,भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥

५७९। (भाः ३।१३ ५०)
को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्,पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा,महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥

(भाः ३।२०।६)

५८०। "ता नः कीर्त्तय भद्रं ते कीर्त्तन्योदारकर्मणः ।
रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥"

भागवत सङ्गसे ही भक्ति होती है, हरिकथा रतिके लिए हरिकथा श्रवण एकान्त आवश्यक है, उससे ज्ञान होता है, अनन्तर विषयराग समूह नष्ट हो जायेगें, पश्चात् आत्म प्रसन्नता होगी। विषय वैराग्य होने के कारण मनकी प्रसन्नता होगी, कैवल्य सम्मतपथ भक्तियोग श्रवण तृप्तिद होने के कारण कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो श्रीहरिकथा में प्रीति नहीं करेगा ।।५७७।। तृतीय स्कन्धके विदुरमैत्रेय संवाद में उक्तहै-तीर्थपद श्रीहरि की कथासे कौनव्यक्ति तृप्त होगा, जिसका कीर्त्तन सूरिगण निरन्तर करते रहते हैं, कर्णकुहर में श्रीहरिकथा प्रसङ्ग प्रविष्ट होनेसे ही भवप्रद गेहरति नष्ट हो जाती है ।।५७८।। कौन पुरुषार्थ सारवित् व्यक्ति होगा जो भव विनाशकारी भगवत् कथा सुधाके पानकर भी उससे विरत होता है ? अहो अतीव आश्चर्य है,नरेतर पशुधर्मा भिन्न ऐसा आचरण मनुष्यमें सम्भव नहीं है ।।५७९।।

तथा चतुर्थे पृथुचरिते—(४।२०।२६)

५८१।

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे, यदृच्छया चोपश्रृणोति ते सकृत्
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं, श्रीर्यत् प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥
(भा: ४।२३।१२)

५८२। "छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीह-,
स्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ।
तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो,
यावद्गदाग्रज-कथासु रतिं न कुर्यात् ॥"

तथा च श्रुत्यध्याये –(भा: १०।८७।२१)

५८३। "दुरवगमात्मतत्त्व-निगमाय तवात्ततनो,
श्चरित-महामृताब्धि परिवर्त्त-परिश्रमणाः
न परिलयन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते,
चरण-सरोज-हंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥"

उदार कर्मकारी श्रीहरिके कीर्त्तनीय मङ्गलमय चरित्र का गान हमारे पास आप करें, कौन रसज्ञव्यक्ति श्रीहरि लीलामृत पानकर तृप्तहोगा? (५८०) पृथुचरित में वर्णित है–भक्तिका फल तो मुक्ति है, उसको छोड़कर साधन में यत्न करना उचित नहीं हैं? उत्तर में कहते हैं–हे सुश्रवः मङ्गलकीर्त्ते! तुम्हारे मङ्गलमय यश को एकवार भी सज्जन सङ्गमें जो सुनता है, वह यदि पशु न हो तो कैसे उससे विरत होगा, श्रीहरिमें अतिशय गुणहै, श्रीलक्ष्मी आदि सकल पुरुषार्थप्रद गुणों का संग्रह श्रीहरि में हैं, इसलिए तो ही लक्ष्मी ने श्रीहरि को वरण किया है ॥५८१॥ जिन्होंने आत्मज्ञान के द्वारा देहात्मवुद्धि को विनष्ट किया है, प्राप्तसिद्धिके प्रति वह निश्चेष्ट रहता है, जिस ज्ञानके द्वारा संशय का छेदन हुआ है, उस ज्ञानको भी श्रीकृष्णकथा में लोभ होने के कारण परित्याग करता है ॥५८२॥ श्रुति अध्याय में वर्णित है–

नन्वात्मारामा योगिनश्च कथं प्रवर्त्तेरन् ? तत्राह दशमे-(१०।१।४)

५८४। निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्,भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात्
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्,पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥
(भा: १०।४७।४८)

५८५। "क उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमश्लोक-संविदम् ।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते-क्वचित् ॥"

तथा परीक्षिदुक्तौ—(भा १०।५२।२०)

५८६। "ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः
को नु तृप्येत श्रृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥"

तथैकादशे वसुदेव–नारद–संवादे—(११।३।२)

५८७। "नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ।
संसार-तापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्ताप-भेषजम् ॥"

भक्ति स्वल्पसाधन नहीं है, दुर्बोध आत्मतत्त्व को जानने के लिए जी लोक क्लेशप्राप्त करते रहते हैं, उसको सुखी करने के लिए श्रीहरि लीलाविग्रह प्रकट करते रहते हैं, उनमें जो लोक अपनी मतिको डुवो देता है, वह दारुण परिश्रमसे वंच जाता है, कुछलोक तो भगवद् भक्तके सङ्गसे भक्ति में रत हो जाते हैं, और मुक्ति कोभी नहों चाहते हैं ॥५८३॥ आत्माराम योगिगण भगवत् कथा श्रवणमें प्रवृत्त क्यों होते हैं ? इसका उत्तर दशमस्थ पद्यसे देते हैं, पुत्रैषणा वित्तैषणा त्यागकारी व्यक्तिगण श्रीहरि चरित को गाते हैं, यह भवरोग की औषधि एवं मन श्रवण के सुखद है, अतएव उत्तमश्लोक के गुणवाद से कौन व्यक्तिविरत होगा ? आत्मघाती पशुहत्याकारीजन को छोड़ कर कोईभी विरत नहीं होगा ॥५८४॥ उत्तमश्लोक की एकान्तवार्त्ता को परित्याग करने के लिए कौन उत्साहित होगा ? श्रीकृष्ण न चाहने परभी कभी भी श्री उनके अङ्गसे वियुक्ता नहीं होतीहै ॥५८५ हे ब्रह्मन् ! परम पवित्र अमृतमयी श्रीकृष्णकथा लोकमल विनाशक

(भा: १०।८०।२)

५८८। "को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोक:-सत्कथाः ।
विरमेत विशेषज्ञो विषण्ण: काम-मार्गणैः ।।"

श्रवणानन्तरं यद्भवति तन्निरूपयति; तत्राह द्वितीये—(२।२।३७)

५८९। "पिवन्ति ये भगवत आत्मन: सतां,
कथामृतं श्रवण–पुटेषु संभृतम् ।
पुनन्ति ते विषय-विदूषिताशयं,
व्रजन्ति तच्चरण-सरोरुहान्तिकम् ।।"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।६।१४)

५९०। अशेष-संक्लेश-शमं विधत्ते,गुणानुवाद-श्रवणं मुरारेः।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्द, परागसेवारतिरात्मलब्धा ।।"

है, कौन शास्त्रज्ञ व्यक्ति ऐसा होगा जो नित्यनूतन कृष्णकथा से परितृप्त होगा ? (५८६) एकादशस्कन्धस्थ वसुदेव नारद संवाद में उक्त है–आपकी कथा सुनकर मन अतृप्त रहजाता है, श्रीहरि कथामृत संसार तापतप्त व्यक्ति के लिए परमोषधि स्वरूपहै ।।५८७।। हे ब्रह्मन् ! सारवित् विषय तृष्णाशून्य कौन ऐसा व्यक्ति है–जो श्रीकृष्णकथा एकवार सुनकर भी उससे विरत होगा ।।५८८।। श्रवण के अनन्तर जो होता है, उसका निरूपण करते हैं, द्वितीय स्कन्धमें कहा है— श्रवणादिका फल कहते हैं-सज्जनगण के आत्माके समान परमप्रिय रूपमें प्रकाशित अमृतरूपी कथा, भगवत् चरित्र का पान श्रवण के द्वारा जो जन करता है, वह विषय द्वारा दूषित मलिन चित्तवृत्तिको शुद्ध करके श्रीहरिके चरणकमलके निकट (श्रीविष्णुपद) गमन करता है ।।५८९।। तृतीय स्कन्धके विदुरमैत्रेय संवादमें कथित है-भक्तियोग से ही क्लेश की निवृत्ति होती है, श्रीहरिगुण कथन एवं श्रवण से ही अशेषक्लेश विनष्ट होता है, और यदि मनमें श्रीहरिके प्रति प्रीति ही तो सप्रेमध्यानसे समस्तक्लेश विदूरित होगा इसमें कहना क्याहै ।।५९०

तथा ब्रह्मस्तुतौ—(भा: ३।९।५)

५९१। "ये तु त्वदीय-चरणाम्बुज-कोशगन्धं,
जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवात-नीतम् ।
भक्त्या गृहीत-चरणः परया च तेषां,
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात् स्वपुंसाम् ॥"

तथा च चतुर्थे दक्षयज्ञभङ्गे भगवन्तं प्रति सिद्धविद्याधर-स्तुतौ (४।७।४४)

५९२। "त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्,
कृत्वा ममाहमिति दुर्म्मतिरुत्पथैः स्वैः ।
क्षिप्तोऽप्यसद्विषय-लालस आत्ममोहं,
युष्मत्कथामृत-निषेवक उद्व्युदस्येत् ॥"

५९३। तथा दशमे—(१०।८३।३)

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं, महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित्
पिवन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो, देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥

ब्रह्मस्तुति में कथित है-आदर पूर्वक श्रीहरिभजनकारी व्यक्ति कृतार्थ होता है, वेदादि शास्त्ररूप पवन परिचालित श्रीहरिकथा रूप चरण कमल की गन्धको नासासे लेकर कर्णविवरसे जोपान करताहै पराभक्ति से चरणकमल को हृदयमें स्थापन करता है, उसके हृदयमें आप नित्य प्रकाशित होते हैं।।५९१।। चतुर्थस्कन्ध में दक्षके यज्ञभङ्ग प्रसङ्गमें भगवान् के प्रति सिद्ध विद्याधर की स्तुति इस प्रकार है-विद्याधरगण तो केवल विद्यासे ही सम्पद को पाते हैं, अहंकार निवृत्ति तुम्हारी चरितकथा श्रवणके विना नहीं होती है, तुम्हारी मायासे प्राप्त कलेवर में मैं मेरा जो दुर्मति होती है, उसको परित्याग हरिकथारूप अमृत सेचनसे ही उत्तमरूपसे करे, पुत्रादि द्वारा अवमानित होनेपर अहंकार नष्ट स्वयं होगा इसप्रकार नहीं हैं, अवमानित होने परभी विषयतृष्णा स्वतः ही वढ़ती रहती है ।।५९२।। दशम में कथित है-हे प्रभो ! उन सबके लिए अशिव अमङ्गल कैसे सम्भवहै, जोलोक आपके चरितामृत

तथा चैकादशे उद्धवोक्तौ—(११।६।४८)

५६४। "वयन्त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ।
त्वद्वार्त्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ।।"

(भाः ११।६।६,१६)

५६५। "शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां,
विद्याश्रुताध्ययन-दान-तपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-,
सच्छ्रद्धया श्रवण-संभृतया यथा स्यात् ।।"

५६६। "विम्बयस्तवामृत-कथोदवहास्त्रिलोक्याः
पादावनेज-सरितः शमलानि हन्तुम् ।
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गै-,
स्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ।।"

५६७। तथा द्वादशे—(१२।३।१५)

"यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः, संगीयतेऽभीक्षणममङ्गलघ्नः ।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं,कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ।।"

को महन्मुख से सुनते हैं, आपकी चरितकथा देहधारी की श्रीहरि विस्मृति को छेदन करती है ।।५६३।। एकादश की उद्धव की उक्ति में है—हे महायोगिन् ! हमसव कर्ममार्ग में भ्रमन् करने परभी आपके जनसे आपकी कथा को सुनकर दुस्तर मायासे अपने को उद्धार करेंगी ।।५६४।। हे पूज्य प्रभो ! दुराशय मनुष्य की शुद्धि विद्यांलाभ शास्त्राध्ययन, दान, तप, यागयज्ञ अर्चनाक्रिया अनुष्ठानसे नहीं होतीहैं, जिस प्रकार भक्तगणसे तव कथा श्रवणसेहोती है ।।५६५।। हे प्रभो ! आपकी चरित कथा एवं श्रीचरण निःसृत गङ्गा नदी ही मनुष्यों के अङ्ग सङ्ग होकर पापनाश करने में समर्थ है ।।५६६।। द्वादशस्कन्ध में भी उक्त है—श्रीकृष्ण चरणमें भक्तिलाभ करनेके लिए अमङ्गल नाशक

(भा: १२।४।४०)

५९८। संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-,
नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारस-निषेवणमन्तरेण,
पुंसो भवेद्विविध-दुःखदवार्दितस्य ॥"

तथा च द्वितीये—(२।८।४)

५९९। "प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भाव-सरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥"

इदानीं व्यतिरेकेणाह द्वितीये-सूत-शौनक-संवादे-(२।३।१९)

६००। श्वविड्‌वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥"

तथा च तृतीये कपिलदेवहूति-संवादे—(३।३२।१९)

६०१। नूनं दैवेन निहता ये चाच्युत-कथासुधाम् ।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्‌भुजः ॥"

उत्तमश्लोक के गुणानुवाद नित्य पुनः पुनः श्रवण करे ॥५९७॥ संसार सिन्धुसे उत्तीर्ण होने के लिए पुरुषोत्तम श्रीभगवान् की लीला कथा श्रवणभिन्न अन्य कोई भी नाव नहीं हैं, जिससे विविध दुःखतप्त पुरुष के दुःख शान्त हो ॥५९८॥ द्वितीय स्कन्धमें वर्णित है-कर्णद्वारा निज जन के हृदयकमल में कृष्णकथारूप कृष्ण प्रविष्ट होकर शरत्काल की नदीके समान सकल पाप पङ्को को परिष्कार करते रहते हैं ॥५९९॥ सम्प्रति व्यतिरेक से कहते हैं सूतशौनक संवाद द्वारा कुक्कुर ग्राम्य शूकर उष्ट्र एवं गर्दभरूप मनुष्यों से पुरुष पशु प्रशंसित होते रहते हैं, जिसके कर्णकुहर में कदाचित् श्रीकृष्ण नाम कर्णकुहर में प्रविष्ट नहीं हुआहै, कुकुर अवज्ञा प्राप्त होने योग्य मनुष्य, दुगन्धं पूर्ण विषयासक्त ग्राम्यशूकर सदृश मनुष्य कन्टक शाखा भोजनरत ऊँटश्रेणीके मनुष्य, अत्यधिक भारवहनकारी गधाश्रेणीके मनुष्यके द्वारा प्रशंसित मनुष्य

यत्कर्णमूलं कृष्णकथा न प्रविष्टास्तान् राज्ञो विड़ालादीनिव पश्यन्ति। दशमे भगवद्रुक्मिणी-संवादे—(१०।६०।४४)

६०२। "तस्यः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः,
स्त्रीणां गृहेषु खर-गोऽश्व-विड़ाल-भृत्याः।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्-,
युष्मद्‌कथा मृड़-विरिञ्चि-सभासु गीता॥"

यत्कर्णमूलं कृष्णकथा प्रविशति, तस्य लज्जा लोकापेक्षा न तिष्ठति। तत्राह—(भा: ११।५२।३७)

६०३। "श्रुत्वा गुणान् भुवन्-सुन्दर शृण्वतां ते,
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं,
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥"

अपना अहंकार को बढ़ाता रहता है॥६००॥ निश्चय ही दैवसे वह निधन को प्राप्त हुआहै, जो जन अच्चुत गाथाको छोड़कर ग्राम्यशूकर के समान असद्‌गाथा को सुनता है॥६०१॥ जिसके कर्णमूल में कृष्ण कथा प्रविष्ट नहीं हुई है ऐसे राजन्यवर्ग भी विविध गृहपशुके समान होते हैं, दशमके भगवद् रुक्मिणी संवाद में वर्णित है कि—आपने जो कहा कि तुम राजपुत्री हो, तुम्हे राजपुत्रके साथ ही सादी करनी चाहिये, राजाओं में अनेक गुणशौर्य वीर्यहोते हैं, यह सब ठीक नहीं हैं, उस दुर्भगा कन्या के पति होने के योग्य राजन्यवर्ग है, कारण राजन्यवर्ग, गधाके समान् भारवाहक है, बैलके समान नित्य परिश्रम से थके हुए हैं, कुत्तेके समान अवमानित हैं, बिल्लीके समान कृपण एवं हिंस्र है, भृत्यके समान किङ्कर है, ऐसे पति उनको होनी चाहिये जिसके कानमें तुम्हारीकथा सुनाई न पड़ीहो, हे अरिकर्षण! तुम्हारी कथा तो शिव विरिञ्चि की सभामें गायीजाती है। रुक्मिणी स्वयं एकान्तमें पत्रलिखकर ब्राह्मणद्वारा कृष्णको भेजकर प्रेम प्रकटकिये थे।

तथा च भगवद्रुक्मिणी संवादे—(भा: १०।६०।५५)

६०४। "न तादृशीं प्रणयिणीं गृहिणीं गृहेषु,
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाह-काले।
प्राप्तान्नृपानवगणय्य रहोहरो मे,
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुत-सत्कथस्य ॥"

ततः कीर्त्तनं निरूपयति; द्वितीये शुकदेव-परीक्षित्-सवादे-(२।१।११)

६०५। "एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥"

६०६। तथा व्यास-नारद-संवादे प्रथमे—(१।५।२२)

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा, स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धदत्तयोः
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो, यदुत्तमश्लोक-गुणानुवर्णनम् ॥

ब्राह्मण कृष्णकी आज्ञासे पत्र पढ़कर सुनाने लगे, हे अच्चुत ! हे भुवन सुन्दर ! तुम्हारी महिमा कहाँ, मैं कहाँ, रूपकुलशील युक्ता होकर भी लज्जा चलीगई, और तुम्हारे में हि मेराचित्त डूबगया। यह केवल कान से तुम्हारी कथा सुनने से ही अन्तर में प्रविष्ट होगई और मैंया शरीर एवं चित्तका तापभी नष्ट होगया। मनोहरणकारी तुम्हारे गुण को सुना, एवं नेत्रवाले के लिए अखिलार्थलाभरूप सौन्दर्य कोभी सुना। जिसके कर्णमूलमें कृष्णकथा प्रविष्ट होतीहै, उस की लोक लज्जा लोकापेक्षा नहीं रहती हैं ॥६०२-३॥ भगवत् रुक्मिणी संवाद में वर्णित है-अनेकानेक निष्काम व्यक्ति है, जो केवल प्रेमसे ही मेरासङ्ग करते हैं अनेक होने परभी तुम्हारे समान किसी को नहीं देखता हूँ। विवाहके समय ही तुमने दुल्हा राजन्यको भी छोड़कर सत्यप्रिय मुझको ब्राह्मण भेजकर वरण किया ॥६०४॥ तदनन्तर कीर्त्तन का निरूपण करते हैं-जो लोक प्राकृत देहेन्द्रिय विषयसुख के प्रति निर्विण्ण होकर श्रीहरि पादपद्म को चाहते हैं। हे नृप ! उन योगिगणके लिए श्रीहरि नाम कीर्त्तन ही निर्णीत हुआ है ॥६०५॥ प्रथमस्कन्धस्थ व्यास नारद

तथा च कपिलदेवहूति-संवादे तृतीये—(३।३३।७,६)

६०७।

अहो वत श्वपचोऽतो गरीयान्,यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या,ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।

६०८। यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्,
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
स्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते,
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ।।"

तथा पञ्चमे नारद-स्तुतौ—(५।२५।११)

६०९। "यन्नामश्रुतमनुकीर्त्तयेदकस्मा,
दार्त्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं,
कं शेषाद्भगवतः आश्रयेन्मुमुक्षुः ।।"

संवाद में-श्रवण अध्ययन, तप, यज्ञादि कर्म स्तवपाठ, ज्ञान, दान प्रभृति का नित्यफल श्री उत्तमश्लोक श्रीहरिके गुणानुवर्णन ही है, समस्त मुनियों का ही यह निर्णय है ।।६०६।। इस प्रकार कपिल देवहूति संवाद तृतीयस्कन्ध में-अतीव आश्चर्य है कि-श्रीहरि के नाम जिसकी जिह्वामें उच्चारित होता है, वह श्वपच होने परभी सर्वश्रेष्ठ है, तप, यज्ञादिकर्म, स्नान, सदाचार वेदाध्ययन प्रभृति कर्मका अनुष्ठान उससे यथार्थ ही हुआ है, जिसने श्रीहरि का नाम उच्चारण किया ।।६०७।। जिनके नाम श्रवण, अनुकीर्त्तन, प्रणाम स्मरण प्रभृति से चण्डाल भी सद्य यज्ञकारी वेदवित् ब्राह्मणके समान पूज्य होजाता है, हे भगवन् आपके दर्शन से वह शुद्ध होगा इसमें सन्देह ही कहाँ हैं ।।६०८।। पञ्चम की नारद स्तुति में-जिन के नाम श्रवण अनुकीर्त्तन अकस्मात् उच्चारण, पीड़ित, पतित, वञ्चना परिहासप्रसङ्ग में भी एकबार मात्र उच्चारित होनेपर मनुष्य के अशेष पापराशि विनष्ट

तथा सप्तमे प्रह्लाद चरिते—(७।९।२३)

६१०। "दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-,
आयुः श्रियो विभव इच्छति यां जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपित-हास-विजृम्भितभ्रू-,
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥"

(भाः ७।९।१७,१८)

६११। "तस्मादहं विगत-विक्लव ईश्वरस्य,
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुण-विसर्गमनुप्रविष्टः,
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥"

६१२। "सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया,
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो,
दुर्गाणि ते पदयुगालय-हंससङ्गः ॥"

हो जाते हैं, अतएव श्रीहरि भिन्न मुमुक्षु के लिए कौन आश्रयणीय है ॥६०९॥ तथा सप्तमस्थ प्रह्लाद चरित्र में—हे विभो ! मैंने सबकुछ देखा, स्वर्ग के आधिपत्य, लोकपालों की विभूति, आयुः विषयभोग सबकुछ ही मेरे पिता के कोपयुक्त भ्रुकुटियुक्त हास्य से सबकुछ ही विलुप्त हो गए थे, आपने तो उसको समाप्त करदिया है ॥६१०॥ मैं नीच हूँ, तथापि निजबुद्धि से ही श्रीहरि के गुणानुवर्णन सबप्रकार से करूँगा, कारण श्रीगुण कथन से मायिक जगत में अवस्थित होकर भी मानव पवित्र होजाता है ॥६११॥ अतएव मैं प्रिय सुहृद,परदेवता, श्रीनृसिंह की लीला का श्रवण करूँगा, जिसको ब्रह्माजीने कहा है, और आपके भक्त के सङ्गसे आपकी कथा श्रवणकर विषय वैराग्य, तदनन्तर आपके गुणानुवर्णन अनन्तर निखिल दुःख ध्वंस हो

तथा दशमे—(१०।३१।६)

६१३। तव कथामृतं तप्तजीवनं, कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं, भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः॥

तथा चोद्धवोक्तौ—(भा: १०।३१।६)

६१४। "गायन्ति ते विशद-कर्म गृहेषु देव्यो,
राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणञ्च।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः,
पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयञ्च॥"

द्वादशे मार्कण्डेयोक्तौ—(१२।८।४०)

६१५। "किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः,
संस्पन्दते तमनु वाङ्मन इन्द्रियाणि।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च,
स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः॥"

जायेगा ।।६१२।। तुम्हारे विरहमें हमसव की मृत्यु अवश्य होती, किन्तु तुम्हारी कथामृत को पान करके मृत्युसे हमसव को वञ्चित होना पड़ा। सुतप्तजीवन के लिए तुम्हारी कथा ही अमृत है, कविगण ब्रह्मा प्रभृति ने इस कथामृत की स्तुति की है, देवभोग्य अमृत को तो उन्होंने इससे तुच्छ ही किया है, कामकल्मष अपहारक भी है, प्राकृत अमृत विरुद्धधर्मा है, और यह श्रवण मात्रसे मङ्गलप्रद है, अपर अमृत तो अनुष्ठान सापेक्ष है, यह श्रीमद् को शान्त करती है, उक्त अमृत तो मदोन्मत्त करता है, इस प्रकार कथामृत विस्तृत रूपसे मिलता है, कथा प्रदाता से ही, अतएव वे सब भूरिदा होते हैं ।।६१३।। इस उपाय से सत्वर ही जरासन्धवध होगा, कारण कारागारावरुद्ध राजाओं की पत्नीगण निजनिज गृहमें वालक लालन पालन के समय तुम्हारे विशद कर्म का गान करती हैं, शत्रु जरासन्धवध, निज निज पतिओं के मोक्ष, वत्स रोदन न करो कृष्ण ऐसा करेंगे। जिस प्रकार गोपीगण

६१६। (भा: १२।१२।४८,४९)

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा, न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं,तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥

६१७। तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं,तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्
तदेव शोकार्णव-शोषणं नृणां,यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

भगवन्नामकीर्त्तनाद् यदृच्छया महापातकादीन्यपि नश्यन्ति। तत्राह षष्ठे यमदूत-विष्णुदूत-संवादे—(६-२-९,१०)

६१८। "स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥

शङ्खचूड़वध निज मोक्षका गान करती है, रावणवध एवं सीता उद्धार भी गाती हैं, कंस कारागार से वसुदेव देवकी का मोक्षका गान करती हैं,इस प्रकार उनसव की कृपासे तुम्हारा यह कार्य सफल होगा ।।६१४ द्वादशस्कन्ध में मार्कण्डेय की उक्ति में अन्तर्यामी आप हैं, अतएव प्राणादि सव ही आपके अधीन हैं, आपकी स्तुतिमें भी मेरी स्वतन्त्रता नहीं है, हे विभो ! मैं आपकी स्तुति क्या करूँ। आप की प्रेरणा से ही प्राण का स्पन्दन होता है। उसके पश्चात् वाणी प्रकाशित होती है, केवल प्राकृत जनके ही नहीं किन्तु शिव ब्रह्मादि सकल व्यक्ति के प्रेरक आप ही हैं। इस प्रकार आप सवके प्रवर्त्तक हैं, किसी की स्वतन्त्रता नहीं है, वाणी प्रभृति से जो लोक आपका भजन करते हैं, आप उनके भाववन्धु अर्थात् आत्मवन्धु है, पिता प्रभृति शरीरके वन्धु होते हैं। आपकी कृपालुताकी सीमा नहीं है ।।६१५।। जिस से भगवान् अधोक्षज की कथा कही नहीं जाती है, वे सव असत् कथा कहने वाली होती है, वह ही सत्य है, वह ही मङ्गल है, वह ही पुण्य है, जिस में भगवद के गुण वर्णन होते हैं।।६१६।। वह ही रम्य, है, वह ही रुचिर है, वही नूतन नूतन है, निरन्तर मनका महोत्सव है, शोकसिन्धु शोषणकारी भी वह ही है, जिसमें उत्तमश्लोकके गुण कीर्त्तनहै ।।६१७।। श्रीभगवन्नाम कीर्त्तन से यदृच्छया महापातकादि पापों का नाश हो

६१९। सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।

नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥,,

तथा च सूतशौनक-संवादे प्रथमे —(१।१।१४)

६२०। "आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।

ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥"

तृतीये ब्रह्मस्तुतौ—(३।९।१५)

६२१। "यस्यावतार-गुणकर्म-विड़म्बनानि,

नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।

ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा,

संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥"

तथा द्वादशे—(१२।१२।४७,४८)

६२२। "पतितः स्खलितश्चार्त्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन् ।

हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥

जाता है,-षष्ठस्कन्धस्थ यमदूत विष्णुदूत सवाद में कथित है-चोर, मद्यप, मित्रहा, ब्रह्मघाती, गुरुतल्प गमनकारी स्त्री, राजा, पिता, गो हननकारी, एवं एतद् व्यतीत अपर पातकी भी श्रीहरि नामसे शुद्ध होते हैं ॥६१८॥ समस्त पापाचारण कारियों की शुद्धि श्रीविष्णु नाम ग्रहण से ही होती है, कारण श्रीविष्णु के नाम ग्रहण करने स श्रीविष्णु की मति नामोच्चारण कारिके प्रति ही जाती है कि यह मेरा रक्षणीय है ॥६१९॥ सूतशौनक सवाद में वर्णित है-घोर संसार को करलेनेके पश्चात् विवश होकर भी यदि श्रीहरिका नामग्रहण करता है तो मानव सद्य उससे मुक्त होजाता है, कारण जिस से मृत्यु भी डरती रहती है ॥६२०॥ तृतीय स्कन्ध की ब्रह्मस्तुति में उक्त है-जो मानव मृत्युके समय श्रीहरिके गुणकर्म प्रकाशक नामावली को विवशता से भी ग्रहण करता है वह अनेक जन्मों के पापराशि से मुक्त होकर सहसा श्रीहरिधाम को प्राप्त करता है, ऐसे श्रीहरि की मैं शरण लेता

६२३।
संकीर्त्त्यमानो भगवाननन्तः,श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं,यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥"

तथा च साङ्केत्यादिना परिगृहीतमप्यशेषाघं हरति । तत्राह षष्ठे (६।२।१४,१३)

६२४। **"साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।**
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

६२५। **अथैनं मापनयत कृताशेषाघ-निष्कृतम् ।**
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥"

अजामिलोपाख्याने दूतं प्रति यमोक्तौ—(भाः ६।३।२३)

६२६। **"नामोच्चारण-माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।**
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥"

(भाः ६।२।४९)

६२७। **"म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।**
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥"

है ॥६२१॥ द्वादशस्कन्ध में वर्णित है–पतित स्खलित आर्त्त जन भी यदि विवश होकर श्रीहरिनाम ग्रहण हरये नमः कहकर करता है तो वह सवपातकों से मुक्त हो जाता है ॥६२२॥ भगवान् अनन्त नाम ग्रहणमात्र से ही नामग्रहण कारिके हृदय में प्रविष्ट होकर अशेषपापों को विनष्ट करदेते हैं, सूर्य जैसे अन्धकार को विनष्ट करते है, प्रवल वायु जिस प्रकार मेघ को विनष्ट करदेती तद्रूप श्रीहरिनाम निखिल कल्मष नाश करते हैं ॥६२३॥ सङ्केत प्रभृतिसे भी श्रीहरिनाम ग्रहण करने पर अशेष पापनष्ट होते हैं, षष्ठस्कन्ध में वर्णित है–सङ्केत से परिहास गान में हेलामें भी श्रीहरिनाम ग्रहण से अशेष पाप विनष्ट होते हैं ॥६२४॥ इस को मतलाओ, क्यों कि यह अशेष पापों से मुक्त होगया है, कारण यह मुमुर्षु अवस्था में ही श्रीहरिनाम ग्रहण किया

(भा: ६।२।३२-३०)

६२८। "अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तम-दर्शने।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥

६२९। अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः।
वैकुण्ठनाम-ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ?

६३०। क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः।
क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥"

तथा सर्पादि—सन्दष्टोऽप्यवशतयोच्चारणाशक्तौ येन केनापि प्रकारेणोच्चारितमपि यातनां परिहरतीति। तत्राह-(भा: ६।२।१५)

६३१। "पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशो जल्पन् पुमान्नार्हति यातनाम् ॥"

६३२। तदेव प्रकाशयति प्रथमे परीक्षिदुक्तौ – (१।१९।१५)

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा,गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा, दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥

है ॥६२५॥ अजामिल उपाख्यान में यमराज ने दूत को कहा पुत्रका। श्रीहरिनाम ग्रहण माहात्म्य को देखो ! अजामिल भी जिससे मुक्त होगया है।।६२६॥ म्रियमाण अजामिल नारायण नामसे पुत्रको बुलाकर वैकुण्ठ को गया तो श्रद्धासे श्रीहरिनाम ग्रहण करने से उत्तम गति तो होगी ही ॥६२७॥ मैं दुर्भगा हूँ, तणापि विबुध के दर्शन से अवश्य मङ्गल होगा, जिस से आत्मशान्ति होगी ॥६२८॥ अन्यथा म्रियमाण अशुचि अजामिल की जिह्वा कैसे श्रीहरिनाम उच्चारण करसकती है ? (६२९) कहाँ मैं कपटी पापी ब्रह्महा निर्लज्ज हूँ, और कहाँ "नारायण" यह मङ्गलमय श्रीहरि का नाम ? (६३०) साँप काटने पर मनुष्य की बोलेने की शक्ति नहीं रहती है, उस समय उच्चारण करने की शक्ति नहीं रहती है, तथापि जिस किसी प्रकार से थोड़ा किसी अंश विशेष भी यदि श्रीहरिनाम का उच्चारण होताहै

६३३। तथा षष्ठे अजामिलोपाख्याने – (६।२।४६)

नातः परं कर्मनिबन्ध-कृन्तनं,मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्त्तनात् ।

न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो,रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा

अज्ञानादपि भगवन्नामोच्चारणेन यदृच्छया अघानि भस्मीभवन्ति । तत्राह (भाः ६।२।१८,१९)

६३४। **"अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोक-नाम यत् ।**

संकीर्त्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥

६३५। **यथा गदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।**

अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥"

ननु प्रायश्चित्तादिभिरपि पातक-निर्हरणं स्यात् ? नैवम्, तत्राह (भाः ६।२।११,१२)

तो पाप यातना नष्ट हो जाती है । उसको कहते हैं-पतित स्खलित भग्न संदष्ट, तप्त, आहत होकर अवश अवस्था में श्रीहरि इस प्रकार बोलने पर मनुष्य क्लेशसे मुक्त हो जाता है ॥६३१॥ परीक्षित की उक्ति इसमें प्रमाण है-हे विप्रगण ! मुझे आपकी शरणागत जाने, देवी गङ्गा भी मुझे शरणागत जाने, श्रीहरि चरणों में मनोधारण मैंने किया है, द्विज प्रेरित तक्षक हो अथवा मायाही हो, मुझ को यथेष्ठ दंशन करें, आपसव श्रीविष्णुचरित्र गान करें ॥६३०॥ षष्ठस्कन्ध के अजामिल उपाख्यान में–मुमुक्षु व्यक्ति के लिए भगवत् चरणारविन्द के यशोगान को छोड़कर कर्मबन्धनसे मुक्तहोने का कोई उपाय नहींहै, पुनर्वार वहमनः व्यक्तिगत कर्म में आसक्त नहीं होता है, इससे हटकर और कोई उपाय नहीं है, जिससे पाप नष्ट हो ॥६३३॥ अज्ञान से अथवा ज्ञानपूर्वक भगवान् उत्तमश्लोक के नाम कीर्त्तन करने से अनल जिस प्रकार काष्ठ राशिको जलादेतो है, उस प्रकार समस्त पाप दग्ध हो जाता है ॥६३४॥ जिस प्रकार शक्तिशाली औषधि सेवनसे औषधि के आत्मगुण प्रकाशित होते हैं, उस प्रकार श्रीहरिनामरूप मन्त्र उच्चारण से सबपाप विनष्ट हो जाते हैं ॥६३५॥

६३६।
न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि,स्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै, स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥
६३७।
नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते, मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे
तत्कर्म-निर्हारमभीप्सतां हरे,र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥"

अतः प्रायश्चित्तादयो महापातक-निष्कृतौ। न क्षमाः; तत्राह—
(भाः ६।१।१८)

६३८। "प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण पराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥"

पातक-निर्हरणाय पुंसो भगवतो नामसङ्कीर्त्तनमेवालम्; तत्राह-
(भाः ६।३।२४,२५)

६३९। "एतावतालमघ-निर्हरणाय पुंसां,
सङ्कीर्त्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि,
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥

शास्त्रज्ञ व्यक्तिगण द्वारा उपदिष्ट पापनाशक प्रायश्चित्त व्रतादिके द्वारा उस प्रकार पापनाश नहीं होताहै,जिस प्रकार श्रीहरिके गुणोपलम्भक नाम उच्चारण से होता है ।।६३६।। प्रायश्चित्तादि का अनुष्ठान करने पर पुनः पुनः पाप में प्रवृत्ति यदि होती रहती है, तब प्रायश्चित्त को छोड़कर पापनाशेच्छु व्यक्ति श्रीहरि गुणगान ही करे, श्रीहरि के गुणगान सत्त्ववर्द्धक सर्वथा है ।।६३७।। अतएव प्रायश्चित्त प्रभृति महापातक से निष्कृति करने में समर्थ नहीं है-षष्ठस्कन्ध का विवरण इस प्रकार है-प्रायश्चित्त समूह नारायण पराङमुख व्यक्ति को प्रविष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। जिस प्रकार सुराकुम्भ को गङ्गा पवित्रकर नहीं सकतीहै ।।६३८।। मानवके पापों की विनष्ट करनेके लिए श्रीहरिके

६४०। प्रायेन वेद तदिदं न महाजनोऽयं,
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।
त्रय्यां जड़ीकृत-मतिर्मधुपुष्पितायां,
वैतानिके महति कर्म्मणि युज्यमानः ॥"

नाम सङ्कीर्त्तन ही समर्थ है; कहते हैं—भगवाने के गुणकर्मनाम के सङ्कीर्त्तन ही मानव के पापबिनाशक है, पापी अजामिल ने पुत्र को नारायण नाम से पुकार कर मुक्ति प्राप्तकर लिया (६३९) एकवार उच्चारित नामाभाससे कैसे सब पापक्षय होता है, श्रद्धाभक्ति आवृत्ति की भी तो आवश्यकता है ? "सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद् विमुच्यते" अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्निति । श्रवण कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भूतकर्मणः । जन्मकर्मगुणानाञ्च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् इत्याद्यस्मिन्न्वपुराणे तत्र तत्र पठ्यते । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशमिति । तस्मात् संकीर्त्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् महतामपि कौरव्यविध्यैकान्तिकनिष्कृत मित्यादिना सम्यक् कीर्त्तनादेवमुच्यते । इस प्रकार मनु आदियों ने द्वादशाशब्द अनुष्ठान का विधान किया है, इसलिए एकवार नाम उच्चारण से पाप क्षय कहना अनुचित है ? इसके उत्तर में कहते हैं—भगबान् के गुणकर्म नाम के सम्यक् कीर्त्तन पापनाशके लिए आवश्यक नहीं है, अलं शब्द वारणार्थमें प्रयुक्त होता है । अजामिल महापातकी होकर भी "नारायण" नाम पुत्रका कहकर श्रीहरिनाम का सम्यक् कीर्त्तन करके नहीं, अशुचि, असुस्थचित्त होकर भी मुक्ति प्राप्त किया है,केबल पापनाश ही नहीं, पापनाश तो नामाभास से ही होता है, आवृत्ति श्रद्धादि विषय तो पापबासना क्षयके लिए आवश्यक है, श्रीहरि के गुणानुवाद सत्त्ववृद्धिकारक है ॥६३९॥ तब तो मनु प्रभृतिके द्वादशवर्ष प्रायश्चित्तका विधान ब्यर्थ है ? इसका समाधान करते हैं, महाजन मनु प्रभृति । असका अभिप्राय इसप्रकार है-जिसप्रकार मृतसञ्जीवनी औषधि को न जानकर वैद्यगण रोगनाशक त्रिकटुनिम आदि का

ये भगवतो नामकीर्त्तनं कुर्वन्ति, ते पातकसम्बन्धेऽपि यमदण्डं नार्हन्ति; तत्राह—(भा: ६।३।२६)

६४१। "एवं विमृष्य सुधियो भगवत्यनन्ते,
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम्।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथो यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥"

भगवत्सङ्कीर्त्तन—कर्त्तरि यमस्य दण्डकर्त्तृत्वमेव नास्ति; तत्राह (भा: ६।३।२७)

६४२। "ते देवसिद्ध-परिगीत-पवित्रगाथा,
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः।
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्,
नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥"

विधान देते हैं, उस प्रकार स्वयम्भु शम्भु प्रभृति द्वादशजन को छोड़ कर अन्य महाजनगण अति गुह्य श्रीहरिनाम को न जानकर द्वादशाब्दादि का विधान देते हैं। जिस प्रकार माया से मुग्ध होकर उसको मधुर मानते हैं, इस प्रकार पुष्पस्थानीय मनोहर वेदवाक्य से मुग्ध होकर अग्निष्टोमादि विपुलकर्म में श्रद्धा होती है, स्वल्प कर्म नामग्रहण में प्रवृत्ति नहीं होती है, इसका ग्राहक ही नहीं है, सिंह है अतएव कुत्ता को भगाने के लिए उस को लगाया नहीं जाता है, अति तुच्छ पाप निरास के लिए श्रीहरिनाम का विनियोग नहीं करते हैं। अथवा नाम माहात्म्य का ज्ञान होनेपर सवमुक्त ही जायेंगे, अतएव अन्यविधान का प्रवर्त्तन हुआ है ॥६४०॥ जो लोक भगवान के नाम कीर्त्तन करते हैं, वे लोक पातक सम्बन्ध होने परभी यमदण्ड का अधिकारी नहीं होते हैं। सुधीगण इस प्रकार विचार कर श्रीहरि के प्रति भक्तिवाद स्थापन करते हैं, उन में पातक होने परभी वे लोक दण्ड भागी नहीं होते हैं, श्रीहरि कीर्त्तन उनके पातक को विनष्ट कर

आस्तां तावद्भगवद्भक्तानां स्वपावनत्वम्, अपि तु भगवद्धर्मच्युतान् कुयोगिनोऽपि सर्वतो रक्षन्ति; तत्राह—(भा: ६।३।१८)

६४३।
भूतानि विष्णोः सुर-पूजितानि, दुर्दर्श-लिङ्गानि महाद्भूतानि
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो, मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥"

तर्हि यमदण्ड-कर्त्तृत्वं कुतः? तत्राह—(भा: ६।३।२८,२९)

६४४। "तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द,-
पादारविन्द-मकरन्द-रसादजस्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै,-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णाम् ॥

६४५। जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं,
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि,
तानानयध्वमसतोऽकृत-विष्णुकृत्यान् ॥"

देते हैं ॥६४१॥ भगवत् नामसङ्कीर्त्तन कर्त्ता के प्रति यमदण्ड भी नहीं है, देवसिद्ध प्रभृति के द्वारा गीत पवित्रगाथा को गाते हैं—ऐसे समदृश भगवत् प्रपन्न साधुगण दण्डप्राप्त होने के योग्य नहीं होते हैं, वे सव श्रीहरि के गदासे रक्षित होकर रहते हैं, काल, एवं हमसव उन सवको दण्ड देने में असमर्थ हैं ॥६४२॥ भगवद् भक्तगण स्वयं तो पावन है ही, भगवद् धर्मच्युत कुयोगि को भी सव प्रकार से रक्षाकरते हैं। सुरपूजित दुर्लभ दर्शन महाअद्भुत विष्णुभक्तगण को समस्त विपत्तियों से रक्षा करते हैं, मानव को अग्नि प्रभृति भयों से रक्षा करते हैं ॥६४३॥ तव यमराज का दण्ड प्रदान कार्य का स्थल कहाँ होगा? कहते हैं—किसको दण्डदेने के लिये यमपुर में लाना है? उत्तर—दुष्टों को यमपुर में ले आना है, कौन दुष्ट होता है? मुकुन्द पादारबिन्दके मकरन्द में विमुख व्यक्तिको यमपुरीमें ले आओ, कारण

इमं धर्मं देवा ऋषयोऽपि न जानन्ति । तत्राह-(भा: ६।३।१९)

६४६। **धर्मञ्च साक्षात्‌भगवत्-प्रणीतं,न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः,कुतश्च विद्याधर-चारणादयः ॥**

तर्हि के जानन्ति ? तत्राह—(भा: ६।३।२०,२१)

६४७। **"स्वयम्भुर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।**
प्रह्लादो जनको भीष्मो वलिर्वैयासकिर्वयम् ॥

६४८। **द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवत भटाः ।**
गुह्यं विशुद्धं दुर्वोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥"

यमदूतानां भगवत्पराणां दर्शन-क्षमता नास्तीति; तत्राह-भा: ६।३।३४

६४९। **"इति स्वभर्त्तृ-गदितं भगवन्महित्वं,**
संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्कुरास्ते ।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमाना,
द्रष्टुञ्च बिभ्यति ततःप्रभृति स्म राजन् ॥"

निष्किञ्चन परमहंसगण रसज्ञ होते है, और वे अनवरत श्रीमुकुन्द चरणों की सेवा करते हैं, इस प्रकार वस्तु को छोड़कर धर्मशून्य गृह में तृष्णा से बद्ध रहते हैं, वे लोक यमपुरी में रहने वाले होंगे । जिस की जिह्वा भगवद् गुणनामधेय को नहीं कहती है, चित्त श्रीहरि के चरणारविन्द का स्मरण नहीं करता है, जिसका मस्तक कृष्ण को प्रणाम नहीं करता है, उन असत् को ले आओ, जिस ने विष्णु का कैङ्कर्य नहीं किया है ॥६४४-५॥ इस धर्म को देवता एवं ऋषिगण भी नहीं जानते हैं । तत्राह-(६।३।१९) धर्म, साक्षात् भगवत् प्रणीत है, ऋषिगण एवं देवगण भी इस को जानते नहीं हैं, सिद्धगण, असुर, मनुष्यगण भी नहीं जानते हैं, विद्याधर चारण प्रभृति कैसे जान सकते हैं ? (६४६) तव कौन जानता है ? तत्राह-(६।३।२०,२१) स्वयम्भु, नारद, शम्भु, कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, वलि, शुकदेव,और हम जानते हैं ॥६४७॥ हे भटगण ! ये द्वादश जन हमसव

भगवत्परायणा अपि स्वप्नेऽपि यमं तद्भटांश्च न पश्यन्ति;
तत्राह—(भा: ६।१।१६)

६५०। "सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो,
निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्,
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्ण निष्कृताः ॥"

इदानीं स्मरणं निरूपयति तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।५।१३)

६५१। सा श्रद्दधानस्य विवर्द्धमाना,विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः
हरेः पदानुस्मृति-निर्वृतस्य,समस्त-दुःखात्ययमाशु धत्ते ॥

तथा जय-विजय-शापे--(भा: ३।१५।३६)

६५२। "भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो,
यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥
मा वोऽनुताप-कलया भगवत्स्मृतिघ्नो,
मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥"

भागवत धर्म को जानते हैं, धर्म अत्यन्त गोपनीय, विशुद्ध एवं दुर्वोध है, जिस को जानने से ही मुक्ति होती है ॥६४८॥ भगवद् भक्तगण के सामने यमदूतगण नहीं आते हैं, यमकिङ्करगण, प्रभुधर्मराज के मुख से भगवत् महिमा को सुनकर अतिशय विस्मित हो गए थे,हे राजन् ! तव से यमदूतगण विष्णुभक्त को देखकर भयभीत हो जाते हैं ॥६४९॥ भगवत् परायण जनगण स्वप्न में भी यमराज एवं उनके दूतों को नहीं देखते हैं-एकवार मात्र गुणरागि व्यक्ति यदि श्रीकृष्ण चरणारविन्द में मनोनिवेश करता है तो वह यमराज को अथवा उनके दूतों को स्वप्न में भी कभी भी नहीं देखता है ।।६५०॥ सम्प्रति स्मरण अङ्ग का निरूपण कर रहे हैं, तृतीयस्कन्ध के विदुरमैत्रेय संवाद में कथित है, मति हरि कथामें प्रविष्ट होनेपर दृढ़ामति से ग्राम्यसुख में विरक्ति होती है, हरि चरणारविन्द की स्मृति से आनन्दितचित्त समस्त दुःखों

६५३। तथा च प्रथमे व्यासनारद-संवादे—(भा: १।५।१६)

न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजे,न्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुन,र्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो जनः ॥

६५४। तथा च चतुर्थे दक्षयज्ञभङ्गे सिद्धविद्याधर-स्तुतौ (४।७।३५)

अयं त्वत्कथामृष्ट-पीयूषनद्यां,मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्त्तोऽवगाढ़ो न सस्मार दावं,न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः

६५५। तथा च पृथुचरिते—(भा: ४।२०।२९)

भजन्त्यथो त्वामतएव साधवो,व्युदस्तमाया-गुणविभ्रमोदयम्
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां,निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥"

को अतिक्रम करता है ॥६५१॥ जयविजय के शाप प्रसङ्ग में वर्णित है ब्राह्मणों ने कहा हम लोकों ने अपराध किया है, अपराधी व्यक्तिके लिए जो दण्ड उचित है, आपने दिया है, आपका कोई अपराध नहीं है, अपराध तो हमारे ही है। अनुताप, ईश्वर आज्ञा अतिक्रम से उत्पन्न पापका विनष्ट करता है, किन्तु आपके अनुताप कृपा प्राप्ति के लिए हुआ है, उसके लेशसे भी हमारे अधोऽधो मूढ़योनि में भ्रमण होने परभी भगवत् स्मृति प्रतिघातक मोह नहीं होगा। किन्तु मोहभी स्मृति के लिए ही हो ॥६५२॥ प्रथमस्कन्धस्थ व्यास नारद सवाद में कथित है-हे अङ्ग ! मुकुन्द के चरणारविन्द की सेवारत जन अपर साधक के समान संसार को प्राप्त नहीं करते हैं, कुयोनि प्राप्त होने पर भी ससृति नहीं होती है, श्रीमुकुन्द के चरणारविन्द को स्मरण कभी त्याग नहीं कर सकते हैं। कारण वे लोक भक्तिके द्वारा भगवान को वशीभूत करते हैं,अथवा उनसवका आग्रह भक्तिरसमें ही है। श्रीहरिने कहा है-यतते च ततो भूयः संसिद्धौकुरुनन्दन। पूर्वाभ्यासेन तेनैवह्रीयते ह्यवशोऽपि सः ॥६५३॥ चतुर्थस्कन्ध के दक्षयज्ञभङ्ग प्रसङ्ग में सिद्ध विद्याधर स्तुतिमें वर्णित है-सिद्धगण हरिकथामृत का पान आनन्द से करते हैं, हमारे मनरूप हस्ती श्रीहरि कथारूप शुद्ध अमृत नदी में

तथा च द्वादशे – (१२।१२।५४,५५)

६५६। यशःश्रियामेव परिश्रमः परो,वर्णाश्रमाचार-तपःश्रुतादिषु अविस्मृतिः श्रीधर-पादपद्मयो,र्गुणानुवाद-श्रवणादिभिर्हरेः ॥

६५७।

अविस्मृतिः कृष्ण-पदारविन्दयोः,क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं,ज्ञानञ्च विज्ञान-विरागयुक्तम् ॥"

ततः पादसेवनं निरूपयति श्रुत्यध्याये —(भा १०।८७।२७)

६५८। "निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढ़योगयुजो हृदि य,-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्ड-विषक्तधियो,
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि-सरोजसुधाः ॥"

प्रविष्ट होकर दावाग्नितुल्य संसार ताप को स्मरण नहीं करता है, ब्रह्मसायुज्य प्राप्त मुनिके समान उससे निकलना भी नहीं चाहता है ॥६५४॥ पृथुचरित में कथित है–आप दीनवत्सल हैं, अतएव साधुगण भी निष्काम हैं और ज्ञान प्राप्तकर लेने के बाद भी आपका भजन करते हैं, आपके चरणारविन्द के अनुस्मरण को छोड़कर उनकी अपर फल भी आशा नहीं है ॥६५५॥ द्वादशस्कन्ध में वर्णित है— वर्णाश्रमाचार प्रभृति में महान् परिश्रम, कीर्त्ति के लिए ही होता है, श्रीभगवत् चरणारविन्द की स्मृति श्रीहरि कीर्त्तन से होती है ॥६५६॥ श्रीकृष्ण पदारविन्द की स्मृति अभद्र को नाश करती है, मङ्गल प्रदान करती है, सत्त्वशुद्धि परमात्मभक्ति विज्ञान विरागयुक्त ज्ञान प्रदान करती है ॥६५७॥ अनन्तर पादसेवन को निरूपण कर रहे हैं, श्रुति अध्याय में कहा गया है-परम प्रिय श्रीहरि को द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यातव्यः, इत्यादि श्रुतिध्यान करने के लिए उपदेश करती है, प्राणमन इन्द्रिय प्रभृति को संयमन कर मुनिगण दृढ़ योग द्वारा हृदय में जिस वस्तु का ध्यान करते, अरिगण भी श्रीहरि को

तथा च मित्रविन्दाया उक्तिः—(भाः १०।८३।१२)

६५९। "यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्,
निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः।
भ्रातृंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौक,-
स्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम् ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।४।१५)

६६०। को न्वीश ते पादसरोजभाजां, सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह
तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन्, भवत्पदाम्भोज-निषेवणोत्सुकः ॥

तथा च ब्रह्मस्तुतौ—(भाः ३।९।६)

६६१। "तावद्भयं द्रविण-देह सुहृन्निमित्तं,
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्त्तिमूलं,
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥"

स्मरण कर उनको ही प्राप्त किये हैं, स्त्रीगण भी अहीन्द्र देह सदृश भुजद्वय द्वारा आलिङ्गित होकर जिन की परिच्छिन्न दृष्टि होगई है, वे भी उनको ही प्राप्त कर लिए है, हमसव श्रुतिगण अपरिच्छिन्न दृष्टि होने परभी उनसव की कृपां से हमसव श्रीहरि को प्राप्तकर सकेंगे। इस प्रकार ही स्मरण का फल है ॥६५८॥ जिन्होंने स्वयम्बर में स्वयं उपस्थित होकर एक सिंह जिस प्रकार कुकुर समूह को जीतकर जिस प्रकार उसके ग्रास को छिन लेता है, उस प्रकार मुझ को स्वीकार किया, मेरा भाई भी विरोधकर रहा था, उन श्रीहरि के चरण धौत करने के लिए ही पुनः पुनः जन्म हो ॥६५९॥ तृतीयस्कन्धस्थ विदुर मैत्रेय संवाद में उक्त है—हे ईश ! मैं अज्ञान निवृत्ति मात्र की कामना नहीं करता हूँ, किन्तु निषेवणोत्सुक हूँ, असम्भव जानकर मेरा मोह होता है, तथापि हे भूमन् ! धर्म अर्थ काम मोक्ष को नहीं चाहता हूँ, मैं आप के चरणार विन्दों की सेवा करने में उत्सुक हूँ ॥६६०॥

तथा च कपिल–देवहूति संवादे —(भा: ३।२५।४३)

६६२। "ज्ञान-वैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥"

६६३। तथा च चतुर्थे देवान् प्रति पृथोरुपदेशे —(४।२१।३२)

विनिर्धुताशेष-मनोमलः पुमान्,असङ्ग-विज्ञान-विशेष-वीर्यवान्
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुन,र्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥

तथा च प्रचेतोरुद्र-संवादे —(भा: ४।२४।५५)

६६४। "तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत् पादमूलं विना बहिः ?

यावदाचातुर्वर्ग्यं श्रेय इच्छन्ति, तदपि पादमूलसेवनयैव हि भवति । तत्राह ध्रुवचरिते—(भा: ४।८।४१)

६६५। "धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥"

तब तक ही शोकभय आदि एवं लोभादि रह जाते हैं, जबतक मनुष्य आपके चरणारविन्द की शरण ग्रहण नहीं करते हैं ॥६६१॥ ज्ञान वैराग्ययुक्त भक्तियोग द्वारा योगिगण अकुतोभय नामक पाममूल को परम मङ्गल के लिये प्राप्त करते हैं ॥६६२॥ चतुर्थस्कन्ध में देवगण के प्रति पृथुमहाराज का उपदेश इस प्रकार है-अशेष मनोमल विनष्ट वैराग्य, अनुभव द्वारा विशेष शक्ति सम्पन्न होकर श्रीहरि के चरण में शरण लेनेपर क्लेशकर संसृति को प्राप्त नहीं होतेहैं ॥६६३॥ प्रचेता रुद्रके संवादमें वर्णित है-सज्जनगणके लिए दुष्प्राप्य दुराराध्य श्रीहरि को भक्तियोग द्वारा आराधना कर उन के चरणारविन्द को सेवाको छोड़कर अपर पदार्थ की कामना कौन करेगा ॥६६४॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कामना की पूर्त्ति श्रीहरि चरण सेवन से ही होती है, ध्रुवचरित में कथित है-श्रेयःरूप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की इच्छा जो जन करता है, उसकी प्राप्ति का मूल कारण ही श्रीहरि के चरण

तथा च दशमे भगवद्रु क्मिणी-संवादे—(१०।६०।४२)

६६६। "कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध,-
माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य,
मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥"

तथा च दशमे श्रुत्यध्याये—(१०।८७।१६)

६६७। "इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोक-मल,-
क्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ।
किमुत पुनः स्वधाम-विधुताशय-कालगुणाः,
परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥"

(भा: १०।८७ २०)

६६८। "स्वकृतपुरेष्वमीष्ववहिरन्तरसंवरणं,
तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोऽंश-कृतम् ।
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं,
भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥"

सेवन है ॥६६५॥ दशम के भगवद्रुक्मिणी संवाद में उक्त है-जो कुछ कहा है कि समानरूप गुणशील सम्पन्न को वरण करना उचित है, उसके उत्तर में कहती है-सज्जनों ने कहा है-मोक्षप्रद श्रीहरि चरण ही है, गुणालय भी है, उसको छोड़कर कौन स्त्री ऐसी है, जो मरण धर्मा व्यक्ति को वरण करेगी ॥६६६॥ दशम के श्रुत्यध्याय में वर्णित-हे अखिल लोकाधिपते ! विवेकी व्यक्तिगण, अखिल कलमष नाशक श्रीहरि चरितामृत में अवगाहन कर संसार ताप को विनष्ट करते है, हे परम ! जो लोक समस्त कर्माशय को शुद्धकर अजस्र सुखस्वरूप आपका भजन करता है,वह कैसे अपर वस्तु की कामना करेगा ॥६६७ स्वकर्मोपार्जित शरीर में रहने वाले जीव को श्रीहरि के अंश कहते हैं,

भगवच्चरणारविन्द-सौगन्ध्यं यैर्नाघ्रातं त एवान्यं भजन्ति। तत्र व्यतिरेकेणाह—(भा: १०।६०।४५)

६६९। "त्वक्-श्मश्रु-रोम-नख-केश-पिनद्धमन्त,-
मांसास्थि-रक्त-कृमि-विट्-कफ-पित्त-वातम्।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढ़ा,
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री॥"

भगवच्चरणारविन्दं ये भजन्ति, तानृते भगवानपि नान्यं भजतीति। तथा च चतुर्थे प्रचेतोनारद-संवादे—(४।३१।२२)

६७०।
श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च,द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत् स्वपूर्णः।
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः,कथममुमुद्विसृजेत् पुमान् कृतज्ञः?

तत्राह दशमे भगवज्जनक-संवादे—(१०।८६।३३)

६७१। "को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत् पुमान्।
निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः॥"

श्रीहरि के साथ जीवकी समता नहीं है, श्रीहरि आवरण शून्य हैं, इस प्रकार जीवकी गति को जानकर कविगण काम्यकर्म को छोड़कर श्रीहरि चरण की सेवामें आत्मसमर्पण करतेहैं॥६६८। भगवच्चरणार विन्द की सुगन्ध जिस ने प्राप्त नहीं किया वे ही श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्यका भजन करते हैं, उक्त विषय इस प्रकार हैं-त्वक्, श्मश्रु, रोम, नख, केशयुक्त एवं अन्तर में मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विट्, कफ, वात्, पित्त पूर्ण जीवित शव को मनोहर प्राणवल्लभ मानकर स्त्रीगण भजन करतीं हैं। और वे ही होतीं हैं, जो श्रीहरि के चरणारविन्द का अनुसन्धान प्राप्त नहीं किए है॥६६९॥ जो लोक भगवान् का भजन करता है, भगवान् भी उसको छोड़कर किसी का भजन नहीं करते हैं, चतुर्थस्कन्ध के प्रचेता नारद संवाद में उक्त है-श्रीहरि भक्ताधीन हैं, जो सब राजन्यवर्ग, लक्ष्मी को भी नहीं चाहते,

तथा चैकादशे श्रीभगवदुद्धव-संवादे—(११।२९।५)

६७२। "त्वं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां,
सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ?
को वा भजत् किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै,
किंवा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥"

तथा च तृतीये विदुरमैत्रय-संवादे—(३।५।३९,४१)

६७३। धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवा,स्तापत्रयेणोपहता न शर्म।
आत्मंल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रि,च्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥

६७४। यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या,संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा,व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥

श्रीहरि स्वतः पूर्ण हैं, केवल भृत्यवर्ग में अनुरक्त रहते हैं, कृतज्ञ प्रभु कैसे भक्त को परित्याग करेंगे ॥६७०॥ कौन मनुष्य ऐसा होगा जो आपको जानकर भी आपके चरणारविन्द को परित्याग करेगा, आप तो निष्किञ्चिन शान्त मुनियों को तो आत्म दान करते हैं ॥६७१॥ एकादशस्कन्ध श्रीभगवदुद्धव संवाद में वर्णित है, हरिको छोड़कर कौन दूसरे का भजन करेगा, आपने प्रह्लाद प्रभृतियों के प्रति जो अनुग्रह किया है उसको जानकर अपर को भजनीयत्वेन महत्व कोई नहीं देगा। आप सर्वत्र अन्तर्यामी रूपमें सबका उपकार करते हैं। अखिल आत्माथों को जाग्रत करते हैं, दयित प्रेष्ठ सुसेव्य एवं ईश्वर होने के कारण आप भजनीय हैं, आश्रित को सर्वार्थ प्रदान करते हैं, फलवर्णन का उद्देश्य फल प्राप्ति के लिए भजन में प्रवृत्ति ? नहीं नहीं श्रीहरि की सेवा को छोड़कर विनिमय पद्धति से स्वर्गादि प्रदान करने परभी भक्तगण ग्रहण नहीं करते हैं, एवं ज्ञानादि प्राप्त होने के लिए भी भक्तगण भजन नहीं करते हैं, ज्ञानादि साधन के विना भोग मोक्ष कैसे सम्भव है ? श्रीहरि सेवासे सब सम्भव है। या वै साधन सम्पत्ति पुरुषार्थ चतुष्टये तथा विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥६७२॥

तथा चैकादशे भगवदुद्धवसंवादे इतिहास-कथने अवन्तिपुरवासि ब्राह्मण-निर्वेदे —(११।२३।५७)

६७५। एतां समास्थाय परात्मनिष्ठा,मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः

अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं,तमो मुकुन्दाङ्घ्रि-निषेवयैव ॥

श्रीमदुद्धवोक्तौ—(भा: ११।१६।६)

६७६। तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे,संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ।

पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रि,द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥

तथा च द्वादशे—(१२।८।४२-४४)

६७७। "तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं,

यत्स्थं न कर्मगुणकालरुजः स्पृशन्ति ।

यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं

ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तवाप्त्यै ॥

तृतीयस्कन्ध के विदुरमैत्रेय संवाद में वर्णित है-हे पितः ! इस संसार में तापत्रय से जर्जरित होकर जीव शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, आपके चरणारविन्दों की शरण से ही शान्ति मिलती है, अतः मैं आपके चरणोंमें शरण ग्रहण करता हूँ ।।६७३।। विषयाविष्ट चित्तवाले के लिए आपके चरणारविन्दों की स्मरण तो दुर्लभ है ? कहते हैं, विषय रागयुक्त हृदय से भी यदि आप के चरणारविन्दों का ध्यान कोई करता है तो वह ज्ञान वैराग्य को प्राप्त करलेता है,विषयरागयुक्त चित्त से भगवत् कथा श्रवण करने पर धीरे धीरे हृदय निर्मल होता है।।६७४।। एकादशस्कन्ध के भगवदुद्धव संवाद में वर्णित है-पूर्व पूर्व महात्मागण जिस पथ को अवलम्बनकर परात्मनिष्ठा को प्राप्त कर चूके हैं। मैं उसके पथिक हो रहा हूँ। और मुकुन्द की सेवा में आत्मनियोग करके जन्ममृत्यु के प्रवाह से अपने को उद्धार करूँगा । श्रीउद्धव जीने कहा-हे ईश ! मैं घोर संसार मार्गमें तापत्रयसे जर्जरित हूँ, अमृत वर्षणकारी निखिल ताप विनाशक आपके चरणारविन्दों

६७८। नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्त्तेः,
क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा विभेत्यलमतो द्विपरार्द्ध धिष्ण्यः,
कालस्य ते किमुत तत्कृत-भौतिकानाम् ॥

६७९। तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं,
हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं,
विन्देत ते तरहि सर्वमनीषितार्थम् ॥"

तथा चतुर्थे प्राचीनवर्हिर्नारद संवादे—(४।२९।५१,५२)

६८०। "तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ।"
"स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥"

को छोड़कर किसी को भी शरणयोग्य नहीं देखता हूँ ॥६७५,६७६॥ श्रीहरि की मूर्त्ति जगत् पालन के लिए है, जब आप इस प्रकार तब मैं आप के चरण कमल का भजन करूँगा, आप स्थावर जङ्गम आदि सबके पालक हैं, जिस से रज तम आदि कर्मगुण काल के रजोमल दूरीभूत होता है और तापादिका स्पर्श भी नहीं होता। वेदतात्पर्यज्ञ मुनिगण भी सर्वथा उनको स्तव करते हैं, नमस्कार करते हैं, और उनको प्राप्त करने के लिए ही स्तव करते हैं। ६७७॥ जिन के चरण सेवन को छोड़कर अपर पुरुषार्थ नहीं है, श्रीचरण प्राप्ति भिन्न अपर पुरुषार्थ ही नहीं है, काल से सबका भय है, जिन की आयु द्विपरार्द्ध है, उनका भी भय है, अतएव ब्रह्माकृत प्राणियों का भी काल से भय है (६७८) अतएव आपके चरण ही भजनीय है, आप सत्य स्वरूप हैं एवं जीवों के नियन्ता भी आप हैं, देहादि की आसक्ति को छोड़कर ही भजन करूँगा। यदि कोई व्यक्ति श्रीहरि का भजन करता तो आपसे समस्त सम्पत् उपस्थित होता है ॥६७८॥ हे प्रभो ! मैं आपके चरणारविन्दों का ही भजन करूँगा, आप सत्य ज्ञानस्वरूप हैं, मैं

तथा च दशमे मुचुकुन्द-स्तुतौ—(१०।५१।५७)

६८१। "चिरमिह वृजिनार्त्तस्तप्यमानोऽनुतापै-,
रवितृष-षड़मित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्म-
न्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥"

चतुर्थे पृथुचरिते सनत्कुमारोक्तौ—(४।२२।४०)

६८२। "कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां,
षड़् वर्ग-नक्रमसुखेन तितीरषन्ति ।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रि,
कृत्वोड़ुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥"

इदानीं व्यतिरेकेणाह तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।५।४४,४५)

६८३। तान् वै ह्यसद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये, पराहृतान्तर्मनसः परेश
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं, ये ते पदन्यास-विलास-लक्ष्म्याः ॥

शरीरेन्द्रिय की आसक्ति को छोड़कर ही आपका भजन करूँगा, आप ही एकमात्र पथ प्रदर्शक गुरु एवं परतत्व हैं। देहादि असत् होनेपर आत्यन्तिक असत् नहीं हैं, आत्मस्वरूप हैं एवं परमप्रिय श्रीहरि से पृथक् नहीं हैं, केवल अज्ञान कृत ही भेद हैं, आपका भजन केवल अपवर्ग के लिए ही नहीं, किन्तु मनमें जो कुछ भी कामना हो उस के लिए भी आप ही एकमात्र भजनीय हैं ॥६७९॥ चतुर्थस्कन्धमें प्राचीन वर्हिनारद संवाद भी इस प्रकार हैं–मनुष्यों के लिए श्रीहरि चरण शरण ही मङ्गलों का मूलकारण है, श्रीहरि ही प्रियतम आत्मा हैं, जिस से विन्दुमात्र भी भय नहीं रहता है ॥६८०॥ दशमस्थ मुचकुन्द स्तुति में हे ईश ! इस शरीर में रहकर निरन्तर पापाचरण जनित अनुतापों से जज्वरित हूँ, काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य द्वारा अतृप्त होकर निरन्तर अशान्ति में रहना पड़ता है, हे शरणद ! आप के

६८४। पानेन ते देव कथासुधायाः,प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥

एतदेव चतुर्थस्कन्धे प्रकाशयति, ध्रुवस्य ऋषीणामुपरिपद स्वाराज्यलाभेऽप्यकृतार्थतायाम्—(४।६।३१)

६८५। "अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ।
भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥"

एतदेवाह दशमे राजसूयोद्यमे—(१०।७२।५,६)

६८६। "तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्द-,
सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।
ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां,
निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरु-सृञ्जयानाम् ॥

चरणारविन्द की शरण को प्राप्तकर अभय अमृत होने का अवसर प्राप्त हुआ हूँ। हे परात्मन् ! मुझ को रक्षा करें ॥६८१॥ पृथुचरित में सनत् कुमार की उक्ति–भवार्णव उत्तीर्ण होने के लिए नाविक विहीन नावके अवलम्बन से महान् क्लेश होता है, कामादि नक्रमकर के द्वारा भवसमुद्र पार होना दुःखद चेष्टा है, भगवान् श्रीहरि के भजनीय श्रीचरण के अवलम्बन से सुदुस्तर भवार्णव का पार मानव सुख पूर्वक कर सकता है। ६८२॥ सम्प्रति व्यतिरेके मुख से विदुर मैत्रेय संवाद से कहते हैं–श्रीहरि हृदय में विराजित होने परभी यदि किसी के लिए सुदुर्लभ होते हैं, तव तो सबके लिए ही सुदुर्लभ होंगे ? उत्तर में कहते हैं-वहिर्मुख इन्दियवृत्ति वाले के लिए सुदुर्लभ हैं, अतएव उनका सङ्गप्राप्त होना सम्भव नहीं है, जो लोक श्रीहरि के भक्त नहीं होतेहैं,एवं श्रीहरिकथासे जिह्वा अलङ्कृत नहींहै। भगवद्जन उन उन्मत्त व्यक्ति को नेत्र से नहीं देखते हैं, सत्सङ्ग के अभाव से हरिकथा श्रवण नहीं होता है, और हृदय में अवस्थित श्रीहरि का दर्शन भी सुदूरस्थित होता है ॥६८३॥ परिस्फुटरूप से कहते हैं

६८७। न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्,
सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः,
सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥"

तथा च अष्टमे प्रह्लाद-स्तुतौ—(८।२३।८)

६८८। "चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमाया-,
लीलाविसृष्ट-भुवनस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो,
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरु-स्वभावः ॥"

हे देव ! आपके चरित कथा पानसे भक्तिहोती है, विषय वैराग्यलाभ तत्त्ववोध भी साथ ही होता है, अनन्तर वैकुण्ठ लोक प्राप्ति होती है। चतुर्थस्कन्धमें इसका विवरण है, ध्रुवको ऋषिओं के उपर स्थान मिलने परभी ध्रुव अपने को अपूर्ण ही मानने लगेथे। देखो ! देखो ! मन्दभाग्य मेरी असुहृदयता भव विनाशक श्रीप्रभु के समीप में जाकर नश्वरवस्तु को मांगने लगा ॥६८४-६८५॥ इसप्रकार ही दशमस्कन्धके राजसूय यज्ञ के प्रयत्नमें कहा गयाहै हे देवदेव ! आपके चरणारविन्द सेवारत व्यक्ति की गति को लोक देखे, इस प्रकार ही आप प्रयत्न करें, जो लोक आपका भजन करता, जो नहीं करता, इन दोंनों के भेद को सौभाग्य प्रदर्शन द्वारा आप अवश्य प्रदर्शन करें ॥६८६। आप विभुव्यापक ब्रह्मस्वरूप हैं, आप में स्व पर भेद नहीं है, सर्वात्म, समदृष्टि, निजसुख रूप प्राप हैं, तथापि कल्पतरु के समान ही सेवारत व्यक्ति के प्रति आप प्रसन्न होते हैं, सेवा के अनुरूप ही फल प्रदान करते हैं, इस में कुछ भी व्यतिक्रम विपर्यय नहीं होता है ॥६८७॥ अष्टमस्कन्धस्थ प्रह्लाद स्तुति में—अहो ! अतीव आश्चर्य अमित योगमाया वैभव द्वारा लीला विशारद आपकी विचित्र लीला है, आप सर्वात्मा समदृष्टि सम्पन्न होकर भी आप विषम स्वभाव के हैं, आप भक्त प्रिय हैं,

अतएव दशमे भगवद्‌गोपीसंवादे—(१०।२९।३६,३७)

६८९। "यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया,
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजन-प्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग,
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥

६९०। श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या,
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुर-प्रयास-,
स्तद्वद्वयञ्च तव पादरजःप्रपन्नाः ॥"

भगवत्पादमूल-भजनं विना पातकवतां कृत-प्रायश्चित्तानामपि न निष्कृतिः । तत्राह षष्ठे अजामिलोपाख्याने यमदूत-विष्णुदूत संवादे—(६।२।१६,१७)

६९१। "गुरूणाञ्च लघूनाञ्च गुरूणि च लघूनि च ।
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥

अतएव कल्पतरु के समान ही आपका स्वभाव है ॥६८८॥ अतएव दशमके भगवद् गोपीसंवाद में कथित है—निज निज पति की सेवा से पतिगण कामाग्निका प्रशमन करेंगे ? उत्तर-हे अम्बुजाक्ष ! आपके चरण कमल कदाचित् लक्ष्मी को आनन्द प्रदान करते हैं, आप की प्रिया तो अरण्यजन है, अतएव वनमें हम सबने उन चरणयुगल को स्पर्श किए थे, और तुमने हमसब को आनन्दित भी किया था, तबसे हमसब दूसरे के समीप में रह नहीं सकतीं हूँ, अतितुच्छ पतिगण के प्रति हमारी रुचि नहीं है ॥६८९॥ तुम्हारे चरणयुगल की अपार महिमा है, अति विचित्र है, लक्ष्मी सपत्नी विहीन होकर, वक्षःस्थल विलासिनी होकर भी तुलसी के साथ ही तुम्हारी चरणरजः को सेवा करने की कामना करती है, उन भृत्यगण सेवित पदरज की सेवा कामना हमसब करती हूँ ॥६९०॥ भगवत् चरणारविन्दों का भजन

६९२। तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदान-जपादिभिः ।
नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रि-सेवया ।।"

तदेव प्रकाशयति एकादशे वसुदेव नारद संवादे आर्षभ कथने-११-५-४२

६९३। स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य,त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः
विकर्म्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्,धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ।।

तथा च भगवदुद्धव-संवादे—(भाः ११-१४-१९)

६९४। "यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ।।"

भगवत्पादपङ्कज—परागतृप्तानां विकर्मैव न घटते इति; तत्राह दशमे—(१०।२२।२६)

६९५। "न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेशते ।।"

के विना पातकी का पाप; प्रायश्चित्त करने परभी नष्ट नहीं होता है । षष्ठके अजामिलोपाख्यान में यमदूत विष्णुदूत का संवाद इस प्रकार है- महर्षिगण पापों के गुरुलघु को देखकर उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त का विधान करते हैं ।।६९१।। श्रीहरिनाम में यह व्यवस्था नहीं है, श्रीविष्णु के स्मरण मात्रसे सब पापों से मानव मुक्त हो जाता है । तपो दान जप प्रभृति के द्वारा पाप विनष्ट होता है, किन्तु हृदय शुद्ध नहीं होता है, सूक्ष्मरूपमें पाप संस्कार रह जाता है, श्रीहरिनाम द्वारा आशय भी शुद्ध हो जाता है । महापाप समूह एकवार नामोच्चारण से नाश होते हैं, जिस प्रकार दीप एकवार प्रज्ज्वलित होकर अन्धकार नाश करती है । वासना क्षयसे हृदय की शुद्धि होती है, गुणानुवाद सत्त्व शोधक होते हैं, वासनाक्षय भी महापुरुष दर्शनसे होता है ।।६९२ एकादश स्कन्धके वसुदेव नारद संवाद में कथित है-प्रियपरेश हरि का भजन जो लोक अन्याभिलाष को छोड़कर करता है, उस के हृदय में समय विशेषमें यदि कभी विकर्म उपस्थित होताहै तो हृदयमें अवस्थित

६९६। "यत्पादपङ्कज-पराग-निषेव-तृप्ता,
योगप्रभाव-विधुताखिल-कर्मवन्धाः।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना,-
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥" (भा: १०।३३।३४)

तथा षष्ठे अजामिलोपाख्याने यमोक्तौ—(६।३।३३)

६९७। "कृष्णाङ्घ्रिपद्म-मधुलिण् न पुनर्विसृष्ट,-
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-,
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥"

ये भगवत्पादमूलं शरणं गताः,ते केषामपि न किङ्कराः, न ऋणिनः।
एकादशे वसुदेव नारद-संवादे—(११।५।४१)

६९८। देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां,न किङ्करो नायमृणी च राजन्
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं,गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम् ॥

होकर उसको साफ करते रहते हैं ॥६९३॥ भगवदुद्धव संवादमें कथित है-हे उद्धव ! जैसे उतम ज्वली हुई अग्नि लकड़ी को जलादेती है,उस प्रकार निखिल पाप राशिको भक्ति विनष्ट करदेती हैं ॥६९४॥ भगवत् पादपङ्कज पराग तृप्तव्यक्ति का विकर्म कभी होता ही नहीं है, दशम में उक्त में-मुझ में आविष्ट जो होता है उस की वुद्धिस्थ काम,कामरूप में परिणत नहीं होता है, भूँजे हुए धान को गुड़ में डालकर पकाने के वाद वोने से उससे अङ्कुर नहीं होताहै ॥६९५॥ जिनके चरणारविन्द की सेवा से तृप्त व्यक्तिगण अखिल कर्मोसे मुक्त हो जाते, ऐसे मुनिगण स्वेच्छा से विचरण करने परभी बद्ध नहीं होते हैं, तो, निजेच्छा से शरीर प्रकट करने वाले श्रीहरि का कर्म बन्ध कैसे सम्भव है ॥६९६॥ जो जन श्रीकृष्ण चरणारविन्द सेवास्वाद को प्राप्त किया है,वह माया गुण से रचित विषयसुख में रत नहीं होता है, कुछलोक भगवत् चरणारविन्द सेवास्वाद रहित होकर विषयसुख को चाहता है, पाप

ततोऽर्चनं निरूपयति। तत्राह दशमे रुक्मिण्या उक्तिः-(१०।८३।८)

६९९। "चैद्याय मार्पयितुमुद्यत-कार्मुकेषु,
राजस्वजेय-भटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः।
निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियुथात्,
तच्छ्रीनिकेत-चरणोऽस्तु ममार्चनाय॥"

तत्रैकादशे प्रथमं पूजास्थानं निरूपयति-(११।११।४२)

७००। "सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम्।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे॥"

तत्र यस्मिन् येन प्रकारेण पूजा, तन्निरूपयति-(भाः ११।११।४३,४४)

७०१। "सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम्।
आतिथ्येन तु विप्राग्रेय गोष्वङ्ग यवसादिना॥"
वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया।" इत्यादि;

नाश के प्रायश्चित्त करता है, किन्तु हस्तीस्नान के समान उसको पुर्नवार पापों से लिप्त होना पड़ता है॥६९७॥ जो लोक भगवान् के पादमूल की शरण में आया है, वह किसी का किङ्कर नहीं होता है, न तो ऋणी ही होता है, एकादश स्कन्धस्थ वसुदेव नारद संवाद में कहागया है, वह देवऋषि, भूत, आप्त, मनुष्य, पितृपुरुष आदिके निकट ऋणी नहीं होता है, जो जन सर्वप्रकार से श्रीहरि के शरण ग्रहणकर श्रीमुकुन्द का भजन करता है॥६९८॥ अनन्तर अर्चन का निरूपण करते हैं। दशम में रुक्मिणी की उक्ति इस प्रकार है-शिशुपाल को जब मुझको अर्पण करने को अवसर आया था उस समय जरासन्ध प्रभृति राजन्यवर्ग अस्त्र उठाकर लड़नेके लिए तैयार थे, सैन्यवल के आधिक्य अतिशय था, उसके मस्तकपर पैररख भेड़के दल से अपना भाग सिंह जिस प्रकार ले जाता हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण मुझको ले गये थे, उनकी चरणरेणु की मैं अर्च्चना करूँ॥६९९॥ एकादश स्कन्ध में पूजा स्थान का निरूपण इसप्रकार हैं-सम्प्रति एकादश स्थान

(भा। ११।११।४१,४७,३४-३६)

७०२। "यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ।।"

७०३। "इष्टापूर्त्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ।।"

७०४। "मल्लिङ्ग-मद्भक्तजनदर्शन-स्पर्शनार्चनम् ।
परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्त्तनम् ।।

७०५। मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ।
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ।।

७०६। मज्जन्म-कर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ।
गीत-ताण्डव-वादित्र-गोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ।।"

पूजन के लिए निर्दिष्ट है, कहते हैं–हे भद्र ! मेरी पूजास्थान सूर्य,अग्नि ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथिवी, आत्मा, सकलप्राणी जगत् है ।।७००।। सम्प्रति अधिष्ठान भेद से पूजा का साधन कहते हैं। सूर्य में वेदमन्त्र से उपस्थान प्रभृति द्वारा वेदमन्त्र से अर्चना करे,अग्नि में आहूति द्वारा मेरी उपासना करें। अतिथि सत्कार द्वारा ब्राह्मण में मेरी अर्चना करें, तृण प्रभृति द्वारा गौ में मेरी आराधना करें, वैष्णव में वन्धुवत् सम्मान द्वारा मेरी आराधना करें, हृदय आकाश में ध्यान द्वारा अर्चना करें ।।७०१।। लोक में जो वस्तु त्रससे प्रियहै, एवं अपना भी अत्यन्त प्रिय है, उसको मुझे अर्पण करे ।।७०२।। इस प्रकार इष्टापूर्त्त द्वारा मेराभजन करने पर एकाग्रचित्त वाले व्यक्ति भक्तिप्राप्त करता है, मेरी स्मृति साधु सेवासे होतीहै ।।७०३।। श्रीविग्रह दर्शन, भक्तजन दर्शन, स्पर्श, अर्चन, परिचर्या, स्तुति, नमस्कार, गुण कर्म का कीर्त्तन, भक्ति का कारण है ।।७०४।। मेरी कथा श्रवण में श्रद्धा, मेराध्यान, प्राप्त समस्तवस्तु का समर्पण, दास्यमें आत्मसमर्पण, भक्ति का कारण है ।।७०५।। मेरा जन्म कर्म का कथन पर्व का

परिणाममाह अष्टमे गजेन्द्रमोक्षणे –(८।४।१२)

७०७। "आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृति-विनाशिनीम् ।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥"

(भा: ८।३।३२,३३)

७०८। "सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो,
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-,
न्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥

७०९। तं वीक्ष्य पीड़ितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥"

७१०। चतुर्थे ध्रुवचरिते विदुरप्रश्ने–(४।९।२८)

सुदुर्लभं यत् परमं पदं हरे,र्मायाविनस्तच्चरणार्च्चनार्जितम् ।
लब्ध्वाप्यसिद्धार्थ मिवैकजन्मना,कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित्?

अनुमोदन, गीत, ताण्डव, वादित्र, गोष्ठीयों के साथ मन्दिरोत्सव करना भक्तिलाभ का हेतु है ॥७०६॥

भक्ति प्राप्तकरने का परिणाम कहते हैं-हस्ती शरीर प्राप्तकरने पर आत्मस्मृति नष्ट हो जाती है, किन्तु श्रीहरि के अर्चन प्रभाव से गज शरीर में भी स्मृति अक्षुण्ण रहती हैं ॥७०७॥ गजराज जलमें बलवान् ग्राहद्वारा बद्ध होकर आर्त्त होकर श्रीहरि को स्मरण किया, एवं आकाश में गरुड़ के उपर चक्रधारी श्रीहरि को देखकर अतिकष्ट से एक कमल उठाकर कहा-हे नारायण ! हे अखिल गुरो हे भगवन् ! आपको नमस्कार ॥७०८॥ परमकरुण श्रीहरि ने पीड़ित गजराज को देखकर सहसा तत्काल उतरकर उसको जल से निकाल लिया, ग्राहको मार कर गजेन्द्र की रक्षा की ॥७०९॥ चतुर्थस्कन्ध के ध्रुव

इदानीं वन्दन निरूपयति; तथा च दशमे ब्रह्मस्तुतौ-(१०।१३।६२,६३)

७११। "दृष्ट्वा त्वरेण निज-धोरणतोऽवतीर्य,
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुट-कोटिभिरङ्घ्रियुग्मं,
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥

७१२। उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥"

तथा चैकादशे--(११।५।३३,३४)

७१३। "ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्त्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

चरित में विदुर जी मैत्रेय को कहते हैं-एक ही जन्म में श्रीहरि के चरणार्च्चन द्वारा सुदुर्लभ हरि धाम प्राप्त करलेने परभी अपने को अपूर्ण ही ध्रुव ने कैसे माना ध्रुव पुरुषार्थ को जानते ही थे ।।७१०।। सम्प्रति वन्दन का निरूपण करते हैं-ब्रह्म जी ने श्रीकृष्ण जी को देख कर बतक से उतरकर कनकदण्ड के समान अपने शरीर को श्रीकृष्ण के चरणों के आगे गिरादिया, मस्तक स्थित चारों मुकुटों के अग्रभाग द्वारा चरण युगल को स्पर्श करके प्रणाम किया एवं पवित्र आनन्दाश्रुके द्वारा चरणों का अभिषेक किया ।।७११।। उठ उठ कर पुन. पुनः बहुत देर तक चरणों में गिरकर प्रणाम किया एवं पहले की महिमा को स्मरण कर पुनः पुनः प्रणाम किया ।।७१२।। स्तुति को कहते हैं, हे प्रणतपाल ! हे महापुरुष आपके चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ। वह चरण ध्यान योग्य हैं। और सदा ही ध्यानयोग्य है, ध्यानसे इन्द्रिय, एवं कुटुम्ब आदि से जो तिरस्कार नष्ट होता है, एवं मनोरथ पूर्व भी होता है, श्रीचरण परम पवित्र हैं, कारण परम पवित्र गङ्गा

७१४। त्यक्त्वा सुदुस्त्यज-सुरेप्सित-राज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्-,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥"

७१५। "नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति,
ब्रह्मादयस्तनुभृतो मुहुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृति-पूरुषयोः परस्य,
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥" (भाः ११।६।१४)

ततो दास्यं निरूपयति चतुर्थे ध्रुवचरिते विदुरं प्रति मैत्रेयोक्तौ-४।६।३६
७१६।
न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो,रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो,यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः

प्रभृति का एकमात्र आश्रय हैं, शिव विरिञ्चि आदि महाजन द्वारा स्तुत महत्तम श्रीचरण हैं, परिपूर्ण शिव ब्रह्मा हैं, वे किस के लिए श्रीचरण की स्तुति करते हैं ? श्रीचरण शरण्य हैं, आश्रय योग्य एवं सुखात्मक हैं। ब्रह्मादि के स्तवनयोग्य श्रीचरण प्राकृत जनके लिये साक्षात्कार कैसे होगा ? भृत्यमात्र के क्लेश अपहारक हैं। न केवल आगन्तुक क्लेश को विनष्ट करते हैं, किन्तु संसारार्णव से भी उद्धार करते हैं ॥७१३॥ सम्प्रति, स्वयं आत्मकाम निरपेक्ष होकर भी भक्त के लिए सापेक्ष वनजाते हैं, इस प्रकार लीलारत श्रीरामचन्द्र की स्तुति करतेहैं,जिसको लोक कदापि त्याग नहीं करसकते हैं,ऐसी राज्यलक्ष्मी जिस को सुरगण चाहते हैं, उसको भी छोड़कर वनमें चले गये थे। क्या राष्ट्रबिप्लव को देखकर ? नहीं, आप धर्म्मिष्ठः हैं, कारण गुरुदशरथ की वाणी से वनको गए थे, इस प्रकार राज्य को छोड़कर भी भक्तवात्सल्य से दयिता सीता की ईप्सित स्वर्ण रेखायुक्त मृगके लिए प्रयत्न परायण हुए थे। उन भगवान् के चरणारविन्द को प्रणाम

(भा: ६।५।१६)

७१७। "यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्म्मलः।
तस्य तीर्थपदः किम्बा दासानामवशिष्यते ॥"

दशमे जाम्ववत्या उक्तिः—(१०।८३।१०)

७१८। "प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं,
सीतापतिं त्रिनवहान्यमुनाभ्ययुध्यत्।
ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां,
पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी ॥"

सत्योवाच—(भा: १० ८३।१४)

७१९। "य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम्।
पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥"

करता हूँ ॥७१४॥ अच्छा; युद्ध में देवासुरगण परस्पर विजयप्राप्त करते हैं, मैं क्या करता हूँ। परस्पर लड़कर क्लेशप्राप्त होने परभी ब्रह्मादि देवगण आपके वशमें ही होते हैं, जय पराजय में कोई भी स्वतन्त्र नहीं होते हैं, जिस प्रकार नासिका में डोरी डालकर वेल को लोक चलाते रहते हैं, कारण आप संचालक "काल' का भी प्रवर्त्तक हैं, आप प्रकृति पुरुष के भी प्रवर्त्तक हैं, आप पुरुषोत्तम हैं, आप के चरणारविन्द हमारे मङ्गल विधान करें ॥७१५॥ अनन्तर दास्य का निरूपण करते हैं-रजोगुणोत्पन्न आप सवको छोड़कर कोई भी नहीं है, जो श्रीमुकुन्द के पदारविन्द की सेवा 'दास्य' को ही एकमात्र चाहता हो, अर्थ की प्रार्थना आपसव क्यों करेंगे ? यदृच्छा से प्राप्त विषय से ही आपसव का मनप्रसन्न एवं समृद्ध रहता है ॥७१६॥ जिन के नाम श्रवण मात्र से जीव निर्म्मल होता है, उन परमपवित्र श्रीहरि चरण सेवक के लिए कोन पदार्थ अवशेष रहजाता है ॥७१७। मेरे पिता ने श्रीकृष्ण को सीतापति ईश्वर निजनाथ देव न जानकर त्रिनव सात्ताईस दिन तक युद्धकिया। अनन्तर श्रीकृष्ण को साक्षात् सीतापति

तथा सप्तमे प्रह्लादचरिते—(७।६।१७,२४,२७,५०)

७२०। "यस्मात् प्रियाप्रिय-वियोग-संयोग-जन्म-,
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं,
भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥"

७२१। "तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ,
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चयात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण,
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥"

७२२। "नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्-,
जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरुरिव ते प्रसादः,
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥"

जानकर चरण पकड़कर प्रणाम किया और मणि के साथ मुझको अर्पण किया, अतएव मैं उनका दासी हूँ ॥७१८॥ हे कृष्ण ! हे द्रौपदि ! जिन्होंने मुझको दासीयों के साथ ग्रहण किया, और दुर्मद राजन्यवर्गों के दर्प को चूर चूर किया, मैं उनके दास्य की कामना करती हूँ ॥७१९ सप्तम के प्रह्लाद चरित में वर्णित हैं-प्रह्लाद कहते हैं-प्रभो ! आपकी प्रीति दास में है, मैं विभिन्न योनि में भ्रमण रत होने के हेतु दास्य को नहीं जानता हूँ। आप मुझे उपदेश प्रदान करें। मैं प्रिय अप्रिय, संयोग विरह द्वारा सकल योनि में विरस का अनुभव किया, और दुःखपाया, दुःखका प्रतीकार औषध भी दुःखमय है, अतएव हे भूमन् ! तुम्हारे दास्यरूप योग निस्तार उपाय का उपदेश प्रदान करो ॥७२०॥ मैं भोगरूप आशीर्वाद और उसका परिणाम को जानकर ब्रह्मा जो के भोग से लेकर किसी को भी नहीं चाहता हूँ। अतएव हे प्रभो मुझे आपके भृत्य के निकट ले चलो ॥७२१॥ प्राकृत जनों की जैसी उच्च

७२३। "तत्तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजा,
कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षड़ङ्गया किं,
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ?"

तथा च दशमे—(१०।२९।३८,३९)

७२४। "तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं,
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मित-निरीक्षण-तीव्रकाम-,
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ।।

७२५। वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-,
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य,
वक्षः श्रियैकरमणञ्च भवाम दास्यः ।।"

नीच वुद्धि होती है, आपकी वैसी नहीं है, ब्रह्मादि उत्तम एवं असुर नीच इस प्रकार वुद्धि आप नहीं रखते हैं। आप जगत् के सुहृद हैं, ऐसा होनेपर सर्वत्र आपका प्रसाद समान रूपसे नहीं होता है, जिस प्रकार सुरतरु सेवक का संकल्प पूर्ण करता है, आपभी उस प्रकार भक्त की इच्छा पूर्णकरते हैं ।।७२२।। हे अर्हत्तम ! नमः स्तुति कर्म पूजा, प्रणिपात सर्व कर्मार्पण कर्मपरिचर्या कथा श्रवणद्वारा भी आपके चरणों में भक्ति कैसे होगी ? भक्ति के विना मुक्ति भी कैसे होगी, अतएव दास्य योग प्रदान करें ।।७२३।। दशम स्कन्ध में वर्णित है-गोपीयां कहतीं हैं-हे वृजिनार्दन ! दुःखहन्ता, तुम्हारे भजन में हमारी आशाहै, और उससे प्रेरित होकर हमसव घर छोड़कर आई हूँ। तुम्हारे सुन्दर वदन व प्रेमपूर्ण निरीक्षण को देखकर हमसव मुग्धहोगई हूँ। हे पुरुषरत्न ! हमे दास्य दान करो ।।७२४।। निजपति के दास्य

७२६। तथा च ब्रह्मस्तुतौ—(भा: १०।१४।३०)

"तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो,भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां,भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ।।"

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-सवादे—(११।२९।४)

७२७। "किं चित्रमच्युत तवैतदेशेषवन्धो,
दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।
योऽरोचयत् सह मृगैः स्वयमीश्वराणां,
श्रीमत्किरीट-तटपीड़ित-पादपीठः ।।"

श्रुत्यध्याये दशमे—(१०।८७।३२)

७२८। "नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं,
त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ।
कथमनुवर्त्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः,
सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ।।"

को छोड़कर परपुरुष का दास्य क्यों चाहती हो ? अलकावृतमुख को देखकर ही दास्य चाहती हूँ, कुण्डलयुक्त मुख, विशाल भुजद्वय, एवं शोभापूर्ण वक्ष:स्थल को देखकर दास्य की कामना हुई है ।।७२५।। ब्रह्मस्तुति में वर्णित है-हे नाथ ! मेरा भुरिभाग्य वह ही होगा, कि-यदि मनुष्यलोक में मनुष्य जन्म मिले, तो भी यदि वन में हो तो भी श्रेष्ठ है,उससे भी यदि गोकुलमें जन्म हो तो सर्वोत्तम होगा। आश्चर्य है-सत्यलोक को छोड़कर गोकुल में जन्म लेने से अधिक लाभ क्या होगा ? लाभ है, गोकुलमें जन्म लेनेपर गोकुल वासियों के जिस किसी के चरणरेणुका लाभ अवश्य होगा, जो सत्यलोक में सम्भव नहीं है। गोकुलवासीगण धन्य कैसे हैं ? वे सब धन्य हैं, कारण उनके जीवन एकमात्र भगवान् मुकुन्द हैं, मुकुन्द परही जीवन है, मुकुन्द अत्यन्त दुर्ल्लभ है, वेदगण अद्यापि उनके खोंज में लगे हुए हैं। ब्रह्म जन्म में ही व्रज के जङ्गलों में कुछभी नगण्य एक जन्म हो, तो मैं भुरिभाग्य

७२६। ततः सख्यं निरूपयति; पञ्चमे वर्षोपाख्याने हनूमत्स्तुतौ (५।१६।७)

न जन्म नूनं महतो न सौभगं, न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस, श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥

तथा च दशमे ब्रह्ममोहने—(१०।१३।६१)

६३०। "तत्रोद्वहन् पशुपवंश-शिशुत्वनाट्यं,
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-,
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥"

समझुंगा, जिस से मैं आपके जनों के साथ आपकी सेवा करने का अवसर प्राप्त करूँगा ॥७२६॥ एकादश स्कन्धमें भगवदुद्धव संवाद इस प्रकार है-श्रीहरिभक्तगण श्रीहरि की प्रसन्नतासे कृतार्थ होते. हैं, अनन्य भक्त को हरि आत्मसात् करते हैं एवं अधीन भी होते हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं, श्रीरामावतार में मृग वानरों के साथ आपने सख्य स्थापित किया, और प्रीति से ही किया। आपके चरण पीठ ब्रह्मा प्रभृति के शिरोभूषण किरीट आदि द्वारा निरन्तर अर्चित होते रहते हैं ॥७२७॥ परमेश्वर से जीव उत्पन्न होता है, ईश्वराधीन होकर कर्म करता है पश्चात् ईश्वर में लीन होता है। कुछ जीव तुम्हारी मायासे उत्पन्न भ्रम को जानकर आपके चरणारविन्दों में प्रीति स्थापन करते हैं, अनुवर्त्तनकारियों को संसार भयव्याप्त नहीं होता है, जो लोक आपके चरणों की शरण ग्रहण नहीं करता है, उसका जन्म मरण संसार होता है, अतएव सुधीगण आपमें भावभक्ति करते रहतेहैं ॥७२८ तदनन्तर सख्य का निरूपण करते हैं—पञ्चमस्कन्ध के "हनूमत् स्तुति" वर्षोपाख्यान में उक्त है—निश्चय ही श्रीहरि की प्रसन्नताके लिए जन्म, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि, आकृति प्रभृति हेतु नहीं हैं, भक्ति ही एकमात्र कारण है, कारण श्रीरामचन्द्र के जन्मसौभाग्य, वाणी, बुद्धि, आकृति प्रभृति से समता न होने परभी श्रीरामचन्द्र वनेचर मृग वानरोंके साथ सख्यस्थापन किए थे ॥७२९॥ परमेष्ठी ब्रह्माने पूर्ववद् ही ब्रह्मको देखा।

(भा: १०।१४।३२)

७३१। "अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप-व्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥"

७३२। (भा: १०।१५।१९)

एवं निगूढ़ात्मगतिः स्वमायया,गोपात्मजत्वं चरितैर्विड़म्बयन्
रेमे रमाललित-पादपल्लवो,ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥

(भा: १०।१५।२०)

७३३। "श्रीदामनामा गोपालो राम-केशवयोः सखा ।
सुवलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥"

आत्मनिवेदनं निरूपयति; तथा चतुर्थे पृथुचरिते सनत्कुमारं प्रति पृथोरुक्तौ—(४।२२।४३,४४)

७३४। "निष्पादितश्च कात्स्नेंचन भगवद्भिर्घृणालुभिः ।
साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ?

गोपशिशु लीलापरायण होकर भी अद्वय, अनन्त अगाध ज्ञान स्वरूप हैं, वत्स वालकों को अन्वेषण कर रहे थे। हस्तमें दध्योदन का ग्रास भी यथावत् था ॥७३०॥ नन्दगोप प्रभृति व्रजवासियों के अपरिच्छिन्न भाग्य है। जिन सवके मित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं ॥७३१॥ श्रीहरि सर्वथा असमोर्द्ध ईश्वर्यस्वभाव में स्थित होकर भी कृपापूर्वक गोपशिशु लीला विस्तार करते हैं, एवं रमालालित पादपल्लव होकर भी ग्राम्यजनोंके साथ ग्राम्यव्यवहार ही करतेहैं ॥७३२॥ ग्राम्यव्यवहार का प्रदर्शन करते हैं-राम एवं केशव के गोपाल सखा श्रीदाम, एवं सुवल स्तोककृष्ण प्रभृति गोपगण प्रेमसे बोले थे ॥७३३॥ आत्मनिवेदन वर्णन करते हैं-पृथुमहाराज ने कहा, परम दयालु आप सवने उत्तम ज्ञान प्रदानकर पूर्ण किया, मैं गुरुदक्षिणा के लिए क्या दूं, मेरा शरीर से लेकर मेरा सर्व राज्यादि साधुगण द्वारा प्रदत्त हैं, यहसव साधुकी वस्तु है, उन्होंने मुझको दिया है, अतएव उसमें मेरा कुछ भी स्वत्व

७३५। प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ।
राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥"

७३६। अष्टमे वलि-निग्रहे—(८।२२।२)

यद्युत्तमश्लोक भवान् ममेरितं,वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोमृतं तन्न भवेत् प्रलम्भनं,पदं तृतीयं कुरुशीर्ष्णि मे निजम् ॥

वामनं प्रति ब्रह्मोक्तौ—(भाः ८।२२।२२,२३)

७३७। "कृत्स्नातेऽनेव दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ।
निवेदितं च सर्वस्वमात्माविक्लवया धिया ॥

७३८। यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय,
पूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्य्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसो भजते त्रिलोकीं,
दाश्वानविक्लमनाः कथमार्त्तिमृच्छेत् ?"

नहीं है, जिसमें मेरा स्वत्व नहीं है, उसके मैं दूँ कैसे ? पिता के दिये हुये लड्डू पिता को दान नहीं दिया जाता है ॥७३४॥ निवेदन तो वह होता है-उनकी वस्तु उनको ही देना, जिस प्रकार राजा का भृत्य सेवारूप से राजा को ताम्वुलादि अर्पण करता है, इस प्रकार मैं भी हे ब्रह्मन् प्राण, पत्नी सुता, गृह, परिच्छद प्रभृति राज्य सैन्यादि वल, मही, कोश यहसव ही अर्पण किया ॥७३५॥ अष्टमस्कन्ध के वलिनिग्रह में-उक्त है-वलि महाराज ने कहा-हे उत्तमश्लोक ! मेरी प्रतिश्रुति मिथ्या नहीं होगी,आपने कपट वामनरूपमें तो भिक्षा को एवं रूपान्तर से तो दान ग्रहण किया, इसको यदि आप मिथ्या नहीं मानते तो भी मैं अपनी प्रतिश्रुति को पुरा करूँगा, मिथ्या नहीं होगी, तृतीय चरण प्रदान मेरे मस्तकमें दीजिये । दो पद द्वारा तो मैंने विश्व को ले लिया है, एक पदके लिए छोटा सा तुम्हारे मस्तक पर्याप्त नहीं होगा, इस प्रकार आप न माने, धनसे धनीका महत्व वहुत अधिक होता है,आपने दो पैरसे हमारे धनको लिया है,मेरा मस्तक उससे अधिक महत्वका है।

तथा च—(भा: २।७।१८)

७३९। "नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौच,
आप: शिखाधृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।
यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्य,-
दात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥"

तथा च सप्तमे प्रह्लादोक्तौ—(७।६।२६)

७४०। "धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग,
ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्त्ता ।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं,
स्वात्मार्पणं स्वसुहृद: परमस्य पुंस: ॥"

॥७३६॥ ब्रह्माजी ने कहा हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! यह बलि निग्रह का अधिकारी नहीं है, इसने अपना कर्मसे अर्जित सम्पत्ति को आपको दान किया है, कुछभी अपना नहीं रखा, आत्मदान भी करदिया है ॥७३७॥ आपके चरणारविन्द में जल प्रदान कर ही उत्तम गति का प्राप्त करलेता है, उनको ही इस बलिने तिन लोक प्रदान कर कैसे क्लेश भागी बनेगा ? (७३८) बलि महाराज को ऐश्वर्य से रिक्त नहीं किया जाता, यदि उनसे भगवान् नहीं मांगते तो, ऐश्वर्य भ्रष्ट करदेना मांगकर भी अनुचित कर्म है ? इसके लिए कहते हैं–स्वर्गादि का आधिपत्य बलिने अपने कर्मबलसे प्राप्त किया है, इसलिए वह वस्तु बलिके लिए पुरुषार्थ नहीं होसकता है। इसने पुरुषोत्तम के चरणधौत जल की मस्तक में धारण किया है, गुरुजी शुक्राचार्य ने निषेध करने परभी प्रतिश्रुति पालन करना छोड़कर अपर कुछभी नहीं चाहा और तीसरा पैर पूरण करनेके लिए अपना मस्तक को दे दिया। निज देहके साथ जिसने तीन लोक को श्रद्धासे प्रदान किया है, उसके लिए स्वर्ग प्रदान करना ठीक नहीं है, इस लिए प्रभुने उस को सालोक्य प्रदान किया है ॥७३९॥ सप्तमस्कन्ध

(भा: १०।२९।३१)

७४१। "मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं,
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्,
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥"

तथा च गोप्युद्धवसंवादे—(भा: १०।४७।२६,२७)

७४२। "दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च
हित्वाऽवृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥
७४३। सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥"

भगवद्भक्तस्य एवं विधया भक्त्यार्पितया भगवति भक्तिर्भवतीति, तत्राह चतुर्थे पृथुचरिते—(४।२२।२५)

में प्रह्लाद की उक्ति इस प्रकार है-हमसे ही जब पुरुषार्थ होता है, आचार्यों ने वेद में धर्म अर्थ काम प्राप्ति का उपाय भी वर्णन कियाहै। ईक्षा-आत्मविद्या, त्रयी कर्मविद्या, नयदम तर्क दण्डनीति, वार्त्ता जीविका, यहसब ही वेदार्थ, जो स्व सुहृद, अन्तर्यामी परम पुरुष हैं, उन के प्रति आत्मार्पण करने का साधन हो तो मैं उनसब को सत्य मानता हूँ, कारण वे सब सत्यपर है, अन्यथा वेसब असत्य पर होने के कारण असत्य ही होते हैं ॥७४०॥ हे विभो ! क्रूर वचन कहना ठीक नहीं है, सब विषयों को छोड़कर हमसब आई हूँ, हमें परित्याग मत करो। हे दुरवग्रह ! स्वच्छन्दचारिन् ! भक्तगण तुम्हारा भजन करते हैं, उनको परित्याग नहीं करते हो,हमसब भी भक्त अनुरागिणी हैं ॥७४१॥ पुत्र, पति, देह, स्वजन, भवन को छोड़कर परमपुरुष कृष्ण को आपसब ने वरण किया है ॥७४२॥ आपसब ने एकान्तभक्ति लाभ किया है। भगवत् प्रेमसुख दर्शनसे मैं परिपूर्ण होगया हूँ ॥७४३ इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् में आत्मादि समर्पण करनेसे भगवान्में

७४४ हरेर्मुहुस्तत्पर—कर्णपूर-,
गुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ।
भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि,
स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥"

तथा प्रथमे सूतशौनक-संवादे—(१।१६।६)

७४५। "तत् कथ्यतां महाभाग यदि विष्णुकथाश्रयम् ।
अथवा तत्पदाम्भोज-मकरन्दलिहां सताम् ॥"

तथा च (भा: ११।११।३४) "मल्लिङ्गमद्भक्तजन" इति; तथा च दशमे-(१०।४७।६१) "आसामहो चरणरेणुजुषाम्" इति ।
(भा: १०।४७।६२)

७४६। "या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-,
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठयाम् ॥
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं,
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥"

भक्ति होती है, चतुर्थस्कन्ध के पृथुचरित में इसका वर्णन है–श्रीहरि कथा ही एकमात्र भक्तका अवलम्बन है, हरि भक्तगण श्रीहरि के गुणावली को पुनः पुनः कीर्त्तन करते हैं, श्रीहरि के गुणावली भक्तों के कर्णभूषण होते हैं,इस कर्णभूषण का गान भक्तगण पुन: पुनः करते हैं, इससे भक्तिवृद्धि होती है, एवं जड़ीय विषय में आसक्ति नष्ट होती व प्रकृत्यतीत सर्वमूल कारण का कारण ब्रह्ममें साक्षात् रतिभक्ति हीती है ॥७४४॥ प्रथमस्कन्ध के सूत शौनक संवादमें उक्त है-हे महाभाग ! श्रीविष्णु के चरणाम्बुज के मकरन्द पानकारी भक्तगण के चरित्र, एवं का वर्णन आप करें ॥७४५॥ साधुभक्त का लक्षण कहने के वाद भक्ति का लक्षण कहते हैं, मेरा परिचायक मेरा भक्तगण हैं, उनसब का दर्शन, स्पर्श, अर्चन, परिचर्या, स्तुति, नमस्कार, गुणकर्म का कीर्त्तन, ही भक्ति है, तथा दशम में वर्णित है–गोपीगण के भाग्य उस प्रकार

तथा च तृतीये—(३।२८।२)

७४७। "स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्त्तनम् ।
दैवाल्लब्धेन सन्तोष आत्मविच्चरणार्च्चनम् ।।"

तथा च दशमे—(१०।४७।६३)

७४८। "वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।।"

तथा सप्तमे प्रह्लादचरिते--(७।९।२८,४२)

७४९। "एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात् ।
कृत्वात्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः,
सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ?"

है, मेरी प्रार्थना तो यह है, गोपीयों के चरणरेणु सेवनरत तरुगुल्म प्रभृतियों के मध्यमें यत्किञ्चित् रूप मैं वनूँ, गोपीगण किस प्रकार है, जिन्होंने दुस्त्यज स्वजन आर्यपथ धर्म को भी परित्याग कर श्रुतियों के अन्वेषणीय श्रीमुकुन्द के चरणारविन्दों की सेवा की। श्रीकृष्ण के चरणारविन्द को अर्च्चना लक्ष्मी करती रहती है,ब्रह्मादि आप्तकाम योगेश्वरगण हृदय में ध्यान करते हैं, उन चरणों को गोपीगण स्तनमें स्थापन कर आलिङ्गन कर तापको शान्त किये थे ।।७४६। तृतीय स्कन्ध में वर्णित है-यथाशक्ति अधिकारी चित्त धर्मका पालत करे। निषिद्ध कर्मका त्यागकरे, दैवसे लब्धवस्तु से अपना निर्वाह करे, भक्त के चरणारविन्द की सेवाकरे ।।७४७।। दशममें कथित है-व्रजवासिनी गोपाङ्गनागण के चरजरेणु की वन्दना मैं पुनः पुनः करूँ जिनकी गाई हुई हरिकथा भुवन त्रय की पवित्र करती रहती है ।।७४८।। सप्तमस्कन्ध के भक्त प्रह्लाद चरित में वर्णित है-प्रह्लाद कहते हैं,प्रभो यहसव तुम्हारे भक्तगण की कृपासे ही पाया है, अतएव तुम्हारे भृत्य के निकट मुझे ले चलो। तुमने जैसे कृपा को वैसे पहले नारद जीने

७५०। "कोऽन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन् प्रयास,
उत्तारणेऽस्य भवसम्भव-लोपहेतोः ।
मूढ़ेषु वै महदनुग्रह आर्त्तबन्धो,
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ?"

तथा च षष्ठे वृत्रस्तुतौ—(६।११।२४,२७)

७५१। अहं हरे तव पादैकमूल,दासानुदासो भवितास्मि भूयः
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते,गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥

७५२ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं,संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः
त्वन्माययात्मात्मजदार-गेहे,ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥

एतदेव द्वादशस्कन्धे मार्कण्डेय-महेशसंवादे द्रढ़यति-(१२।८।४६)

७५३। "तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां,
शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।
यत् सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं,
लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥"

भी कृपा की, अतएव मैं तुम्हारे भक्त की सेवाको मैं कैसे छोड़ शकूँ । कामादि सर्पसे मैं ग्रस्तथा ।।७४६।। हे प्रभो ! हे भगवन् ! मुझको उद्धार करने में आपको क्या कष्ट उठाना पड़ेगा ? आप तो सकल जगत के उत्पत्तिस्थिति एवं विनाश भी करके रहते हैं न, हे अखिल गुरो ! हे आर्तवन्धो ! यह मेरा दुराग्रह नहीं है, आपके भक्तजन के किङ्कर को तो आप उद्धार करते ही हैं, मैं आपके जनों के किङ्कर हूँ, अतएव असुर वालकों के साथ मुझे दास वनालो ।।७५०।। वृत्र, इन्द्र को निज अभिप्राय को कहने के पश्चात् भगवान्के पास प्रार्थना करता है, हे हरे, मैं पुनर्वार तुम्हारे दासों के दास वनूँगा, जो सव भक्त तुम्हारे चरणों को ही एकमात्र आश्रय कर रहते हैं, और मेरा मन प्राणनाथ आपके गुणगण का स्मरण करे, वाणी उसीका कीर्त्तन करे,

(भा: १२।१०।३४)

७५४। "वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ।।"

तथा नारदस्य ध्रुवमहिमोपवर्णने चतुर्थे प्रमाणयति-(४।१२।४०)

७५५। "महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः ।
आतोद्यं वितुदञ्श्लोकान् सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ।।"

एवं विविधभक्तिमतामेव पातकादि-निष्कृतिस्तत्राह–(भा:६।१।१६)

७५६। "न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुष-निषेवया ।।"

शरीर आपके सेवाकार्य में रत हो ।।७५१।। हे नाथ ! मेरा सख्य उत्तमश्लोक के जनों के साथ ही हो, निज कर्म से जन्म जहाँ भी हो ऐसा अनुग्रह आप करें, आपकी मायासे देह गेह प्रभृति में आसक्त चित्त व्यक्ति के साथ सख्य न हो ।। ५२।। द्वादश स्कन्धस्थ मार्कण्ड महेश संवाद द्वारा उक्त विषय को पुष्टकर रहे हैं–हे प्रभो ! आप के अनुगत भक्तजन आपके सत्त्वतनु का ही भजन करते हैं, सात्त्वतगण आपके स्वरूप को विशुद्ध सत्त्वरूप ही मानते हैं, जिससे अभय अभृत एव आत्मसुख की प्राप्ति होती है, अपर मूर्त्ति से ऐसी नहीं होती है । ।।७५३।। हे प्रभो ! परिपूर्ण वाञ्छित प्रद आप एक ही वर मुझको प्रदान करें, भगवान् आपमें अविचला भक्ति एवं आपके भक्तजन में उसी प्रकार भक्ति हो ।।७५४।। भगवान् नारद ऋषि ध्रुव महिमा प्रतिपादक तोन श्लोक निज वीणासे गाये थे, उस समय प्रचेता के ब्रह्मसत्र हो रहा था, एव भगवत् महिमा का गान करना आवश्यक था, कारण आप ध्रुव की अति अद्भुत महिमा को देखकर मुग्ध हो गये थे ।।७५५।। इस प्रकार विविध भक्तिमान् जनके निखिल पातक विनष्ट होता है, हे राजन् ! तपस्या प्रभृति द्वारा पापीजन उसप्रकार पवित्र नहीं होते हैं जिस प्रकार श्रीकृष्णार्पित प्राण भक्तजन की सेवा से पवित्र होते हैं; ।।७५६।। यौवनकाल में विषय सुखका सेवन करने

ननु यौवनादौ वैषयिकसुखं कृत्वा चरमे वयसि भगवद्भजनं कर्त्तव्यम् ? नैवं, तत्राह सप्तमे प्रह्लाद चरिते—(७।६।१)

७५७। "कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥"

अध्रुवत्वं विवृणोति; तत्राह—(भा: ७।६।६-८)

७५८। "पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्द्धञ्चाजितात्मनः।
निद्रायां यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः॥

७५९। मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीड़तो याति विंशतिः।
जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः॥

७६०। दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा।
शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि॥"

तस्मात् कौमारे भगवद्भजनाद् वासनोच्छेदेन गृहासक्तिर्न भवति। अन्यथा गृहेषु सक्तस्तमोऽन्धं विशति; तत्राह—(भा: ७।६।९,१०)

के पश्चात् ही अन्तिम वयसमें भगवत् भजन करना कर्त्तव्य है ? नहीं प्रह्लाद चरित में इसका उत्तर इस प्रकार है-सुधीजन भागवत धर्मका आचरण कुमार अवस्था में ही करें, निर्मल हृदय में ही भागवत धर्म का आचरण श्रेयस्कर होता है, कारण मानव जन्म दुर्लभ है, अध्रुव तो है ही, साथ ही वाञ्छित वस्तु प्रदायक भी है ।।७५७।। मानव जीवन कैसे अध्रुव है, उसका वर्णनकर रहें है-मानव की आयु शतवर्ष निश्चित है, अजितात्मा व्यक्ति के लिए उसकी आधी आयु होती है, कारण वह गाढ़ तमोगुण में आविष्ट होकर रातमें निद्रासे आधी आयु बिता देताहै ।।-५८।। अतिआसक्त व्यक्तिका विशवर्ष वालक व कौमार काल में खेलने में वीत जाता है, असमर्थ होकर बुढ़ापा में विश वर्ष चलाजाता है ।।७५९।। बलवान मोह व दुरापूर कामसे आसक्त व्यक्ति घरमें शेष वर्ष वीता देता है ।।७६०।। अतएव कौमार काल में भगवद् भजन से वासना का मूलतः उच्छेद हो जाता है, और गृहासक्ति नहीं

७६१। "को गृहेषु पुमान् सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ।
स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ?
७६२। कोऽन्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ।
यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ।।"
(भा: ७।७।४३,४४)
७६३। "कामान् कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ।
स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ।।
७६४। किमु व्यवहितापत्य-दारागार-धनादयः ।
राज्य-कोश-गजामात्य-भृत्याप्ता ममतास्पदाः ।।"
७६५। अतो: प्रह्लादोक्तिः—(भा: ७।५।३०)
मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा,मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं,पुनः पुनश्चर्वित-चर्वणानाम् ।।

होती है, अन्यथा घरमें आसक्त हो जानेपर निविड़ अन्धकाररूप नरक में वह व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता है। कहते हैं–अजितेन्द्रिय कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपने को दृढ़स्नेह पाश से वांधकर फिर अपने को उससे मुक्तकर सकेगा ? (७६१) यदि ऐसा कहे कि यौवन में विषय भोग करलेने के वाद वृद्धकाल में विरक्त होकर भगवद् भजन करना ठीक है, इस प्रकार शोचना असम्भव है, जिस अर्थ प्राणसे भी प्रिय होता है, उस के प्रति तृष्णाका त्याग कौन कर सकता है, परमप्रिय प्राण है, किन्तु तस्कर लोक, सेवक लोक, वणिक्जन, उस प्राण को देकर भी अर्थ को खरीदते हैं ।।७६२।। मानव इस शरीरमें रहकर कामना के साधनों से काम की कामना ही करता रहता है, और वह शरीर कुकुर सियार की भाँति निन्दनीय है, उससे नश्वर विषय को प्राप्त करता और छोड़ता भी है ।।७६३।। कुकुरके भोगके तूल्य आत्मा से पृथक् पुत्र सन्तति, पत्नि घर, धनादि, राज्य, कोश, गज, आमात्य,

संसारभयाद्भगवत उग्रमूर्त्तिरपि न भयावहेति प्रकाशयति-७।९।१५,१६

७६६। "नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य,-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटी-रभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतज-केसर-शङ्कुकर्णा-,
न्निर्ह्राद-भीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ।।

७६७। त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-,
संसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तोऽङ्घ्रिमूलं,
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ।।"

भृत्य, वन्धुवान्धव परिजन भी हैं, इसमें ममत्व हो जाता है ।।७६४।। अतएव प्रह्लाद की उक्ति इस प्रकार है-विषय की वात तो दूसरी है, किन्तु आपसवके तुल्य विषयासक्त व्यक्ति का भागवत धर्ममें अधिकार ही नहीं है, कारण श्रीकृष्ण के प्रति मति गुरु से, अपने से, अथवा दोनों मिलकर भी नहीं होती है, किस की ? गृह कर्त्तव्यमें ही जिसका संकल्प व चिन्ता है, उसकी, अतएव वह अतृप्त विषयवासना युक्त इन्द्रिय द्वारा पुःन पुनः संसार को प्राप्तकर लेता है, जिस प्रकार गौ खाकर उसको उगल कर चवाता रहता है ।।७६५।। संसार का भय समस्त भयोंसे भी भयावह है, उसके आगे भगवान् श्रीनृसिंहदेव की मूर्त्ति भी भयावह नहीं लगती है। कहते हैं-हे अजित ! मैं आप का रूपको देखकर डरता नहीं हूँ। यद्यपि आपका रूप अतिभीषण है, भयङ्कर मुख, जिह्वा अति विभीषिकापूर्ण, सूर्यके समान नयनद्वय, भृकुटियों का आटोप, अति उग्र दन्तश्रेणी, येसव अति भयानक है, उसमें भी आंतों की माला, शिरमें लाल लाल केशर, भाले के समान उठाहुआ निश्चित दोनों काण,आपका गर्जनसे हाती और शत्रु भयभीत होकर भागजाते है, आपकी नाखून वज्रसे भी तीक्ष्ण है, इस प्रकार भयानक रूपको देखकर भी मैं नहीं डरता हूँ ।।७६६।। हे दीनदयाल !

तथा च अष्टमे वलेरुक्तौ—(८।२२।३)

७६८। "विभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो,
न पाशवन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहा-,
दसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥"

अतः कौमार एव भगवद् भजनात् संसारो नोपपद्यते। तत्राह सप्तमे प्रह्लाद चरिते—(भाः ७।७।४५)

७६९। "किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ।
अनर्थैरर्थसङ्काशैर्नित्यानन्द-महोदधेः ॥"

अतएवाह एकादशे भगवदुद्धवसंवादे—(भाः ११।२०।१६)

७७०। "अहोरात्रैश्छिद्यमानं वुद्धायुर्भयवेपथुः ।
मुक्तसङ्गः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥"

किन्तु मैं अतिउग्र दुःसह संसार दुःखसे ही मैं डरता हूँ, उसमें भी मैं समस्त स्वार्थ परायण हिंस्र मानवोंके वीच मैं पड़ा हूँ। यह मेरा कर्म फल है, हे उत्तम ! कव आप मुझे अपने चरणों के समीप में शरण लेने के लिए वुलाओगे ? (७६७) इस प्रकार अष्टमस्कन्ध में बलि की उक्ति में उक्त है–हे प्रभो ! धन पत्नी आदि से आत्मा की रक्षा करना तो आवश्यक है, किन्तु में आत्मभय परिहार के लिए आत्म समर्पण कर रहा हूँ। कारण मैं नरकसे तथा पदच्युत होने से, दुर्जरनागपाश से, दारिद्र्य से और आपकी कदर्थना से भी नहीं डरता हूँ, मेरा तो डर एकमात्र ही अपकीर्त्ति से ही है ॥७६८॥ अतएव कौमार कालमें भगवद भजन करने से संसार की सम्भावना नहीं रहती है, प्रह्लाद चरितमें कथितहै-नित्यानन्द महोदधि को प्राप्तकरनेके वाद ममतास्पद देहके साथ नश्वर, तुच्छ पदार्थों से क्या प्रयोजन है, जो अनर्थ दायक होकर भी अर्थ के समान प्रतिभात होता है ॥७६९॥ अतएव एकादश स्कन्धरूप भगवदुद्धव संवाद में वर्णित है-सूर्यदेव, दिनरात के द्वारा आयु को काटते रहते हैं, देखकर भयसे मानव कांप उठता है, देहादि

७७१। (भा:११।६।२६) "लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते,

मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।

तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-,

न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥"

ननु कौमार एव भगवन्तं भजेत्, तर्ह्यस्य पुरुषस्य योगक्षेम-निर्वाहो भयादित्राणं कुतः स्यात् ? तत्राह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते-(भा:७।६।१६)

७७२। "बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह,

नार्त्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-,

स्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥"

तथा च दशमे ब्रह्मस्तुतौ—(१०।१४।३६)

७७३। "तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।

तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगड़ो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥"

की आसक्ति को छोड़कर प्रभुचरण को सार माननेपर भय मिटजाता है ॥७७०॥ इस प्रकार अनेक जन्मों के बाद अनित्य होने परभी पुरुषार्थप्रद मानुष शरीर को ईश्वरेच्छा से प्राप्तकर, जातक मृत्यु नहीं आती है, उसके पहले ही मुक्ति के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है, विषय तो पशुआदि समस्त शरीरों में समान रूपसे ही मिलता रहता है ॥७७१॥ पहले कहाहै कि-कौमार कालमे ही भगवान् का भजन करना चाहिये, ऐसा होनेपर योग क्षेमका निर्वाह और भयसे परित्राण कैसे होगा ? इसका उत्तर प्रह्लाद के चरित से देते हैं–दुःख पीड़ित व्यक्ति का उद्धार तो लौकिक रीतिसे ही होता है, भगवद् दास्य से क्या प्रयोजन है ? हे नृसिंह ! इस जगत् में लोकरीति से जो दुःख प्रतीकार की व्यवस्था है, वह सामयिक है, आत्यन्तिक नहीं है, इस जगत् में पितामाता बालक के रक्षक हैं, औषध भी रोगाक्रान्त का रक्षक है, नाव भी डूबने वाले के लिए सहाय है, किन्तु पितामाता

तथा वाणयुद्धे महेश्वर-ज्वरस्तुतौ—(भा १०।६३।२८)

७७४। तप्तोऽहन्ते तेजसा दुःसहेन, शान्तोग्रेणात्युल्वणेन ज्वरेण
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं, नो सेवेरन् यावदाशानुवद्धाः ॥

अतएवाह सप्तमे प्रह्लादचरिते—(७।६।३-५)

७७५। "सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ।
सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥

७७६। तत्प्रयासो न कर्त्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ।
न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्वुजम् ॥

भी वालक की रक्षा नहीं करतेहैं, औषध भी मृत्युसे नहीं रक्षा करते हैं, एवं नावके साथ ही मनुष्य डूव मरता है, इसलिए आप ही एकमात्र शरण हैं ।।७७२।। वीतरागादि दोषयुक्त व्यक्तियों के और सन्नयासीयों के भी में ही एकमात्र प्राप्य हूँ । अतएव व्रजवासियों के लिए अप्राप्य क्या है ? कहते हैं–हे कृष्ण ! रागादि तव तक ही चौर वन सकते हैं, गृह भी तव तक ही कारागार वनते हैं, मोह भी तव तक ही पैर के शृङ्खल वनेगा, जव तक मानव तुम्हारे जन नहीं वनता है, तुम्हारे जन के रागादि भी मुक्तिका ही साधन हैं, कारण वेसव तुम्हारे प्रति प्रयुक्त होते हैं, अतएव व्रजवासियों के भजन सर्वाधिक है ।।७७३।। वाणयुद्ध में महेश्वरज्वर की स्तुति इस प्रकार है–मैं अज्ञानता से ही आपको पराजित करने के लिए प्रवृत्त हुआ था । मैं अतिशय प्रभाव से पीड़ित हूँ मुझे रक्षा करो । तुम्हारे प्रेरित शीतज्वर से मैं आक्रान्त हूँ । परसन्ताप दानकारी को दुःखदेना उचित है ? नहीं प्रभो ! तुम्हारी सेवामें प्रवृत्त व्यक्ति को ताप देना उचित नहीं है ।।७७४।। अतएव प्रह्लाद चरित में कहते हैं–दैत्यगण ! देखो, इन्द्रिय सुख देहके संयोग से सर्वत्र ही देही को मिलता है, दैवात् जिस प्रकार दुःखप्राप्त होता है, उस प्रकार सुखभी विना यत्नसे ही मिलता है ।।७७५।। अतएव उसके लिए प्रयत्न करना उचित नहीं है, कारण व्यर्थ ही उस प्रयत्न में आयुका व्यय होगा, मुकुन्द चरणाम्बुज की सेवाके लिए

७७७। ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः।
शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥"

इदानी मानुषं देहं प्राप्य ये भगवन्तं न भजन्ति, तेषां मानुषदेहलाभानिश्चयान्मानुषदेहलाभस्य विफलत्वं दर्शयति। तत्राह षष्ठे चित्रकेतुं प्रति सङ्कर्षणाज्ञायाम्—(६।१६।५८)

७७८। "लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञान-विज्ञान-सम्भवाम्।
आत्मानां यो न बुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥"

७७९। तथा च दशमे मुचुकुन्द-स्तुतौ—(१०।५१।४५,४६)

विमोहितोऽयं जन ईश मायया,त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते,गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः॥

ही प्रयत्न करना, आवश्यक है, कारण इसको छोड़कर मङ्गल प्राप्ति और किसी से नहीं होती है। ७७६॥ शरीर को प्राप्त करलेने के वाद कुशल व्यक्ति मङ्गल प्राप्त करने के लिए प्रयत्न को, जव तक शरीर अक्षम नहीं होता है॥७७७॥ सम्प्रति मानुषदेह प्राप्त होने के वाद जो लोक भगवान् का भजन नहीं करता है, उसका पुनर्वार मानुषदेह लाभ का निश्चय न होने के कारण मानुषदेह प्राप्त होना व्यर्थ होगा। षष्ठ स्कन्धस्थ चित्रकेतु के प्रति सङ्कर्षण की आज्ञा इस प्रकार है- इन्द्रियों की तृप्ति मनुष्येतर शरीर में उत्तम रूपमें सम्भव है, किन्तु शास्त्रोत्थ ज्ञान, एव अनुभवरूप अपरोक्षज्ञान, अर्थात् विज्ञान का अनुभव इस मनुष्य देहमें ही सम्भव है, इसको प्राप्तकर भी जो व्यक्ति आत्मा को न जानकर ही मृत्यु प्राप्त करता है, वह कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं करेगा॥७७८॥ दशमस्कन्ध के मुचुकुन्दस्तुति में वर्णित है- कृष्णभक्ति केवल दुर्लभ है, काम अति तुच्छ है, अतः वह लेनेके योग्य नहीं है, अभक्तजन उसे चाहते हैं, उससे संसार अनिवार्य है, हे ईश! आप परमार्थ स्वरूप हैं, तथापि लोक आपको परमार्थरूप नहीं मानते हैं, स्त्री, पुरुष, दोनों ही शरीर में ही परमार्थबुद्धि रखते हैं। सुखकी इच्छासे आपका भजन न करके घरमें आसक्त होते हैं, जो प्रतिकूलका

७८० लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं,कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ पादारविन्दं न भजत्यसन्मति,र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥

तथा च वाणयुद्धे महेशस्तुतौ—(भा: १०।६३।४१,४२)

७८१। "देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
जो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥

७८२। यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥"

(भा: १०।८५।१६)

७८३। "यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥"

तथा चैकादशे भगवदुद्धवसंवादे—(११।७।७४)

७८४। "यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढ़च्युतं विदुः ॥"

एकमात्र स्थान है ।।७७९।। कामसुख तो शूकरादि शरीरमें भी सम्भव हैं, किन्तु भगवद् भजन मानुष शरीर व्यतीत अन्यत्र नहीं होता है, मानुष जन्म प्राप्तकर जो आपका भजन नहीं करता है, वह अत्यन्त मूढ़ है, इस कर्मभूमि रूप भारतबर्ष में मनुष्य जन्मलाभ करके भी अविकलाङ्ग होकर भी आपका भजन न कर विषय सुखमें मति करता है, वह गृहरूप अन्धकूप में गिरता है, जैसे पशु तृणके लोभसे कूपमें गिरता है ।।७८०।। वाणयुद्ध में महेश स्तुतिमें उक्त है-ईश्वर नित्य मुक्त परमानन्द स्वरूप हैं, जीव नित्य दुःखी है, कारण वह अजितेन्द्रिय है, परमातमा की कृपासे मनुष्य शरीर को प्राप्तकर भी आपके चरणार विन्दका आदर नहीं करता है, वह आत्मवञ्चक है ।।७८१।। आप आत्म, प्रिय, ईश्वर, मानव इन्द्रिय के विषयमें मुग्ध होकर आपका समादर नहीं करता है, वह अमृतको छोड़कर विष भक्षण करता है। ।।७८२।। हे ईश्वर ! आपकी अनुकम्पा से सुकल्प, सुदुर्लभ मनुष्य देह

(भा: ११।२०।१७)

७८५। नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरु-कर्णधारम्
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा

(भा: ११।२३।२२)

७८६। "लब्ध्वा जन्मामर-प्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम्।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम्॥"

अनादर-प्रकरणं विवृणोमि—(भा: ११।१७।५७,५८)

७८७। "अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः।
अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः॥

७८८। एवं गृहाशयाक्षिप्त-हृदयो मूढधीरयम्।
अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः॥"

को प्राप्तकर भी तुम्हारी मायासे आयुको घरमें ही विता देताहै ॥७८३
भगवदुद्धव संवाद में उक्त है—गृहासक्ति तो पशुपक्षी के लिए भी अनर्थ
हेतु है, मनुष्य के लिए अतीव मन्द है, मुक्ति द्वाररूप मनुष्य शरीर
को पाकर घरमें पक्षीके समान जो मुग्ध हो जाता है वह आरूढ़च्युत
कहलाता है ॥७८४॥ श्रीहरिभजन के लिए जो जन यत्न नहीं करता
है, वह प्रमत्त है, मनुष्य देहरूप नाव को प्राप्तकर भी भवाब्धिका पार
जो नहीं हाता है, वह आत्महा कहलाता है, यह शरीर आद्य है, इस से
उपार्ज्जित सवफल मिलेगा, यह शरीर शत शत उद्यम से भी लाभ
नहीं होता। सुलभ भी है, ईश्वरेच्छासे मिलता है, अतिनिपुण भी है,
गुरुदेव ही आश्रित के लिए नाविक नेता हैं। मैं स्मरण मात्रसे ही
ही अनुकूल पवनरूप से इसे चलाता रहता हूँ ॥७८५॥ मानुष जन्म
देवतागण के प्रार्थनीय हैं, उसमें भी ब्राह्मण देह अति लोभनीय है।
इसको पाकर भी जो आत्महित नहीं करता है वह अशुभ गतिको प्राप्त
करता है ॥७८६॥ अनादर प्रकरणको कहते हैं—हाय! मेरे मातापिता
वृद्ध हैं, पत्नी है, वह भी पुत्रवती है, पुत्र सन्तति हैं, मैं चले जाने पर

अतएवाह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते युधिष्ठिर नारदसंवादे-(७।१५।४५,४६)

७८९। "यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं,
धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।
ज्ञानासिमच्युतवलो दधदस्तशत्रुः,
स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥

७९०। नोचेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता,
नीत्वोत्पथं विषय-दस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे,
संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥"

ननु अभजतां जणानां कः परिणामः ? तत्राह आर्षभकथने-भाः- (११।५।१-३,५-७,८,९,१५-१६)

७९१। "भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ।
तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ?

मुझको छोड़कर येसव कैसे जीवेंगे ? (७८७) इस प्रकार गृहमें निगूढ़ वासना होने के कारण मूढ़व्यक्ति उससे अपरितृप्त होने के कारण निरन्तर उसकी चिन्तामें रहता है, मृत्यु होनेपर वह अति तामसी योनि प्राप्त करता है ।।७८८।। अतएव सप्तमके प्रह्लादचरितमें कहागया है-जवतक शरीर इन्द्रिय अपने वशमें है, तव ही सद्गुरुके चरणसेवा से उज्ज्वल ज्ञान प्राप्तकर अच्चुताश्रय हो जाय, ओर उपशान्त होकर निजानन्दसे सन्तुष्ट होकर शरीर की आसक्ति की परित्याग करें ।७८९ अन्यथा वहिर्मुखइन्द्रिय सव प्रवृत्ति मार्गमें ले जाकर विषय दस्यु को दे देगा, शरीर और मनके साथ हो गाढ़ अन्धतम संसारमें पतन हो जावेगा ।।७९०।। अच्छा;-जो लोक हरिका भजन नहीं करता है,उस की गति क्या होगी ? कहते हैं-हरि भजनकारी के लिए देवगण द्वारा अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं, भक्तजन विघ्नके शिर पर पैर रखकर वैकण्ठ गमन करतेहैं,किन्तु अशान्त कामनावालों की गति क्या होगी?

तत्राह—

७९२। मुखवाहूरुपादेभ्यः पूरुषस्याश्रमैः सह।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक्॥

७९३। य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥"

७९४। "विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम्।
श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः॥

७९५। कर्म्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः।
वदन्ति चाटुकान् मूढ़ा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः॥

७९६। रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः।
दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युत-प्रियान्॥

परमपुरुष के मुख, वाहु, उरु, पाद से गुणकर्म विभाग द्वारा चार वर्ण व चार आश्रम उत्पन्न हुए हैं ॥७९१,७९२॥ निज जनक गुरु श्रीहरि के अवमानन, अनादर, एवं द्रोहसे अधोगति होती है, सत्त्वगुण से विप्र, सत्त्व रजसे क्षत्रिय, रजतम से वैश्य, तम से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। इसके मध्यमें जो लोक न जानकर, अथवा जानकर भी भजन नहीं करता है, वे लोक कृतघ्न होते हैं, और वर्णाश्रमसे भ्रष्ट हो जाते हैं ॥७९३॥ ज्ञानलवदुर्विदग्ध व्यक्ति अचिकित्स्य होने के कारण उपनयनादि संस्कार अध्ययनादि का सुअवसर प्राप्त होने के वाद भी स्वार्थपरायण होकर काम्यकर्ममें आसक्त हो जातेहैं ॥७९४॥ कर्माकर्म ज्ञानशून्यजन वन्धमोक्ष को जानता नहीं स्वयं अभिमानी होकर स्वार्थ के लिए उपदेश करते हैं, अप्सरा के साथ विहार करेंगे, इसप्रकार प्रलोभन वाक्यसे मुग्ध होते हैं। रजोगुणों से प्रेरित होकर घोरसंकल्प कामुकता सर्पकी भाँति क्रूरता, दाम्भिकता, अभिमानी, भगवत् विमुखता आ जाती है, वे सव उक्त स्वभावाक्रान्त होकर भगवद्भक्त को उपहास करतेहैं ॥७९६॥ वे लोक कामुक होकर केवल कामाभ्यास

७९७।

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासित-स्त्रियो,गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ।
यजन्त्यसृष्टान्नविधान-दक्षिणं,वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ।।

७९८।

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया,त्यागेन रूपेण वलेन कर्मणा ।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्,सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः

७९९।

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं,यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ।
वेदोपगीतञ्च न शृण्वतेऽवुधा,मनोरथानां प्रवदन्ति वार्त्तया ।।"

८००। "द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ।
मृतके सानुवन्धेऽस्मिन् वद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ।।"

ही करते हैं,स्त्रियों की ही उपासना करते हैं. देव गुरु प्रभृति की नहीं, मैथुनसुख ही परंसुख है, आतिस्थ्य प्रभृति में वे लोक अभिरुचि नहीं रखते हैं। गृहासक्ति उसके लिए आशीर्वाद है, आज मैंने पाया, कल ऐसा करूँगा, यह मेरा है, और भी मेरा इस प्रकार से धन होगा। इस प्रकार निरन्तर सङ्कल्प करते रहते हैं। वे सव दम्भ के लिए ही अन्नदान प्रभृति कार्य करते रहते हैं, एवं जीविका के लिए ही पशु हत्या करते हैं,हिंसासे दोष होता है, यह वे लोक नहीं जानते हैं।।७९७ वे लोक अत्यन्त मानी होते हैं,धन सम्पद्,ऐश्वर्य, परिजन विद्या, त्याग, रूप, वल, कर्म, से गर्वित होकर अन्ध हो जाते हैं, साधारण मनुष्य की वात ही क्याहै, ईश्वर को भी नहीं मानते हैं। सज्जनगण की तो हिंसा करते ही हैं।।७९८।। इस प्रकार स्थितिमें रहनेके कारण शास्त्र को भी वे लोक नहीं मानते हैं, ईश्वर सर्वत्र अवस्थित हैं, आत्मरूप में ईश्वररूपमें सर्वत्र विराजित हैं, इस को भी नहीं मानते हैं, शास्त्र श्रवण भी नहीं करते हैं, स्त्री सम्भोग, आमिष, मद्य सेवा प्रभृति की कथा ही करते रहते हैं,निवृत्ति परक वेद को प्रवृत्ति पर रूपसे व्याख्या करते हैं।।७९९।। दुसरे की हिंसा करते हैं, इससे सर्वत्रावस्थित हरि

८०१। "हित्वात्य्यायास-रचिता गृहापत्य-सुहृत्-स्त्रियः।
तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेव-पराङ्मुखाः ॥"

ऋषीणामपि भगवद्विमुखानां संसारकूप-पतनम्। तत्राह तृतीये ब्रह्मस्तुतौ—(३।९।१०)

८०२। "अह्न्यापृतार्त्त-करणा निशि निःशयाना,
नानामनोरथधिया-क्षणभङ्ग-निद्राः।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव,
युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥"

८०३। तत्राह सप्तमे प्रह्लाद चरिते—(७।५।३१)

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं,दुराशया ये बहिरर्थमानिनः
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना,वाचीशतन्त्र्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥

की हिंसा होती है, मरण धर्मयुक्त पुत्र कलत्र आदिमें स्नेह परायण होकर अधोगति को प्राप्त करता है ॥८००॥ वासुदेव पराङ्मुख व्यक्तिगण अति क्लेशसे रचितगृह अपत्य सुहृत् स्त्री प्रभृतिको छोड़कर अनिच्छा से भी पुनर्जन्म को प्राप्त करते हैं ॥८०१॥ भगवद्विमुख ऋषियों का भी संसार कूपमें पतन सुनिश्चित है, तृतीयस्थ ब्रह्मस्तुति में उसका वर्णन इस प्रकार है-अविवेकी व्यक्तिगण संसार को प्राप्त करते हैं, यदि भक्ति द्वारा भगवद् भजन नहीं करते हैं तो, किन्तु विवेकीगण तो मुक्त हो जाते हैं, भगवद् भक्ति से क्या प्रयोजन है ? कहते है-दिन में इन्द्रियगण विषय ग्रहण कर क्लान्त हो जाते हैं। रात्रिमें भी लवमात्र सुख नहीं होता है, कारण निद्रा नहीं होती है, क्षण क्षणमें नींद टूटजाती है, प्रयत्न से जो कुछभी अर्थोपार्ज्जन होता है वह भी दैवसे नष्ट हो जाता है, इस प्रकार विषय में आविष्ट होकर विवेकीगण संसार को प्राप्तकर लेते हैं ॥८०२॥ श्रीकृष्ण परमानन्द स्वरूप होने परभी विषयवासना के द्वारा दूषित अन्तःकरण होने से उनके प्रति रुचि नहीं होती है, विष्णु को जानने के लिए विष्णु

ननु निकृष्टजातीनां भगवद्भजनाभावादधोगतिरस्तु, ब्राह्मणस्तु भगवतो मुखाज्जातो भगवानपि ब्रह्मण्यस्तर्हि तस्य कथं भगवद्भजनाभावादधःपातः ? तत्राह—(भाः ७।९।१०)

८०४। "विप्राद्‌द्विषड्‌गुणयुतादरविन्दनाभ-,
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पित-मनोवचनेहितार्थ-,
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥" *

असतां महद्‌विनिन्दा नाश्चर्या, किन्तु भगवत्परायणैस्तत्र न स्थातव्यम्; यदि दण्डसमर्थाः स्युस्तर्हि तेषां जिह्वां छिन्देयुः । तत्राह दक्षं प्रति सत्याः क्रोधे—(भाः ४।४।१३,१७)

को ही पुरुषार्थ मानना आवश्यक है, गुरु उपदेशसे विषयासक्त व्यक्ति भी विष्णुको जान सकते हैं ? नहीं वहिर्विषय को ही पुरुषार्थ मानकर उसमें गुरुत्व प्रदान करते हैं, गुरुभी वसा ही होते हैं, अतएव अन्ध जिस प्रकार अन्धका मार्ग दर्शक वनकर गड्‌डे में डाल देता है, इस प्रकार काम्यकर्म में आसक्त गुरुगण ईश्वर वहिर्मुख कर्म में प्रवृत्त करादेते हैं, कारण विषयाविष्ट चित्त में विष्णुका आवेश नहीं होता है, पूर्वदिक् के और मुखकर चलने से पश्चिम दिग् की वस्तु कैसे मिलसकता है ? (८०३) निकृष्ट जाती के लोक;भगवद्‌ भजन न करने पर अधोगति हो, किन्तु ब्राह्मण तो भगवान् के मुखसे उत्पन्न हैं, और भगवान् भी ब्रह्मण्यदेव हैं' तव कैसे भगवद्‌ भजन के अभावसे उनका अधःपात होगा ? कहते हैं-धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, लज्जा, असूया रहित, यज्ञ दान धृति अध्ययन, ये द्वादश व्रत ब्राह्मण के होते हैं, ऐसे द्वादश गुणयुक्त ब्राह्मण भी यदि श्रीहरि के चरणारविन्दों का भजन नहीं करते हैं तो श्रेष्ठ नहीं होते हैं, उनसे चण्डाल ही श्रेष्ठ है, यदि वह हरि भजन करता है तो, हरि भजनकारी व्यक्ति अर्पित प्राण होता है, उससे हरि प्रसन्न होते हैं, किन्तु गर्वसे हरि प्रसन्न नहीं होते हैं । भगवद्‌ भजनहीन के समस्त गुणावली गर्वके लिए होतेहैं ॥८०४॥ दुर्जन के लिए महत् निन्दा उचित ही है, कारण वे सव जड़ शरीर में

८०५।
"नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा,महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु
सेर्ष्यं महापूरुष-पादपांशुभि.र्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ॥"

८०६। "कर्णौ पिधाय निरियाद् यदकल्प ईशे,
धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।
छिन्द्यात् प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे-,
ज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत् स धर्मः ॥"

ननु भगवज्जन्म कर्म-गुणनाम्नां श्रवणकीर्त्तनादिलक्षणा भगवद्भक्तिः, जन्मकर्मादीनि कियन्ति ? तन्निरूप्यताम् । तत्राह दशमे ब्रह्मस्तुतौ-
(१०।१४।७)

८०७।
गुणात्मनस्तेऽपि-गुणान् विमातुं,हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै,र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥

तथा च मुचुकुन्दोपाख्याने—(भा: १०।५१।३६-३८)

८०८। "जन्माकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तान्मयापि हि ॥

आसक्त हैं,ईर्षा,ईर्षाकारी की सुकृति को नष्टकर देती है,महत्गण यद्यपि निज निन्दाको सहन करतेहैं,तथापि महद्गणके चरणरेणु निन्दाकारी की तेजको नष्टनर देती है ॥८०५॥ निन्दाकारी को मारने की शक्ति नहीं हो तो दोंनों कानों को ढाक कर वहाँसे निकल जाय । धर्मरक्षक प्रभुस्वामी की निन्दा कभी श्रवण न करे, न समर्थ हो तो निन्दाकारी की जिह्वा को खीचकर काट डाले, नहीं तो अपना प्राण ही त्याग दें, यह ही स्वधर्म है ॥८०६॥ भगवद् जन्म, कर्म, गुण नाम के श्रवण कीर्त्तन करना ही भगवद् भक्ति है, जन्माकर्मादि कितने प्रकार के हैं, उसका वर्णन होना आवश्यक है, दशमस्कन्ध की ब्रह्मस्तुति में उक्त है-आप निखिल गुणों के आधार हैं, गुण इतने हैं, इस प्रकार गणना करने में कौन समर्थ है ? निपुण व्यक्तिगण वहुकाल लगाकर पृथिवी

८०६। क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित्॥
८१०। कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः॥"

तर्हि भगवत्तत्त्वं के जानन्ति ? तत्राह ब्रह्मस्तुतौ–(भा: १०।१४।२९)

८११। अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय,प्रसादलेशानुगृहीत एव हि
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो,न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्

तथा च युधिष्ठिर-राजसूयोद्यमे –(भा: १०।७२।४)

८१२। "त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति,
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-,
माशसते यदि त आशिष ईश नान्ये॥"

के रेणुकी गिनतीकर सकते हैं, किन्तु आपके गुणगण की गणना नहीं हो सकती है, कारण विश्व पालनके लिए अनेक गुणोंका आविष्कार करते हैं।।८०७।। हे अङ्ग ! जन्मकर्म नाम समूह सहस्र हैं, अनन्त होने के कारण मैं भी संख्या नहीं कर सकता हूँ।।८०८।। अनेक जन्म लगाकर निपुण व्यक्तिगण पृथिवी के रजःगुण की गिनती कर सकते हैं किन्तु मेरे जन्मकर्म नाम की संख्या नहीं हो सकती है।।८०९।। भूतभविष्य वर्त्तमानमें अनुष्ठित जन्मकर्म गुणादि इतने हैं कि ऋषिगण भी इसकी गणना नहीं कर सकते हैं।।८१०।। तव भगवत्तत्त्व को कौन जानते हैं ? ब्रह्मस्तुति में कहते हैं, भक्ति ही सारवस्तु है, कब आप की कृपा होगी, इस प्रकार आशावद्ध होकर निज कर्मफल को भोगते रहे, और अत्यन्त क्लेश न.कर हो यदि जीवित रहता है, तो वहजन भक्ति का अधिकारी होता है।।८११।। जवज्ञान से ही मुक्ति होती है तो भक्ति की आवश्यकता ही क्या है ? ज्ञान तो अतिसुलभ है, किन्तु आपके चरणाम्बुज का तत्त्व जानना असम्भाव है, भक्तगण आपके

अतएवोपसंहारमाह ब्रह्मस्तुतौ—(भा:१०।१४।८)

८१३। तत्तेऽनुकम्पां प्रसमीक्षमाणो,भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते,जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

ननु भगवान् स्वसेवकं कथं निगृह्णाति ? भगवानेवं परीक्षार्थं निगृह्णाति, निगृहीतः सन् यद्यनुग्रहं मन्यते, तर्ह्येव प्रसादो भवतीति। अत्राहाष्टमे वलिनिग्रहे—(८।२२।४-७)

८१४। "पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम्।
यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥

८१५। त्वं नूनमसुराणां नः परोक्षः परमो गुरुः।
यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥

८१६। यस्मिन् वैरानुवन्धेन रूढ़ेन विवुधेतराः।
वहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥

प्रसाद लेशसे ही श्रीचरण महत्त्वको जान जातेहैं ॥८११॥ उन चक्रवर्त्तियों के मनोहर को आप पूर्ण करते हैं, जो लोक आपके चरणों में नत रहते हैं, मनसे स्मरण करते हैं, वाणीसे कीर्तन करते हैं, वे लोक आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। अपर लोक मङ्गलप्राप्त नहीं करते हैं ॥८१२ भगवान् निज सेवक को दण्ड क्यों देते हैं ? भगवान् इस प्रकार दण्ड परीक्षा के लिए देते हैं, निगृहीत होकर भी यदि अनुग्रह माने तो, भगवद् प्रसाद हो जाता है, इस को कहते हैं, अष्टमके वलिनिग्रह सन्दर्भ में-पूज्य श्रीहरि के द्वारा प्रदण्ड दण्डभी मानव के लिए प्रशंसा के योग्य है, माता, पिता, भ्राता, सुहृद भी इस प्रकार दण्ड नहीं देते हैं ॥८१४॥ श्रीहरि देवता के वन्धु हैं, असुरों के नहीं ? असुरों के आप परम सुहृद् एवं गुरु हैं, हम सव श्रीमद् से अन्ध हैं, ऐश्वर्य मदसे मुक्त हमें उत्तम नेत्र आपने प्रदान किया है ॥८१५॥ भक्तको जिस प्रकार अनुग्रह करते हैं, हमे भी शत्रुता को देकर सर्वदा अनुग्रह ही करते हैं ॥८१६॥ इसलिए मैं भूरिकर्म्म आपसे निगृहीत, वारुणपाश

८१७। **तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ।**

बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीड़े न च व्यथे ॥"

८१८। एतदेव पितामहाचरणेन द्रढ़यति—(भाः ८।२२।८)

पितामहो मे भवदीय-सम्मतः,प्रह्लाद आविष्कृत-साधुवादः ।

भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं, संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥

तस्य यादृशेन विचारेण भगवति भक्तिनिश्चयस्तन्निरूपयति-८।२२।९-।१

८१९। **"किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः,**

किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।

किं जायया संसृतिहेतुभूतया,

मर्त्तयस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ?

८२०।

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महा,नगाधवोधो भवतः पादपद्मम्

ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्,भीतः स्वपक्ष-क्षपणस्य सत्तम ॥

से वद्ध होकर भी लज्जित एवं दुःखित नहीं हूँ ॥८१७॥ पितामह के आचरण द्वारा पुष्टकर कहते हैं–आपने जो अनुग्रह रूप दण्ड मुझ को प्रदान किया है, वह मेरी योग्यता से नहीं, किन्तु मेरा पितामह श्रीप्रह्लाद आपका जन है,कारण पितामह ने साधुमार्ग को अवलम्बन किया था, आपका ही आश्रय लिया आपका विद्वेषो विपक्ष हिरण्य कशिपुने आपकी हिंसा की, प्रह्लाद ने देहादि को नश्वर जानकर अकुतोभय ध्रुव स्वरूप आपके चरणार विन्दों का आश्रयग्रहण किया। अतएव मैं उनके ही पुण्य एव भाग्य से आपके सान्निध्य लाभकिया। ॥८१७॥ जिस प्रकार विचार से भगवत चरणार विन्दों में भक्ति प्रह्लाद जी की हुई है, उसको कहते हैं–अन्तकाल में जो शरीर छोड़ देता है, पुत्रादि स्वजन नामक दस्युसे क्या प्रयोजन हैं, जो सवकुछ लुन्ठन करता है, पत्नी तो संसार का एकमात्र कारण है, उससे क्या प्रयोजन है ? मरण धर्मा मनुष्य के लिए घरसे ही क्या प्रयीजन है,

८२१। अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं,
दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।
इदं कृतान्तान्तिकवर्त्ति जीवितं,
ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥"

तथा च चतुर्थे पुरञ्जनोपाख्याने—(४।२६।२१,२२)

८२२। "नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ।
कृतागस्स्वात्मसात् कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥
८२३। परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ।
बालो न वेद तत्तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥"

आस्तां तावत् सेवक-परीक्षा, वक्षसि स्थिताया लक्ष्मीरूपाया रुक्मिण्याः परीक्षा क्रियते । तत्राह दशमे भगवद्रुक्मिणीसंवादे—(१०।६०।५६)

जिसमें केवल आयुका ही व्यय होता है, कुछभी सुख नहीं है ॥८१९॥ पितामह प्रह्लादने इस प्रकार निश्चय कर जनमानव से भीत होकर अकुतोभय नित्यसुख स्वरूप आपके चरणारविन्दों की शरण ली, हे सत्तम, आपके श्रीचरण असुर नाश करने में सुदक्ष हैं ॥८२०॥ मैं भी असुररिपु आपके चरणारविन्द सान्निध्य प्राप्त किया, बलपूर्वक धन सम्पत्ति श्री से मुझको भ्रष्ट किया, यह परम अनुग्रह है, जिस धनमद से मानव समीपस्थ मृत्यु को भी स्वीकार नहीं करता है, और जीवन को अध्रुव नहीं मानता है ॥८२१॥ चतुर्थस्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान में कथित है-निश्चय ही वे सब भृत्य हतभागा हैं, जो लोक अपराधी होनेपर भी शिक्षाके लिए प्रभुसे दण्ड प्राप्त नहीं करते हैं, यह सेवक मेरा है, इसको शिक्षा देना आवश्यक है, इस बुद्धि से प्रेरित होकर यदि प्रभु भृत्यको दण्ड नहीं देते हैं ॥८२२॥ दण्ड ही परमाग्रह का एकमात्र सोपान है, जो लोक दण्डित होकर विषण्ण होते हैं वे बालक हैं, प्रभुदण्ड दान से परम अनुग्रह को प्रकट करते हैं, इस बन्धुकृत्य को क्रोधी भृत्य नहीं जानता है ॥८२३॥ सेवक की

८२४। "भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य,
प्रोद्वाह-पर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या,
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ।।"

तथा चासद्भिर्निगृहीतोऽपि भगवति निश्चयात्मा नोद्विजते । तत्राह एकादशे भगवदुद्धसंवादे इतिहासकथने अवन्तिपुरवासि-ब्राह्मणनिर्वेदे- (११।२२।५८,५९)

८२५। "क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽपि वा ।
ताड़ितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ।।

८२६। निष्ठ्यूतो मूत्रितो बाज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः ।
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ।।"

तथा च भगवद्भक्ता आत्मस्तवनमपि न सहते । तत्राह चतुर्थे

८२७। पृथुचरिते—(४।१५।२३-२६)

तस्मात् परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं,करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः
सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे, जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ।।

परीक्षा तो होती हीहै,किन्तु बक्ष-स्थल निवासिनी स्वयं लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी जी की परीक्षा हुई थी, भगवद् रुक्मिणी संवाद में इस का विवरण सुस्पष्ट है-विवाह पर्वमें भाई को वध करना: पहले युद्ध में भाई को परास्त तथा विरूप करना प्रभृति अत्यन्त असहनीय दुःख प्रदान करने परभी रुक्मिणी जी कुछ भी नहीं बोली ।।८२४।। असतों से निगृहीत होकर भी भगवद्भक्त उद्विग्न नहीं होते हैं,एकादशस्कन्ध के भगवद् उद्धव संवादमें इसका विवरण इस प्रकार है,दुःख प्रतीकार का कोई उपाय न कर भगवन्निष्ठासे अविचल रहे । दो श्लोकों से इस को कहते हैं-लोकों ने वहुत आक्षेप किया, अपमान किया, उपहास किया, दोषारोपण, ताड़न, बँधकर रखना, वृत्ति को नष्टकर देना, थूँका, मूतकर भिजादिया, परमेश्वर निष्ठासे भ्रष्ट करादिया, असीम

८२८।
महद्गुणानात्मनि कर्त्तुमीशः,कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि।
तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो,जनावहासं कुमतिर्न वेद॥

८२९। प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः।
ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम्॥

८३०। वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः।
कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम वालवत्?"

तथा च भगवद्भक्तैः सप्तद्वीपाधिपत्यलाभेऽपि भगवद्भक्ते न दण्डो ध्रियते। तथा पृथुचरिते—(भाः ४।२१।१२)

क्लेशों में डाला, तथापि असीम धैर्यधारण कर भगवद्भक्त श्रीहरि का भजन ही करते हैं ॥८२५,८२६॥ भगवद्भक्त आत्म प्रशंसा को भी सहन नहीं करते हैं। पृथुचरित में वर्णित है,—पृथुमहाराज ने बोला श्रीहरि के गुण सर्वत्र सुस्पष्ट है, हमारे यश वर्णन से क्या प्रयोजन है, सभ्यगण से प्रेरित होकर ही आपकी स्तुति करने में प्रवृत्त हुये हैं, उत्तर में कहते हैं-उत्तम श्लोक के गुणानुवाद को छोड़कर अर्वाचीन निन्दनीय हमारी स्तुति करना अनुचित है ॥८२७॥ गुणोंकी सम्भावना करके ही व्यक्ति की स्तुति की जाती है, नहीं गुणों से ही महत् होते हैं, यदि महत्त्व सम्पादक गुण सकल स्तुति के समय विद्यमान न हो तो सम्भावना करके कौन स्तव करवाता है ? जिस के महत्गुण है, वह तो निज महत् गुणों से स्वयं ही ख्याति को प्राप्त करेगा, उसकी स्तुति से क्या प्रयोजन है, मिथ्या गुणसे आत्मश्लाघा कारी व्यक्ति मन्द होता है, यदि यह शास्त्राभ्यास करेगा तो विद्यादि गुण होगा, इस प्रकार प्रलोभन वाक्य से भी प्रेरित होकर स्तुति करना उचित नहीं है ॥८२८॥ विख्यात कीर्त्ति वाले जनगण निजगुण को सुनकर लज्जित होते हैं, एव गर्हित पुरुषकार का कीर्त्तन को पसन्द नहीं करते हैं ॥८२९॥ हम तो श्रेष्ठ गुणोंसे अपरिचित हैं, अतःश्रेष्ठ कार्य से आपने को वालक की भाँति मिथ्या स्तुतिसे अलङ्कृत करेंगे ॥८३०

८३१। "सर्वत्राव्याहतादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ।
अन्यत्रब्राह्मण कुलादन्यत्राच्युत-गोत्रतः ।।"

तथा च भगवद्भक्तस्येन्द्रियाणि असत्पथे न पतन्ति, वचसो मनसो न मृषाविषयः तत्राह ब्रह्मनारदसंवादे-(भ.२।६।३४)

८३२। न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते,न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे,यन्मे हृदौत्कण्ठचवता धृतो हरिः

एतां विद्यां येन न दद्यात्तन्निरूपयति तृतीये कपिलदेवहूति-सवादे-
(३।३२।३९,४०)

८३३। "नैतत् खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ।
न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ।।

८३४। न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढ़चेतसे ।
नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ।।"

सप्तद्वीपाधिपत्य प्राप्त होने परभी भगवद् भक्त, भगवद् भक्तके प्रति दण्ड प्रदान नहीं करते हैं.पृथुचरित में इसका विवरण इस प्रकार है-महाराज पृथु सप्तद्वीप के सम्राट् थे, सप्तद्वीपों में एकमात्र अप्रतिहत आदेश उनका ही चलता था, किन्तु ब्राह्मणकुल एवं अच्युत गोत्र वैष्णवों को छोड़कर ही सर्वत्र शासन करते थे, वे लोक धार्मिक होने के कारण स्वयं ही ईश्वर आदेश पालन कर चलते थे। ८३१।। भगवद् भक्त की इन्द्रिय भी असत् पथमें धावित नहीं होती है, मन एवं वाणी के विषय, मित्थ्या नहीं होती है। ब्रह्म नारद संवाद में इसका विवरण है-हे अङ्ग ! मैंने ईश्वर के विषय में जो कुछ कहा है, वह सब वास्तविक सत्य है, मैंने ईश्वर को जानकर ही कहा है, उत्कण्ठा से मैंने श्रीहरि को हृदय में धारण किया है। अत मेरी वाणी एवं इन्द्रियगण ईश्वर को ही विषय कहती हैं ।।८३२।। यह जिस को देना नहीं है, उसका लक्षण कहते हैं-खल व्यक्ति जो दूसरे को उद्वेग देता है, वह दुराचारी व्यक्तिं, धर्मध्वज दाम्भिक व्यक्ति उस धर्म श्रवणका अधिकारी नहीं होगा ।।८३३।। लोभी, पुत्र कलत्रमें आसक्त,

तथा चैकादशे भगवदुद्धव-संवादे—(११।२९।३०)

८३५। "नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥"

तथा च येषु दद्यात्तन्निरूपयति--(भा: ३।३२।४१,४२)

८३६। "श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ।
भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥

८३७। वहिर्जात-विरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् ।
निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥"

(भा: ११।२९।३१)

८३८। "एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥"

(भा: ११।२९।३२)

८३९। "नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥"

अभक्त, भक्तजन विद्वेषीको इसका दान न करे॥८३४॥ एकादशके भगवदुद्धव संवादमें वर्णित है अथापि, तुम कभी भी श्रद्धाहीन दाम्भिक, नास्तिक, शठ, परिचर्याहीन, अभक्त एवं दुर्विनीत व्यक्ति को इसका उपदेश न करे ॥८३५॥ जिसको उपदेश देनाहै, उसका लक्षण कहते हैं-श्रद्धालु, भक्त, विनीत, असूया रहित, प्राणीमात्रके वन्धु एवं शुश्रूषारत व्यक्ति को ही इसका उपदेश करना ॥८३६॥ वाहरके वस्तुमें जिसका विराग है, शान्तचित्त, निर्मत्सर, पवित्र, एवं भगवत् प्रीतिशील व्यक्ति को इसका उपदेश करना ॥८३७॥ उक्त दोष समूह जिसमें नहीं हैं, दयालु, भगवान् में ममतायुक्त, पवित्र, साधुभक्त को इसका उपदेश दान करे, यदि उक्त लक्षण शूद्र एवं स्त्री में हो तथापि वह इसका अधिकारी होगा ॥८३८॥ जिसप्रकार अमृत पानकरने के वाद ओर कुछ पिनेका बाकी नहीं रहजाता है, उस प्रकार इसको जानने के वाद जिज्ञासु का

(भा: ११।२९।२६)

८४०। "य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ।।"

तथा च भगवदुद्धवसंवादे—(भा: ११।१९।४५)

८४१। "किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभय-वर्जितः ।।"

संसाररोग-रुग्णस्य महतामुपदेश एव परमौषधम् । तत्राह पञ्चमे
८४२। जड़भरत-रहूगणसंवादे-(५।१२।२)

ज्वरामयार्त्तस्य यथागदं स,न्निदाघ-दग्धस्य यथा हिमाम्भः ।
कुदेहमानाहि-विदष्टदृष्टे, ब्रह्मन् वचस्तेऽमृतमौषधं मे ।।"

तथा च आर्त्त एव भगवद्भजनाधिकारी । तत्राह षष्ठे वृत्रस्तुतौ-
८४३। (६।११ २६)

अजातपक्षा इव मातरं खगाः,स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा,मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ।।

और कोई जानने के लिए वाकी नहीं रहजाता है ।।८३९।। जो व्यक्ति मेरा भक्तको उत्तम रूपसे इसको कहेगा,शास्त्र प्रदानकारी उस व्यक्ति को मैं स्वयं ही अपने को दे दूंगा ।।८४०।। भगवद् उद्धव संवाद में वर्णित है-उद्धवने मोक्षोपयोगिज्ञान को उत्तम रूपसे जानने के लिये पुछा था, किन्तु गुण और दोष दोनों हि दर्शनका ही दोषरूप है, गुण दोष दर्शन वर्जित दर्शन ही मुक्ति ज्ञान के लिए उपयोगी है ।।८४१।। संसार रोग रुग्णव्यक्ति के लिए महत् का उपदेश ही परम औषध है, पञ्चमस्कन्ध के जड़भरत संवाद में उक्त है-ज्वरादि से पीड़ित व्यक्ति के लिये जिस प्रकार औषध, गरमी में पीड़ित व्यक्ति के लिए शीतल जल, महोषध है, उस प्रकार कुदेशाभिमानरूप सांपसे कटा हुआ व्यक्ति के लिए हे ब्रह्मन् ! आपकी वाणी परमामृत औषध स्वरूप है ।।८४२।। आर्त्तजन ही एकमात्र भगवद् भजनाधिकारी है-षष्ठस्कन्ध

भगवद्भक्तं शारीर-मानस-भौतिकाश्च कथं क्लेशा अपि न बाधन्ते ? तत्राह तृतीये विदुरमैत्रेय-संवादे—(३।२२।३७)

८४४। "शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरि-संश्रयम् ?"

भगवान् स्वलाभ-संपूर्णः, यदि कस्मादपि मानं विदधाति, तस्यैव लाभः । तत्राह सप्तमे प्रह्लाद-चरिते—(७।६।११)

८४५। "नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो,
मानं जनादविदुषः करुणो वृणोते ।
यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं,
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ।।"

निरपेक्षा अपि भगवति भक्तिं कुर्वन्ति, तत्राह प्रथमे-(१।७।१०)

८४६। "आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ।।"

वृत्रकी स्तुति इस प्रकार है-हे अरविन्दाक्ष ! अजातपक्ष पक्षी शावक जिस प्रकार माता के पथ देखता रहता है, छोटा गोवत्स जिस प्रकार भूखसे पीड़ित होकर माता के स्तन दूधको चाहता है, प्रिया प्रिय के अदर्शन से विषण्ण होकर जिस प्रकार रहती है, ठीक उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे दर्शन के लिए उत्सुक है ।।८४३।। भगवद् भक्तको शरीर, मानसीक, दैविक, भौतिक, एवं मनुष्य से उत्पन्न क्लेश बाधा प्रदान में समर्थ नहीं होते हैं, कारण भक्तका मन श्रीहरि चरणाश्रित है ।।८४४।। भगवान निजलाभ पूर्ण हैं,जो कोई व्यक्ति उनको सम्मान करता है तो वह सम्मानी होकर ही आता है, उसका ही लाभ होता है, सप्तमस्कन्धमें प्रह्लाद जीने कहाहै, प्रभु निज लाभ पूर्ण हैं,अविद्वान् से कुछ भी नहीं चाहते हैं,भगवान् परम करुण हैं, पुष्प तुलसी लाकर पूजन करने में जो क्लेश भक्तका होता है, भगवान् उस क्लेश को देख कर दुःखी हो जाते हैं, भगवान् सोचते हैं, कि भक्त मेरे लिए कितना

तथा भागवतानामस्फुटं वर्त्म मनुष्यैर्न वुध्यते। दशमे भगवद् रुक्मिणी-संवादे—(१०।६०।३५,३६)

८४७। "नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं,
त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम्।"
त्वत्पादपद्म-मकरन्दजुषां मुनीनां,
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्॥"

तथा च भगवद्भजनेनैव सर्वदेवता-भजनं भवतीति। तत्राह चतुर्थे प्रचेतसः प्रति नारदोपदेशे—(४।३१।१४)

८४८। यथा तरोर्मूल-निषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥"

क्लेश उठाता है, इसलिए दर्पण के आगे खड़ा होनेपर दर्पण की कुछ भी शोभा नहीं होती है, किन्तु वह मानव अपना मुख दर्पणमें देखकर खुसी हो जाता है, उसप्रकार भगवान् की पूजा सम्मान करने के लिए जो जाता है वह स्वयं सम्मानित होकर आता है ।।८४५।। निरपेक्ष व्यक्तिगण भी भगवान् के प्रति भक्ति करते हैं, प्रथमस्कन्ध में कहा है- निर्ग्रन्थ आत्माराम मुनिगण भगवान् के प्रति अहैतुकी भक्ति करते हैं, इस प्रकार गुणसम्पन्न श्रीहरि हैं ।।८४८।। उस प्रकार भगवद् भक्तों के आचरण अत्यन्त अगम्य है, मनुष्यगण उसे समझ नहीं पाते हैं, दशममें भगवद् रुक्मिणी सम्वाद इस सन्दर्भ में इस प्रकार है— आपने कहा राजाओं के भयसे मैं समुद्रके बीच में रह रहा हूँ आपतो उरुक्रम हैं आपका भय कहाँ है आप तो हृदय में अपरिच्छिन्न रूपमें प्रकाशित होते हैं आप चैतन्यघन आत्मस्वरूप हैं। बलवानों के साथ विग्रह है यह जो कहा यह सत्य है असत् इन्द्रियगण के द्वारा परिचालित व्यक्तिगण आपके साथ नित्य ही विग्रह करते हैं आंपने कहा-नृपासनको छोड़ा है यह भी ठीक हैं राजपद गाढ़तम अन्धकार स्वरूप हैं अविवेक पूर्ण है तुम्हारे सेवकगण ही राजपद को छोड़देते हैं तब आपकी बात् ही क्या है। लोक आप को जान नहीं पाते हैं

८४६। रचितस्तत्त्वसारोऽयं भक्तीनां जगतीपतेः।
प्रीतये महतां श्रीमत्पुरुषोत्तम-शर्मणा।।

८५०। कृतावतारौ स्थितये धर्मस्य जगदीश्वरौ।
कलौ श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ सदीश्वरौ।।

८५१। यदिदं सर्वमाख्यातं तत् सर्वं सुमहात्मसु।
श्रीनित्यानन्द-देहेषु घटते नान्यदेहिषु।।

८५२। नित्यानन्द-पदद्वन्द्व-मकरन्द-मधुव्रताः।
तेषां दासानुदासोऽसौ पुरुषोत्तम-शर्म्मकः।।

८५३। पुरुषोत्तम-शर्म्मा श्रीसदाशिव-तनुद्भवः।
रम्भागर्भ-समुद्भूतः खलिकाली-निवासभूः।।

*** इति श्रीहरिभक्तितत्त्वसार-संग्रहः समाप्तः।। ***

नराकार पशुगण तो कैसे जानेंगे ? आपके अनुशीलन करने वाले के चरित्र ही अज्ञेय होता है, ईश्वर की तो बात ही क्या है ? (८४७) भगवद् भजन से ही सर्वदेवता का भजन होता है। चतुर्थस्कन्ध में प्रचेता के प्रति नारद का उपदेश निम्नोक्त रूप है—जिस प्रकार वृक्ष के मूल में जलसेचन करने पर उसके स्कन्ध भुज शाखा की पुष्टि होती है, भोजन करने पर सकल इन्द्रियों की तृप्ति होती है, वैसे ही श्रीहरि के अर्चना से सबकी अर्चना होती है।।८४८।। जगत्पति श्रीहरि की भक्ति तत्त्वसार का विरचण महतों की प्रीति के लिए मैं पुरुषोत्तम शर्मा ने किया।।८४६।। जगदीश्वर श्रीकृष्ण चेतन्य नित्यानन्द कलिमें धर्मरक्षा के लिए अवतीर्ण हुए थे।।८५०।। जो कुछ भी कहा गया है, वह सब कुछ नित्यानन्द देह में एवं उनके भक्त के देह में दृष्ट होता है।।८५१।। नित्यानन्द पद द्वन्द मकरन्द मधुव्रत के दासानुदास पुरुषोत्तम शर्मा है।।८५२।। सदशिव के पुत्र, माता रत्नागर्भ से समुदभूत खलिकाली निवासी पुरषोत्तम शर्मा के द्वारा यह ग्रन्थ रचित हुआ है।।८५३।।

विप्रान्वय समुत्पन्नो हरिदासाख्यवैष्णवः
बृन्दारण्ये समातिष्ठन् व्याख्यातवान् सतां मुदे।।

माघेमासि शिते पक्षे पौर्णमास्यां रवेर्दिने
ब्रह्मकाशग्रहेचन्द्रे शाकेऽस्मिन् पूर्णतां गतः।।
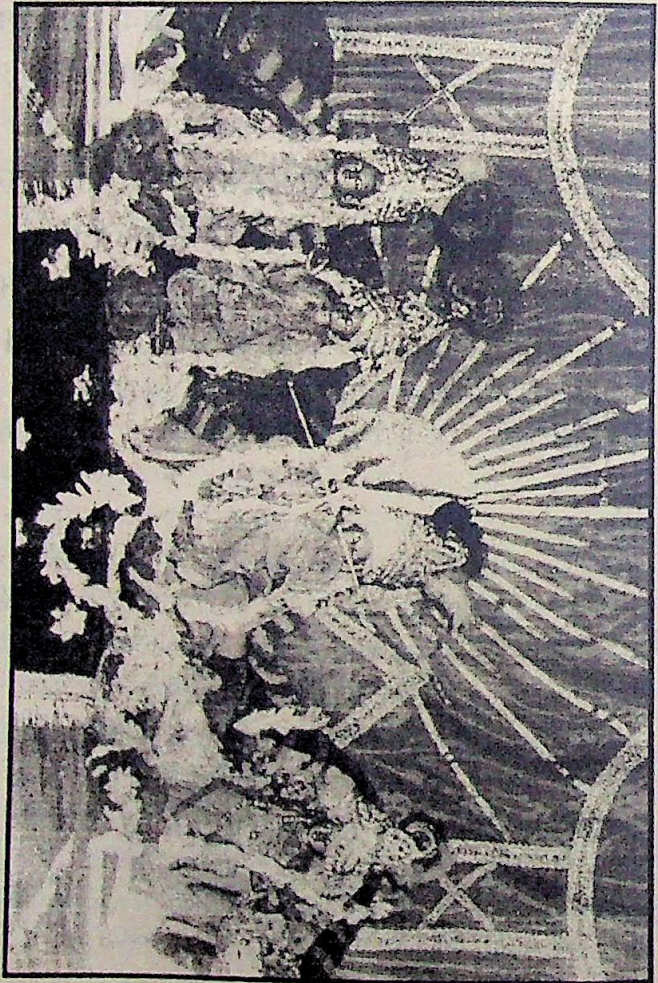
श्रील गदाधरपण्डितगोस्वामी सेवित ''टोटा'' भक्तवत्सल श्रीश्रीगोपीनाथ विग्रह

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीहरिदासशास्त्रि सम्पादिता ग्रन्थावली

प्रकाशितग्रन्थरत्न	प्रकाशन सहायता
१ । वेदान्त - दर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१०५.००
२ । नृसिंहचतुर्द्दशी	४.००
३ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	१०.००
४ । श्रीसाधनामृतचद्रिका (बङ्गलापयार)	१०.००
५ । श्रीगौरगोविन्दार्च्चन पद्धति	१०.००
६ । श्रीराधाकृष्णार्च्चन दीपिका	१०.००
७ । श्रीगोविन्दलीलामृत मूल टीका अनुवाद (सर्ग - १ - ४)	२०१.००
८ । ऐश्वर्य्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद)	१०.००
९ । संकल्पकल्पद्रुम सटीक (सानुवाद)	१०.००
१० । चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद)	१०.००
११ । श्रीकृष्णभजनामृतम् (सानुवाद)	१०.००
१२ । श्री प्रेमसम्पुटः (मूल टीका अनुवाद सह)	१०.००
१३ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद)	१०.००
१४ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला)	१०.००
१५ । ब्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद सह)	२५.००
१६ । श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	५.००
१७ । राधारसमसुधानिधि	१०.००
१८ । श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	२०.००
१९ । हरिभक्तिसार संग्रह	५१.००
२० । श्रुतिस्तुतिव्यारव्या	४०.००
२१ । श्रीहरेकृष्णामहामन्त्र	१.००
२२ । श्रीराधारससुधानिधि	१०.००
२३ । साधनदीपिका	५१.००

प्रकाशनरतग्रन्थरत्न

१ । श्रीगोविन्दलीलामृत (५ - २३)

२ । दशश्लोकीभाष्यम्

३ । धर्म संग्रह

सहयोग राशि- 51/- रूपये